HIBNDI
SHABDA SAGARA
1924
G K. V.
HARDWAR



संख्या २८

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल   रामचंद्र वर्म्मा

जगन्मोहन वर्म्मा   भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

१९२४

मूल्य १)

...केताक्षरों के विवरण

अप० = अपभ्रंश
अयोध्या० = अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्द्धमा० = अर्द्ध मागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन० = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित = उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
कठ० उप० = कठवल्ली उपनिषद्
उभ० = उभयलिंग
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
क्रि० = क्रिया
क्रि०अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र० = क्रिया प्रयोग
क्रि० वि० = क्रिया विशेषण
क्रि० स० = क्रिया सकर्मक
क्व० = क्वचित् अर्थात् इसका प्रयोग बहुत कम देखने में आया है।
खानखाना = अब्दुर्रहीम खानखाना
गि० दा० वा गि० दास = गिरधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर = गिरिधरराय (कुंडलियावाले)
गुमान = गुमान मिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि = कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत = छीतस्वामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी

...= ज्योतिष
... डिंगल भाषा
...तुरकी भाषा
... = तुलसीदास
तोष = कवि तोष
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = कवि दीनदयालु गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देखो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्य्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुंल्लिंग
पु० हिं० = पुरानी हिंदी
पुर्त्त० = पुर्त्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी
प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया० = प्रियादास
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ़० = फ़रासीसी भाषा
फ़ा० = फ़ारसी भाषा
बँग० = बँगला भाषा
बरमी = बरमी भाषा
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
मलूक० = मलूकदास

मुहा० = मुहाविरे
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो वा अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँ नरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
रसनिधि = राजा पृथ्वीसिंह
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखानाँ
लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू० = लल्लूलाल
लाल = लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
वि० = विशेष
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शृं० सत० = शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोजक अव्यय
सबल = सबलसिंह चौहान
सभा० वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी
सूदन = सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

...ह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त होता है।
...चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।
...स बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।



वि० जो पृथ्वी से उत्पन्न हो।

भूसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता।

भूसुर-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी के देवता, ब्राह्मण।

भूस्तृण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास। खवी। घटियारी।

भूस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य।

भूस्वर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत।

भृंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भौंरा। (२) एक प्रकार का कीड़ा, जिसे बिलनी भी कहते हैं। इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह किसी कीड़े के ढोले को पकड़कर ले आता है और उसे मिट्टी से ढक देता है; और उस पर बैठकर और डंक मार मारकर इतनी देर तक और इतने जोर से "भिन्न भिन्न" शब्द करता है कि वह कीड़ा भी इसी की तरह हो जाता है। उ०—(क) भइ मति कीट भृंग की नाईं। जहँ तहँ मैं देखे रघुराई।—तुलसी। (ख) कीट भृंग ऐसे उर अंतर। मन स्वरूप करि देत निरंतर।—लल्लू।

भृंगक-संज्ञा पुं० [सं०] भृंगराज पक्षी।

भृंगज-संज्ञा पुं० [सं०] अगरु।

भृंगजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] भारंगी।

भृंगप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] माधवी लता।

भृंगबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंद का पेड़। (२) कदम का पेड़।

भृंगमोही-संज्ञा पुं० [सं० भृंगमोहिन्] (१) चंपा। (२) कनकचंपा।

भृंगरज-संज्ञा पुं० दे० "भृंगराज"।

भृंगराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भँगरा नामक वनस्पति। भँगरैया। घमरा। (२) काले रंग का एक प्रसिद्ध पक्षी जो प्रायः सारे भारत, बरमा, चीन आदि देशों में पाया जाता है। भीमराज। वि० दे० "भीमराज"।

भृंगराजघृत-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का घृत जो साधारण घी में भँगरैया का रस मिलाकर बनाया जाता है। कहते हैं कि इसकी नास लेने से सफेद बाल काले हो जाते हैं।

भृंगरीट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव के द्वारपाल। (२) लोहा।

भृंगवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] भूमि कदंब।

भृंगाभीष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] आम का वृक्ष।

भृंगार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौंग। (२) सोना। स्वर्ण। (३) सोने का बना हुआ जल पीने का पात्र। (४) जल भरकर अभिषेक करने की झारी।

भृंगारि-संज्ञा स्त्री० [सं०] केवड़ा।

भृंगारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] झिल्ली नामक कीड़ा।

भृंगार्क-संज्ञा पुं० [सं०] भँगरैया।

भृंगी-संज्ञा पुं० [सं० भृंगिन्] (१) शिव जी का एक पारिषद वा गण। (२) बड़ का पेड़।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भौंरी। (२) बिलनी नामक कीड़ा जो और कीड़ों को भी अपने समान रूपवाला बना लेता है। (३) अतिविषा। अतीस। (४) भाँग।

भृंगीफल-संज्ञा पुं० [सं०] अमड़ा।

भृंगीश-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

भृंगेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घीकुआर। (२) भारंगी। (३) युवती स्त्री।

भृंकुश-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का वेश धारण करनेवाला नट।

भृकुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भौंह।

भृगु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध मुनि जो शिव के पुत्र माने जाते हैं। प्रसिद्ध है कि इन्होंने विष्णु की छाती में लात मारी थी। इन्हीं के वंश में परशुरामजी हुए थे। कहते हैं कि इन्हीं भृगु और अंगिरा तथा कपि से सारे संसार के मनुष्यों की सृष्टि हुई है। ये सप्तर्षियों में से एक माने जाते हैं। इनकी उत्पत्ति के विषय में महाभारत में लिखा है कि एक बार रुद्र ने एक बड़ा यज्ञ किया था, जिसे देखने के लिये बहुत से देवता, उनकी कन्याएँ तथा स्त्रियाँ आदि आई थीं। जब ब्रह्मा उस यज्ञ में आहुति देने लगे, तब देवकन्याओं आदि को देखकर उनका वीर्य्य स्खलित हो गया। सूर्य्य ने अपनी किरणों से वह वीर्य्य खींचकर अग्नि में डाल दिया। उसी वीर्य्य से अग्निशिखा में से भृगु की उत्पत्ति हुई थी। (२) परशुराम। (३) शुक्राचार्य। (४) शुक्रवार का दिन। (५) शिव। (६) जमदग्नि। (७) पहाड़ का ऐसा किनारा जहाँ से गिरने पर मनुष्य बिलकुल नीचे आ जाय, बीच में कहीं रुक न सके।

भृगुक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कूर्मचक्र के एक देश का नाम।

भृगुकच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] आधुनिक भड़ौच जो प्राचीन काल में एक प्रसिद्ध तीर्थ था।

भृगुज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भृगु के वंशज। भार्गव। (२) शुक्राचार्य।

भृगुतुंग-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय की एक चोटी का नाम। यह एक पवित्र तीर्थ स्थान माना जाता है।

भृगुनंद, भृगुनंदन-संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम।

भृगुनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम।

भृगुनायक-संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम।

भृगुपति-संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम।

भृगुराम-संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम।

भृगुरेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की छाती पर का वह चिह्न जो भृगु मुनि के लात मारने से हुआ था। उ०—(क) माथे मुकुट सुभग पीताम्बर उर सोभित भृगु-रेखा हो।—सूर। (ख) तट भुजदंड भौंर भृगुरेखा चंदन चित्रित रंगन सुंदर।—सूर।

भृगुलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] भृगु मुनि के चरण का चिह्न जो विष्णु की छाती पर है।

भृगुवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] तैत्तिरीय उपनिषद् की तीसरी वल्ली जिसका अध्ययन भृगु मुनि ने किया था।

भृगुसुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक्राचार्य। (२) शुक्र ग्रह।

भृत-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० भृता] (१) भृत्य। दास। सेवक। (२) मिताक्षरा के अनुसार वह दास जो बोझ ढोता हो। ऐसा दास अधम कहा गया है।

वि० [सं०] (१) भरा हुआ। पूरित। उ०—छाए आस पास दीसैं भौंर भृत भनकार।—भुवनेश। (२) पाला हुआ। पोषण किया हुआ।

भृतक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेतन लेकर काम करता हो। नौकर।

भृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नौकरी। (२) मजदूरी। (३) वेतन। तनखाह। (४) मूल्य। दाम। (५) भरने की क्रिया। (६) पालन करना। उ०—वै पथ विकल चकित अति आतुर अर्मत हेतु दियो। भृति विलंबि पृष्टि दै श्यामा श्यामै श्याम बियो।—सुर।

भृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० भृत्या] सेवक। नौकर।

भृत्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] भृत्य का धर्म्म, भाव या पद।

भृत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दासी। (२) वेतन। तनखाह।

भृमि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घूमनेवाली वायु। बवंडर। (२) पानी में का भँवर या चक्कर। (३) वैदिक काल की एक प्रकार की वीणा।

वि० घूमनेवाला। चक्कर काटनेवाला।

भृम्यश्व-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

भृश-क्रि० वि० [सं०] अत्यधिक। बहुत अधिक। उ०—तेहि के आगे मिरत है जोजन सहस अठार। तपत भानु भृश शीश पर तहँ अति तुदन अपार।—विश्वास।

भृशपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] महानीली।

भृष्ट-वि० [सं०] भूना हुआ।

भृष्टकार संज्ञा पुं० [सं०] भड़भूँजा।

भेंउती†-संज्ञा स्त्री० दे० "भौंती"।

भेंट-संज्ञा स्त्री० [हिं० भेंटना] (१) मिलना। मुलाकात। जैसे,—यदि समय मिले तो उनसे भी भेंट कर लीजिएगा। (२) उपहार। नजराना। उपायन। जैसे,—ये ५०) आपकी भेंट हैं।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

भेंटना*†-क्रि० स० [सं० भिदु = आमने सामने से आकर भिड़ना] (१) मुलाकात करना। मिलना। (२) गले लगाना। छाती से लगाना। आलिंगन करना।

भेंटाना†-क्रि० स० [हिं० भेंट] (१) मुलाकात होना। मिलना। (२) किसी पदार्थ तक हाथ पहुँचना। हाथ से छुआ जाना।

भेंड़-संज्ञा स्त्री० दे० "भेड़"।

भेंवना†-क्रि० स० [हिं० भिगोना] भिगोना। तर करना। उ०—(क) भेंवल धरल चा दूध में खाजा तोरे बदे।—तेग अली। (ख) लुचईं पोइ पोइ घी भेंईं। पाछे चहनि खाँड़ सो जेंईं।—जायसी।

भेउ*†-संज्ञा पुं० [सं० भेद] भेद। मर्म। रहस्य।

भेक-संज्ञा पुं० दे० "मेंढ़क"।

भेकराज-संज्ञा पुं० [सं०] भृंगराज। भँगरैया।

भेख-संज्ञा पुं० दे० "वेष"।

भेखज* संज्ञा पुं० दे० "भेषज"।

भेज-संज्ञा स्त्री० [हिं० भेजना] (१) वह जो कुछ भेजा जाय। (२) लगान। (३) विविध प्रकार के कर जो भूमि पर लगाए जाते हैं।

भेजना-क्रि० स० [सं० व्रजन्] किसी वस्तु या व्यक्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान के लिये रवाना करना। किसी वस्तु या पदार्थ के एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने का आयोजन करना।

संयो० क्रि०—देना।

भेजवाना-क्रि० स० [हिं० भेजना का प्रे०] भेजने के लिये प्रेरणा करना। दूसरे को भेजने में प्रवृत्त करना। भेजने का काम दूसरे से कराना।

संयो० क्रि०—देना।

भेजा-संज्ञा पुं० [?] खोपड़ी के भीतर का गूदा। सिर के अंदर का मगज।

मुहा०—भेजा खाना = बक बककर सिर खाना। बहुत बक बककर तंग करना।

† संज्ञा पुं० [हिं० भेजना] चंदा। बेहरी।

भेजाबरार-संज्ञा पुं० [हिं० भेजा = चंदा + फा० बरार] एक प्रथा जिसके अनुसार देहातों में किसी दरिद्र या दिवालिए का देन चुकाने के लिये आस पास के लोगों से चंदा लिया जाता है।

भेट-संज्ञा स्त्री० दे० "भेंट"।

भेटना-क्रि० स० दे० "भेंटना"।

† संज्ञा पुं० [देश०] कपास के पौधे का फल। कपास का डोडा।

भेड़-संज्ञा स्त्री० [सं० मेष] [पुं० भेड़ा] (१) बकरी की जाति का, पर आकार में उससे कुछ छोटा एक प्रसिद्ध चौपाया जो बहुत ही सीधा होता है और किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाता। गाडर।

विशेष—भेंड़ प्रायः सारे संसार में पाई जाती है और इसकी अनेक जातियाँ होती हैं। यह दूध, ऊन और मांस के लिये

पाली जाती है। इसका दूध गौ के दूध की अपेक्षा गाढ़ा होता है और उसमें से मक्खन अधिक निकलता है। इसका मांस बकरी के मांस की अपेक्षा कुछ कम स्वादिष्ट होता है; पर पाश्चात्य देशों में अधिकता से खाया जाता है। इसके शरीर पर से ऊन बहुत निकलता है और प्रायः उसी के लिये इस देश के गड़रिए इसे पालते हैं। कहीं कहीं की भेड़ें आकार में बड़ी भी होती हैं और उनका मांस भी बहुत स्वादिष्ट होता है। इसके नर को भेड़ा और बच्चे को मेमना कहते हैं। इसकी एक जाति की दुम बहुत चौड़ी और भारी होती है जिसे दुंबा कहते हैं। दे० "दुंबा।"

मुहा०—भेड़ियाधसान = बिना परिणाम सोचे समझे दूसरों का अनुसरण करना। (भेड़ों का यह नियम होता है कि यदि एक भेड़ किसी ओर को चल पड़ती है, तो बाकी सब भेड़ें भी चुपचाप उसके पीछे हो लेती हैं।)

(२) बहुत सीधा या मूर्ख मनुष्य।

संज्ञा स्त्री० [हिं० भिड़ाना या भेड़ना = थप्पड़ मारना] थप्पड़। (बाजारू)

भेड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० भेड़] भेड़ जाति का नर। मेढ़ा। मेष।

भेड़िया-संज्ञा पुं० [हिं० भेड़] एक प्रसिद्ध जंगली मांसाहारी जंतु जो प्रायः सारे एशिया, युरोप और उत्तर अमेरिका में पाया जाता है। यह प्रायः ३-३॥ हाथ लंबा होता है और जंगली कुत्तों से बहुत मिलता जुलता होता है। यह प्रायः बस्तियों के आस पास झुंड बाँधकर रहता है और गाँवों में से भेड़-बकरियों, मुरगों अथवा छोटे छोटे बच्चों आदि को उठा ले जाता है। यह अपने शिकार को दौड़ाकर उसका पीछा भी करता है और बहुत तेज दौड़ने के कारण शीघ्र ही उसको पकड़ लेता है। यह प्रायः रात के समय बहुत शोर मचाता है। यह जमीन में गड्ढा या माँद बनाकर रहता है और उसी में बच्चे देता है। इसके बच्चों की आँखें जन्म के समय बिल्कुल बंद रहती हैं और कान लटके हुए होते हैं। इसके काटने से एक प्रकार का बहुत तीव्र विष चढ़ता है जिससे बचना बहुत कठिन होता है। सियार। शृगाल।

भेड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "भेड़"।

भेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भेदने की क्रिया। छेदने या अलग करने की क्रिया। (२) प्राचीन राजनीति के अनुसार शत्रु को वश में करने के चार उपायों में से तीसरा उपाय जिसके अनुसार शत्रु पक्ष के लोगों को बहकाकर अपनी ओर मिला लिया जाता है अथवा उनमें परस्पर द्वेष उत्पन्न कर दिया जाता है। (३) भीतरी छिपा हुआ हाल। रहस्य।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

(४) मर्म। तात्पर्य। (५) अंतर। फ़र्क़। जैसे,—इन दोनों कपड़ों में बहुत भेद है। (६) प्रकार। क़िस्म। जाति। जैसे,—इस वृक्ष के कई भेद होते हैं।

भेदक-वि० [सं०] (१) भेदन करनेवाला। छेदनेवाला। (२) रेचक। दस्तावर। (वैद्यक)

भेदकातिशयोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें "औरै" "और" शब्द द्वारा किसी वस्तु की 'अति' वर्णन की जाती है। जैसे,—औरै कछु चितवनि चलनि औरै मृदु मुसकानि। औरै कछु सुख देति है सकै न बैन बखानि।

भेदकारी-संज्ञा पुं० [सं० भेदकारिन्] वह जो भेदन करता हो। भेदनेवाला।

भेदड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] रबड़ी। उ०—पतली पेज (भेदड़ी, राबड़ी) में दूध या छाँछ या दही मिलाकर भर पेट खिला दो।—प्रतापसिंह।

भेदन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० भेदनीय, भेद्य] (१) भेदने की क्रिया। छेदना। वेधना। विदीर्ण करना। (२) अमलबेत। (३) हींग। (४) सूअर।

वि० (१) भेदनेवाला। छेदनेवाला। (२) दस्त लानेवाला। रेचक। दस्तावर।

भेदबुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एकता का नाश या अभाव। फूट। बिलगाव।

भेदभाव-संज्ञा पुं० [सं०] अंतर। फरक।

भेदित-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का मंत्र जो निंदित समझा जाता है।

भेदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार की शक्ति जिसकी सहायता से योगी लोग षटचक्र को भेद सकते हैं। इस शक्ति के साधन से योगी बहुत श्रेष्ठ हो जाता है।

भेदिया-संज्ञा पुं० [सं० भेद + इया (प्रत्य०)] (१) भेद लेनेवाला। जासूस। गुप्तचर। (२) गुप्त रहस्य जाननेवाला।

भेदी-संज्ञा पुं० [हिं० भेद + ई (प्रत्य०)] (१) गुप्त हाल बतानेवाला। जासूस। गुप्तचर। (२) गुप्त हाल जाननेवाला।

वि० [सं० भेदिन्] भेदन करनेवाला। फोड़नेवाला।

संज्ञा पुं० अमलबेत।

भेदीसार-संज्ञा पुं० [सं०] बढ़इयों का एक औजार जिससे वे काठ में छेद करते हैं। बरमा। उ०—भेदि दुसार कियो हियो तन दुति भेदीसार।—बिहारी।

भेदुर-संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

भेद्य-वि० [सं०] भेदन करने योग्य। जो भेदा या छेदा जा सके।

संज्ञा पुं० शस्त्रों आदि की सहायता से किसी पीड़ित अंग या फोड़े आदि को भेदन करने की क्रिया। चीर-फाड़।

भेन†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बहिन] बहिन। (इसका शुद्ध रूप प्रायः भैन है।) उ०—मुँह पीट के हमसाये से कहती है कि भेना। नाहक़ की खराबी है न लेना है न देना।—नज़ीर।

भेना†-क्रि० स० [हिं० भिगोना] भिगोना । तर करना । उ०—सिरका भेइ काढ़ि जनु आने । कमल जो भये रहहिं बिकसाने ।—जायसी ।

भेभम-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत छोटा और पतला बाँस जो हिमालय में होता है । इसे रिंगाल वा निगाल भी कहते हैं । बंगाल में 'निगाली' इसी बाँस की बनती है ।

भेर-संज्ञा स्त्री० दे० "भेरी" ।

भेरवा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का खजूर जिसके पत्तों के रेशों से रस्सियाँ बनती हैं। यह भारत के प्रायः सभी गरम प्रदेशों में पाया जाता है । इसे पाछने से एक प्रकार की ताड़ी भी निकलती है जिसका व्यवहार बंबई और लंका में बहुत होता है।

भेरा-संज्ञा पुं० [देश०] मध्य तथा दक्षिणी भारत का मझोले आकार का एक पेड़ जिससे लकड़ी, गोंद, रंग और तेल इत्यादि पदार्थ मिलते हैं । इसकी लकड़ी मेज, कुर्सी, खेती के औजार और तसवीरों के चौखटे आदि बनाने के काम में आती है; पर जलाने के काम की नहीं होती, क्योंकि इससे धूआँ बहुत अधिक निकलता है । इसे भीरा भी कहते हैं ।

* †-संज्ञा पुं० दे० "बेड़ा" । उ०—भेरै चढ़िया झाँझरे भवसागर के माहिं ।—कबीर ।

भेरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा ढोल या नगाड़ा । ढक्का । दुंदुभी ।

भेरीकार-संज्ञा पुं० [सं० भेरी+कार (प्रत्य०)] [स्त्री० भेरिकारी] भेरी बजानेवाला । उ०—नटिनि डोमिनी ढोलिनी सहनाइनि भेरिकारि ।—जायसी ।

भेल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

वि० (१) कादर । डरपोक । भीरु । (२) चंचल । (३) मूर्ख । बेवकूफ ।

भेला*†-संज्ञा पुं० [हिं० भेंट] (१) भिडंत । (२) भेंट । मुलाकात । उ०—(क) कृष्ण संग खेलब बहु खेला । बहुत दिवस महँ परिगो भेला ।—रघुराज । (ख) देउरा को दल जीत बघेला । तासों पर्यो एक दिन भेला ।—रघुराज ।

संज्ञा पुं० दे० "भिलावाँ" ।

संज्ञा पुं० [?] बड़ा गोला या पिंड । जैसे,—गुड़ का भेला ।

भेली†-संज्ञा स्त्री० [?] (१) गुड़ या और किसी चीज की गोल बट्टी या पिंडी। जैसे,—चार भेली गुड़। (२) गुड़। (क्व०)

भेव*†-संज्ञा पुं० [सं० भेद] (१) मर्म की बात । भेद । रहस्य । (२) वास्तविक नृप चल्यो देव वर वाम देव बल । जरासंध नरदेव भेव गुनि मति अभेव भल ।—गोपाल । (४) बारी । पारी । उ०—चौकी दै जनु अपने भेव । बहुरे देवलोक को देव ।—केशव ।

भेवना*†-क्रि० स० [हिं० भिगोना] भिगोना । तर करना । उ०—अति आदर अनुराग भगति मन भेवहिं ।—तुलसी ।

भेश-संज्ञा पुं० दे० "वेष" ।

भेष-संज्ञा पुं० दे० "वेष" ।

भेषज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) औषध । दवा । (२) जल । पानी । (३) सुख । (४) विष्णु ।

भेषना*-क्रि० स० [हिं० भेष] (१) भेष बनाना । स्वाँग बनाना । उ०—जा दिन ते उनके परी डीठि ता दिन ते, कैयो भेष भेषि तुम्हें देखि देखि जात हैं ।—रघुनाथ । (२) पहनना । उ०—अति सुगंध मर्दन अँग अँग ठनि बनि बनि भूषन भेषति ।—सूर ।

भेस-संज्ञा पुं० [सं० वेष] (१) बाहरी रूप रंग और पहनावा आदि । वेष ।

यौ०—वेष-भूषा ।

(२) वह बनावटी रूप रंग और नकली पहनावा आदि जो अपना वास्तविक रूप या परिचय छिपाने के लिये धारण किया जाय । कृत्रिम रूप और वस्त्र आदि ।

क्रि० प्र०—धरना । बदलना । -बनाना ।

भेसज* संज्ञा स्त्री० [सं० भेषज] दवा । औषध ।

भेसना*†-क्रि० स० [सं० वेश, हिं० भेष] वेश धारण करना । वस्त्रादि पहनना । उ०—भाव दियो आवेंगे स्याम । अंग अंग आभूषण साजति राजति अपने धाम । रति रण जानि अनंग नृपति सो आप नृपति राजति बल जोरति । अति सुगंध मर्दन अँग अँग ठनि बनि बनि भूषन भेषति ।—सूर ।

भैंस-संज्ञा स्त्री० [सं० महिष] (१) गाय की जाति और आकार-प्रकार का पर उससे बड़ा चौपाया (मादा) जिसे लोग दूध के लिये पालते हैं । इसके नर को भैंसा कहते हैं ।

विशेष—भैंस सारे भारत में पाई जाती है और यहीं से विदेश में गई है । इसके शरीर का रंग बिलकुल काला होता है और इसके रोएँ कुछ बड़े होते हैं । यह प्रायः जल या कीचड़ आदि में रहना बहुत पसंद करती है। इसका दूध गौ के दूध की अपेक्षा अधिक गाढ़ा होता है और उसमें से मक्खन या घी भी अधिक निकलता है । मान में भी यह गौ से बहुत अधिक दूध देती है ।

मुहा०—भैंस काटना = गरमी का रोग होना । उपदंश होना । (बाजारू)

(२) एक प्रकार की मछली जो पंजाब, बंगाल तथा दक्षिण भारत की नदियों में पाई जाती है । इसकी लंबाई तीन फुट होती है । इसका मांस खाने में स्वादिष्ट होता है, परंतु उसमें हड्डियाँ अधिक होती है । (३) एक प्रकार की घास ।

भैंसा-संज्ञा पुं० [हिं० भैंस] भैंस नामक पशु का नर जो प्रायः बोझ ढोने और गाड़ियाँ आदि खींचने के काम में आता है । पुराणानुसार यह यमराज का वाहन माना जाता है ।

भैंसाव†-संज्ञा पुं० [हिं० भैंस+आव (प्रत्य०)] भैंस और भैंसे का जोड़ा खाना । भैंसे से भैंस का गर्भ धारण करना ।

भैंसासुर-संज्ञा पुं० दे० "महिषासुर"।
भैंसौरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० भैंसा + औरी (प्रत्य०)] भैंस का चमड़ा।
भै*-संज्ञा पुं० दे० "भय"।
भैक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भिक्षा माँगने की क्रिया। (२) भिक्षा माँगने का भाव। (३) वह जो कुछ भिक्षा में मिले। भीख।
भैक्षचर्य्या, भैक्षवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भिक्षा माँगने की क्रिया।
भैक्षाकुल-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से बहुत से लोगों को भिक्षा मिलती हो।
भैक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षा। भीख।
भैचक, भैचक*†-वि० [हिं० भय + चक = चकित] चकपकाया हुआ। घबराया हुआ। चकित। विस्मित।
क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।
भैजन*-वि० [हिं० भै = भय + जनक] भय उत्पन्न करनेवाला। भयप्रद। उ०—धुनि सत्रु भैजनी करत पाय पैजनी है बैजनी लगाम बनी चरम मृदुल की। पाँति सिंधु मुलकी तुरंगन के कुल की बिसाल ऐसी पुलकी सुचाल तैसी दुलकी।—गोपाल।
भैदा*-वि० [सं० भय + दा (प्रत्य०)] भयप्रद। डरावना।
भैन†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बहिन] बहिन। भगिनी।
भैना-संज्ञा स्त्री० [हिं० बहिन] बहिन। भगिनी।
संज्ञा स्त्री० [देश०] गंगई नामक पक्षी।
भैनो†-संज्ञा स्त्री० [हिं० बहिन] बहिन। भगिनी।
भैने†-संज्ञा पुं० [सं० भागिनेय] बहिन का पुत्र। भानजा।
भैम-संज्ञा पुं० [सं०] राजा उग्रसेन।
वि० [सं०] भीम संबंधी। भीम का।
भैमगव-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र का नाम।
भैमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माघ शुक्ल एकादशी। भीमसेनी एकादशी। (२) भीम राजा की कन्या। दमयंती।
भैयस†-संज्ञा पुं० [हिं० भाई + अंश] संपत्ति में भाइयों का हिस्सा। भाइयों का अंश।
भैया-संज्ञा पुं० [हिं० भाई] (१) भाई। भ्राता। (२) बराबर-वालों या छोटों के लिये संबोधन शब्द। उ०—(क) पितु समीप तव जायेहु भैया। भइ बड़ि बारजाइ बलि मैया।—तुलसी। (ख) कहै मोहि मैया मैं न मैया भरत की बलैया लेहौं भैया तेरी मैया कैकेई है।—तुलसी।
संज्ञा पुं० [?] नाव की पट्टी या तख्ती।
भैयाचार-संज्ञा पुं० दे० "भाईचारा"।
भैयाचारी-संज्ञा स्त्री० दे० "भाईचारा"।
भैयादोज-संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रातृ द्वितीया] कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया। भाईदूज।
विशेष—इस दिन बहनें अपने भाइयों को टीका लगाती और भोजन कराती हैं।
भैरव-वि० [सं०] (१) जो देखने में भयंकर हो। भीषण। भयानक। (२) जिसका शब्द बहुत भीषण हो।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंकर। महादेव। (२) शिव के एक प्रकार के गण जो उन्हीं के अवतार माने जाते हैं।
विशेष—पुराणानुसार जिस समय अंधक राक्षस के साथ शिव का युद्ध हुआ था, उस समय अंधक की गदा से शिव का सिर चार टुकड़े हो गया था और उसमें से लहू की धारा बहने लगी थी। उसी धारा से पाँच भैरवों की उत्पत्ति हुई थी। तांत्रिकों के अनुसार, और कुछ पुराणों के अनुसार भी, भैरवों की संख्या साधारणतः आठ मानी जाती है जिनके नामों के संबंध में कुछ मतभेद है। कुछ के मत से महा-भैरव, संहार भैरव, असितांग भैरव, रुरु भैरव, काल भैरव, क्रोध भैरव, ताम्रचूड़ और चंद्रचूड़ तथा कुछ के मत से असितांग, रुरु, चंड, क्रोध, उन्मत्त, कपाल, भीषण और संहार ये आठ भैरव हैं। तांत्रिक लोग भैरवों की विशेष रूप से उपासना करते हैं।
(३) साहित्य में भयानक रस। (४) एक नाग का नाम। (५) एक नद का नाम। (६) एक राग का नाम जो हनुमत के मत से छः रागों में से मुख्य और पहला है; और ओड़व जाति का है; क्योंकि इसमें ऋषभ और पंचम नहीं होता। पर कुछ लोग इसे षाड़व जाति का और कुछ संपूर्ण जाति का भी मानते हैं। इसके गाने की ऋतु शरद्, वार रवि और समय प्रातःकाल है। हनुमत के मत से भैरवी, बैरारी, मधुमाधवी, सिंधवी और बंगाली ये पाँच इसकी रागिनियाँ और हर्ष तथा सोमेश्वर के मत से भैरवी, गुर्जरी, रेवा, गुणकली, बंगाली और बहुली ये छः इसकी रागिनियाँ हैं। इसकी रागिनियों और पुत्रों की संख्या तथा नामों के संबंध में आचार्य्यों में बहुत मतभेद है। यह हास्यरस का राग माना जाता है और इसका सहचर मधुमाध तथा सहचरी मधुमाधवी है। एक मत से इसका स्वरग्राम ध, नि, सा, रि, ग, म, प और दूसरे मत से ध, नि, सा, रि, ग, म, है। (७) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। (८) कपाली। (९) भयानक शब्द। (१०) वह जो मदिरा पीते पीते वमन करने लगे। (तांत्रिक)
भैरवमस्तक-संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। उ०—न चतुष्कं बिना शब्दं ताले भैरवमस्तके।—सं० दा०।
भैरवांजन-संज्ञा पुं० [सं०] आँखों में लगाने का एक प्रकार का अंजन। (वैद्यक)
भैरवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार की देवी जो महाविद्या की एक मूर्त्ति मानी जाती है। चामुंडा।
विशेष—भैरवी की कई मूर्त्तियाँ मानी जाती हैं। जैसे,—

त्रिपुर भैरवी, कौलेश भैरवी, रुद्र भैरवी, नित्या भैरवी, चैतन्य भैरवी आदि। इन सबके ध्यान और पूजन आदि भिन्न भिन्न हैं।

(२) एक रागिनी जो भैरव राग की पत्नी और किसी किसी के मत से मालव राग की पत्नी मानी जाती है। हनुमत के मत से यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और शरद् ऋतु में प्रातःकाल के समय गाई जाती है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—म, प, ध, नि, सा, ऋ, ग। संगीत रत्नाकर के मत से इसमें मध्यम वादी और धैवत संवादी होता है। (३) पुराणानुसार एक नदी का नाम। (४) पार्वती। (डिं०)

भैरवीचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तांत्रिकों या वाममार्गियों का वह समूह जो कुछ विशिष्ट तिथियों, नक्षत्रों और समयों में देवी का पूजन करने के लिये एकत्र होता है। इसमें सब लोग एक चक्र में बैठकर पूजन और मद्यपान आदि करते हैं। इसमें केवल दीक्षित लोग ही सम्मिलित होते हैं और वर्णाश्रम आदि का कोई विचार नहीं रखा जाता। (२) मद्यपों और अनाचारियों आदि का समूह।

भैरवीयाचना-संज्ञा स्त्री० [सं० भैरवी यातना] पुराणानुसार वह यातना जो प्राणियों को मरते समय उनकी शुद्धि के लिये भैरव जी देते हैं। कहते हैं कि जब इस प्रकार की यातना से प्राणी सब पातकों से शुद्ध हो जाता है, तब महादेवजी उसे मोक्ष प्रदान करते हैं।

भैरवेश-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

भैरा†-संज्ञा पुं० दे० "बहेड़ा"।

भैरी†-संज्ञा स्त्री० दे० "बहरी"। (पक्षी)

भैरू-संज्ञा पुं० दे० "भैरव"।

भैरों-संज्ञा पुं० दे० "भैरव"।

भैवा‡-संज्ञा पुं० दे० "भैया"।

भैवाद†-संज्ञा पुं० [हिं० भाई + आद (प्रत्य०)] (१) भाईचारा। भाईपना। (२) बिरादरी।

भैषज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) औषध। दवा। (२) वैद्य के शिष्य आदि। (३) लवा पक्षी।

भैषज्य-संज्ञा पुं० [सं०] दवा। औषध।

भैष्मकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भीष्मक की कन्या रुक्मिणी।

भैहा*†-संज्ञा पुं० [हिं० भय + हा (प्रत्य०)] (१) भयभीत। डरा हुआ। (२) जिस पर भूत वा किसी देव का आवेश आता हो। उ०—घूमन लगे समर मैं भैहा। मनु अभुआत भाउ भर भैहा।—लाल।

भों-संज्ञा स्त्री० [अनु०] भों भों का शब्द।

भोंकना-क्रि० स० [भक से अनु०] बरछी, तलवार या इसी प्रकार की और कोई नुकीली चीज जोर से धँसाना। घुसेड़ना।

क्रि० अ० दे० "भूँकना"।

भोंगरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बेल या लता।

भोंगाल-संज्ञा पुं० [अं० ब्यूगुल] वह बड़ा भोंपा जिसका एक ओर का मुँह बहुत छोटा और दूसरी ओर का मुँह बहुत अधिक चौड़ा तथा फैला हुआ होता है। इसका छोटे मुँह-वाला सिरा जब मुँह के पास रखकर कुछ बोला जाता है, तब उसका शब्द चौड़े मुँह से निकलकर बहुत दूर तक सुनाई देता है। इसका व्यवहार प्रायः भीड़भाड़ के समय बहुत से लोगों को कोई बात सुनाने के लिये होता है।

भोंचाल-संज्ञा पुं० दे० "भूकंप"।

भोंडा-वि० [हिं० भद्दा या भों से अनु०] [स्त्री० भोंडी] भद्दा। बदसूरत। कुरूप।

संज्ञा पुं० [देश०] जुआर की जाति की एक प्रकार की घास जो पशुओं के चारे के काम में आती है। इसमें एक प्रकार के दाने लगते हैं जो गरीब लोग खाते हैं।

भोंडापन-संज्ञा पुं० [हिं० भोंडा + पन (प्रत्य०)] (१) भद्दापन। (२) बेहूदगी।

भोंडी-संज्ञा स्त्री० [हिं० भोंडा] वह भेड़ जिसकी छाती पर के रोएँ सफेद और बाकी सारे शरीर के रोएँ काले हों। (गड़रिया)

भोंतरा† वि० [हिं० भुथरा] (शस्त्र) जिसकी धार तेज न हो। कुंद धारवाला।

भोंतला†-वि० [हिं० भुथरा] जिसकी धार तेज न हो। कुंद। भुथरा।

भोंदू-वि० [हिं० बुद्धू] (१) बेवकूफ। मूर्ख। (२) सीधा। भोला।

भोंपू-संज्ञा पुं० [भों अनु० + पू (प्रत्य०)] तुरही की तरह का पर बिलकुल सीधा एक प्रकार का बाजा जो फूँककर बजाया जाता है। इसका व्यवहार प्रायः वैरागी साधु आदि करते हैं।

भोंसले-संज्ञा पुं० [देश०] महाराष्ट्रों के एक राजकुल की उपाधि। (महाराज शिवाजी और रघुनाथ राव आदि इसी राजकुल के थे।)

भो*-क्रि० अ० [हिं० भया] भया। हुआ।

संबोधन [सं०] हे। हो। (क्व०)

भोकस*†- वि० [हिं० भूख + स (प्रत्य०)] भुक्खड़। भूखा।

भोकार-संज्ञा स्त्री० [भो से अनु० + कार (प्रत्य०)] ज़ोर जोर से रोना।

क्रि० प्र०—फाड़ना।

भोक्ता-वि०[सं० भोक्तृ] (१) भोजन करनेवाला। (२) भोग करनेवाला। भोगनेवाला। (३) ऐश करनेवाला। ऐयाश।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) भर्त्ता। पति। (३) एक प्रकार का प्रेत।

भोक्तृत्व-संज्ञा पुं० [सं०] भोक्ता का धर्म या भाव।

भोक्तृशक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धि।

भोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख या दुःख आदि का अनुभव करना या अपने शरीर पर सहना। (२) सुख। विलास। (३) दुःख। कष्ट। (४) स्त्री-संभोग। विषय। (५) साँप का फन। (६) साँप। (७) धन। (८) गृह। घर। (९) पालन। (१०) भक्षण। आहार करना। (११) देह। (१२) मान। परिमाण। (१३) पाप या पुण्य का वह फल जो सहन किया या भोगा जाता है। प्रारब्ध। (१४) पुर। (१५) एक प्रकार का सैनिक व्यूह। (१६) फल। अर्थ। उ०—क्योंकि गुण वे कहाते हैं जिनसे कर्मकांडादि में उपकार लेना होता है। परंतु सर्वत्र कर्मकांड में भी इष्ट भोग की प्राप्ति के लिये परमेश्वर का त्याग नहीं होता।—दयानंद। (१७) मानुष प्रमाण के तीन भेदों में से एक। भुक्ति (कब्जा)। (१८) देवता आदि के आगे रखे जानेवाले खाद्य पदार्थ। नैवेद्य। उ०—गयो लै महल माँझ टहल लगाये लोग लागे होन भोग जिय शंका तनु छीजिये।—नाभा।

क्रि० प्र०—लगाना।

(१९) भाड़ा। किराया। (२०) सूर्य्य आदि ग्रहों के राशियों में रहने का समय।

भोगदेह-संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] पुराणानुसार वह सूक्ष्म शरीर जो मनुष्य को मरने के उपरांत स्वर्ग या नरक आदि में जाने के लिये धारण करना पड़ता है।

भोगना-क्रि० अ० [सं० भोग] (१) सुख-दुःख या शुभाशुभ कर्मफलों का अनुभव करना। आनंद या कष्ट आदि को अपने ऊपर सहन करना। भुगतना। (२) सहन करना। सहना। (३) स्त्री-प्रसंग करना।

भोगपति-संज्ञा पुं० [सं०] किसी नगर या प्रांत आदि का प्रधान शासक या अधिकारी।

भोगप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो उत्तर दिशा में माना गया है।

भोगबंधक-संज्ञा पुं० [सं० भोग्य + हिं० बंधक = रेहन] बंधक या रेहन रखने का वह प्रकार जिसमें उधार लिए हुए रुपए का ब्याज नहीं दिया जाता और उस ब्याज के बदले में रुपया उधार देनेवाले को रेहन रखी हुई भूमि या मकान आदि भोग करने अथवा किराए आदि पर चलाने का अधिकार प्राप्त होता है। दृष्टबंधक का उलटा।

भोगलदाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० भोग + लदाई ?] खेत में कपास का सब से बड़ा पौधा जिसके आस पास बैठकर देहाती लोग उसकी पूजा करते हैं।

भोगलिप्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यसन। लत।

भोगलियाल-संज्ञा स्त्री० [डिं०] कटारी नाम का शस्त्र।

भोगली-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) छोटी नली। पुपली। (२) नाक में पहनने का लौंग। (३) टेटका या तरकी नाम का कान में पहनने का गहना। (४) वह छोटी पतली पोली कील जो लौंग या कान के फूल आदि को अटकाने के लिये उसमें लगाई जाती है। (५) चपटे तार या बादले का बना हुआ सलमा जिससे दोनों किनारों के बीच की जंजीर बनाई जाती है। कँगनी।

भोगवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाताल गंगा। (२) गंगा। (३) पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम। (४) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम। (५) नागों के रहने का स्थान। नागपुरी। (६) कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

भोगवना*-क्रि० अ० [सं० भोग] भोगना। उ०—सनि कज्जल चख झष लगनि उपज्यो सुदिन सनेह। क्यों न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेस सब देह।—बिहारी।

भोगवान्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप। (२) नाट्य। (३) गान। गीत।

भोगवाना क्रि० स० [हिं० भोगना का प्रेर० रूप] भोगने में दूसरे को प्रवृत्त करना। भोग कराना।

भोगविलास-संज्ञा पुं० [सं०] आमोद प्रमोद। सुख चैन।

भोगांतराय-संज्ञा पुं० [सं०] वह अंतराय जिसका उदय होने से मनुष्य के भोगों की प्राप्ति में विघ्न पड़ता है। वह पाप कर्म्म जिनके उदित होने पर मनुष्य भोगने योग्य पदार्थ पाकर भी उनका भोग नहीं कर सकता। (जैन)

भोगाना-क्रि० स० [हिं० भोगना का प्रेर०] भोगने में दूसरे को प्रवृत्त करना। भोग कराना।

भोगिन-संज्ञा स्त्री० दे० "भोगिनी"।

भोगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा की उपपत्नी। राजा की रखेली स्त्री। (२) नागिन।

भोगींद्र-संज्ञा पुं० [सं०] पतंजलि का एक नाम।

भोगी-संज्ञा पुं० [सं० भोगिन् या भोगीन] (१) भोगनेवाला। वह जो भोगता हो। (२) साँप। (३) जमींदार। (४) नृप। राजा। (५) नापित। नाऊ। नाई। (६) शेषनाग। (डिं०)

वि० (१) सुखी। (२) इंद्रियों का सुख चाहनेवाला। (३) भुगतनेवाला। (४) विषयासक्त। (५) आनंद करनेवाला। विलासी। (६) विषयी। भोगासक्त। व्यसनी। ऐयाश। (७) खानेवाला।

भोगीन-संज्ञा पुं० दे० "भोगी"।

भोगेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

भोग्य-वि० [सं०] (१) भोगने योग्य। काम में लाने योग्य। (२) जिसका भोग किया जाय। (३) खाद्य (पदार्थ)।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन। (२) धान्य। (३) भोगबंधक।

भोग्यभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विलास की भूमि। आनंद का स्थान। (२) वह भूमि जिसमें किए हुए पाप-पुण्यों से सुख दुःख प्राप्त हों। मर्त्य लोक।

भोग्यमान-वि० [सं०] जो भोगा जाने को हो, अभी भोगा न गया हो। जैसे,—भोग्यमान नक्षत्र।

भोग्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

भोज-संज्ञा पुं० [सं० भोजन या भोज्य] (१) बहुत से लोगों का एक साथ बैठकर खाना पीना। जेवनार। दावत। (२) भोज्य पदार्थ। खाने की चीज। (३) ज्वार और भाँग के योग से बनी हुई एक प्रकार की शराब जो पूने की ओर मिलती है।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोजकट नामक देश जिसे आजकल भोजपुर कहते हैं। (२) चंद्रवंशियों के एक वंश का नाम। (३) पुराणानुसार शांति देवी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र का नाम। (४) महाभारत के अनुसार राजा द्रुह्यु के एक पुत्र का नाम। (५) श्रीकृष्ण के सखा एक ग्वाल का नाम। उ०—अर्जुन, भोज अरु सुबल श्रीदामा, मधुमंगल इक ताक।—सूर। (६) कान्यकुब्ज के एक प्रसिद्ध राजा जो महाराज रामभद्र देव के पुत्र थे। इन्होंने काश्मीर तक पर अधिकार किया था। ये नवीं शताब्दी में हुए थे। (७) मालवे के परमारवंशी एक प्रसिद्ध राजा जो संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान् कवि और विद्याप्रेमी थे।

विशेष—ये धारा नगरी के सिंधुल नामक राजा के लड़के थे और इनकी माता का नाम सावित्री था। जब ये पाँच वर्ष के थे, तभी इनके पिता अपना राज्य और इनके पालन पोषण का भार अपने भाई मुंज पर छोड़कर स्वर्गवासी हुए थे। मुंज इनकी हत्या करना चाहता था; इसलिये उसने बंगाल के राजा वत्सराज को बुलाकर उसको इनकी हत्या का भार सौंपा। वत्सराज इन्हें बहाने से देवी के सामने बलि देने के लिये ले गया। वहाँ पहुँचने पर जब भोज को मालूम हुआ कि यहाँ मैं बलि चढ़ाया जाऊँगा, तब उन्होंने अपनी जाँघ चीरकर उसके रक्त से बड़ के एक पत्ते पर दो श्लोक लिखकर वत्सराज को दिए और कहा कि ये मुंज को दे देना। उस समय वत्सराज को इनकी हत्या करने का साहस न हुआ और उसने इन्हें अपने यहाँ ले जाकर छिपा रखा। जब वत्सराज भोज का कृत्रिम कटा हुआ सिर लेकर मुंज के पास गया, और भोज के श्लोक उसने उन्हें दिए, तब मुंज को बहुत पश्चात्ताप हुआ। मुंज को बहुत विलाप करते देखकर वत्सराज ने उन्हें असल हाल बतला दिया और भोज को लाकर उनके सामने खड़ा कर दिया। मुंज ने सारा राज्य भोज को दे दिया और आप सस्त्रीक वन को चले। कहते हैं कि भोज बहुत बड़े वीर, प्रतापी, पंडित और गुणग्राही थे। इन्होंने अनेक देशों पर विजय प्राप्त की थी और कई विषयों के अनेक ग्रंथों का निर्माण किया था। ये बहुत अच्छे कवि, दार्शनिक और ज्योतिषी थे। सरस्वती कंठाभरण, शृंगारमंजरी, चंपूरामायण, चारुचर्य्या, तत्वप्रकाश, व्यवहार समुच्चय आदि अनेक ग्रंथ इनके लिखे हुए बतलाए जाते हैं। इनकी सभा सदा बड़े बड़े पंडितों से सुशोभित रहती थी। इनकी स्त्री का नाम लीलावती था, जो बहुत बड़ी विदुषी थी।

भोजक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोग करनेवाला। भोगी। (२) ऐयाश। विलासी। उ०—तुम बारी पिय भोजक राजा। गर्ब करोध वही पै छाजा।—जायसी।

भोजदेव-संज्ञा पुं० [सं०] कान्यकुब्ज के महाराज भोज। वि० दे० "भोज" (७)।

भोजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आहार को मुँह में रखकर चबाना। भक्षण करना। खाना। (२) वह जो कुछ भक्षण किया जाता हो। खाने की सामग्री। खाने का पदार्थ।

क्रि० प्र०—करना।—पाना।

मुहा०—भोजन पेट में पड़ना। भोजन होना। खाया जाना।

भोजनखानी*-संज्ञा स्त्री० [सं० भोजन + हिं० खान] पाकशाला। रसोईंघर। उ०—चकित विप्र सब सुनि नभ-बानी। भूप गयउ जहँ भोजनखानी।—तुलसी।

भोजनभट्ट-संज्ञा पुं० [हिं० भोजन + सं० भट] वह जो बहुत अधिक खाता हो। पेटू।

भोजनशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] रसोईंघर। पाकशाला।

भोजनाच्छादन-संज्ञा पुं० [सं०] खाना कपड़ा। अन्न वस्त्र। खाने और पहनने की सामग्री।

भोजनालय-संज्ञा पुं० [सं०] पाकशाला। रसोईंघर।

भोजनीय-वि० [सं०] भोजन करने योग्य। खाने योग्य। जो खाया जा सके।

भोजपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंसराज। (२) राजा भोज। वि० दे० "भोज" (७)।

भोजपत्र-संज्ञा पुं० [सं० भूर्जपत्र] एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष जो हिमालय पर १४००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी लकड़ी बहुत लचीली होती है और जल्दी खराब नहीं होती; इसलिये पहाड़ों में यह मकान आदि बनाने के काम में आती है। इसकी पत्तियाँ प्रायः चारे के काम में आती हैं। इसकी छाल कागज के समान पतली होती है और कई परतों में होती है। यह छाल प्राचीन काल में ग्रंथ और लेख आदि लिखने में बहुत काम आती थी; और अब भी तांत्रिक लोग इसे बहुत पवित्र मानते और इस पर प्रायः यंत्र मंत्र आदि लिखा करते हैं। इसके अतिरिक्त छाल का उपयोग छाते बनाने और छतें छाने में भी होता है; और कभी कभी यह पहनने के भी काम में आती है। छाल का रंग प्रायः लाली लिए खाकी होता है और उस पर छोटी छोटी धारियाँ होती हैं। इसके पत्तों का क्वाथ वातनाशक

जाता है । वैद्यक में इसे बलकारक, कफनाशक, कटु, कषाय और उष्ण माना गया है ।

पर्य्या०—चर्म्मी । बहुलवल्कल । छत्रपत्र । शित्र । स्थिरच्छद । मृदुत्वक् । पत्रपुष्पक । भुज । बहुपट । बहुत्वक् ।

भोजपरीक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] रसोई की परीक्षा करनेवाला । वह जो इस बात की परीक्षा करता हो कि भोजन में विष आदि तो नहीं मिला है ।

भोजपुरिया-संज्ञा पुं० [हिं० भोजपुर + इया (प्रत्य०)] भोजपुर का निवासी । भोजपुर का रहनेवाला ।

वि० भोजपुर संबंधी । भोजपुर का ।

भोजपुरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० भोजपुर + ई (प्रत्य०)] भोजपुर की भाषा ।

संज्ञा पुं० भोजपुर का निवासी ।

वि० भोजपुर का । भोजपुर संबंधी ।

भोजराज संज्ञा पुं० दे० "भोज" ।

भोजविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं० भोज + विद्या] इंद्रजाल । बाजीगरी ।

भोजी-संज्ञा पुं० [सं० भोजिन] खानेवाला । भोजन करनेवाला ।

भोजू*-संज्ञा पुं० [सं० भोजन] भोजन । आहार ।

भोजेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोजराज । (२) कंस । (३) दे० "भोज" (६) ।

भोज्य-संज्ञा पुं० [सं०] भोजन के पदार्थ । खाद्य पदार्थ ।

वि० खाने योग्य । जो खाया जा सके ।

भोट-संज्ञा पुं० [सं० भोटग] (१) भूटान देश । (२) एक प्रकार का बड़ा पत्थर जो प्रायः २॥ इंच मोटा, ५ फुट लंबा और १॥ फुट चौड़ा होता है ।

भोटिया-संज्ञा पुं० [हिं० भोट + इया (प्रत्य०)] भोट या भूटान देश का निवासी ।

संज्ञा स्त्री० भूटान देश की भाषा ।

वि० भूटान देश संबंधी । भूटान का । जैसे,-भोटिया टट्टू ।

भोटिया बादाम-संज्ञा पुं० [हिं० भोटिया + फा० बादाम] (१) आलूबुखारा । (२) मूँगफली ।

भोटी-वि० [हिं० भोट + ई (प्रत्य०)] भूटान देश का ।

भोडर†-संज्ञा पुं० [देश०] अभ्रक । अबरक । उ०—पायल पाय लगी रहै लगे अमोलक लाल । भोडर हू की भासिहै बेंदी भामिनि भाल ।—बिहारी । (२) अभ्रक का चूर जो होली आदि में गुलाल के साथ उड़ाया जाता है । बुका । (३) एक प्रकार का मुश्क बिलाव ।

भोडल-संज्ञा पुं० दे० "अबरक" ।

भोडागार-संज्ञा पुं० [सं० भांडागार] भंडार । (डिं०)

भोण-संज्ञा पुं० [सं० भवन] गृह । घर । मकान । (डिं०)

भोना*-क्रि० अ० [हिं० भीनना] (१) भीनना । संचरित होना । उ०—(क) रेख कछू कछू अंजन की कछू खंजन की अरुनाई रही भ्वै ।—रघुनाथ । (ख) तब लागो गावन बिभास बीच ख्याल एक ताल तान सुर को बधान बीच भ्वै रही ।—रघुनाथ । (२) लिप्त होना । लीन होना । (३) आसक्त होना । अनुरक्त होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

भोंपा-संज्ञा पुं० [भों से अनु०] (१) एक प्रकार की तुरही या फूँक कर बजाया जानेवाला बाजा । भोंपू । (२) मूर्ख । बेवकूफ ।

भोबरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे झेरन भी कहते हैं ।

भोम-संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि] पृथ्वी । (डिं०)

भोमी-संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि] पृथ्वी । (डिं०)

भोर-संज्ञा पुं० [सं० विभावरी] प्रातःकाल । सवेरा । तड़का । उ०—जागे भोर दौड़ि जननी ने अपने कंठ लगायो ।—सूर ।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का बड़ा पक्षी जिसके पर बहुत सुंदर होते हैं । यह जल तथा हरियाली को बहुत पसंद करता है । यह फल फूल तथा कीड़े मकोड़े खाता और खेतों को बहुत अधिक हानि पहुँचाता है । रात के समय ऊँचे वृक्षों पर विश्राम करता है । (२) खमो नामक सदा बहार वृक्ष ।

वि० दे० "खमो" ।

*†संज्ञा पुं० [सं० भ्रम] धोखा । भूल । भ्रम । उ०—(क) की दुहुँ रानि कौसिलहिं परिगा भोर हो ।—तुलसी । (ख) हँसत परस्पर आपु में चली जाहिं जिय भोर ।—सूर ।

वि० चकित । स्तंभित । उ०—सूर प्रभु की निरखि सोभा भईं तरुनी भोर ।—सूर ।

* वि० [हिं० भोला] भोला । सीधा । सरल । उ०—थाथी राखि न माँगेउ काऊ । बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ।—तुलसी ।

भोरा-संज्ञा पुं० [देश०] प्रायः एक फुट लंबी एक प्रकार की मछली जो युक्तप्रांत, मद्रास और ब्रह्म देश की नदियों में पाई जाती है ।

*†संज्ञा पुं० दे० "भोर" ।

* †-वि० भोला । सीधा । सरल ।

भोराई*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० भोरा + ई (प्रत्य०)] भोलापन । सिधाई । सरलता ।

भोराना*-क्रि० स० [हिं० भोर + आना (प्रत्य०)] भ्रम में डालना । बहकाना । धोखा देना । उ०—सूरदास लोगन के भोरए काहे कान्ह अब होत पराए ।—सूर ।

क्रि० अ० भ्रम में पड़ना । धोखे में आना ।

भोरानाथ*-संज्ञा पुं० [हिं० भोलानाथ] शिव । उ०—गौरीनाथ भोरानाथ भवत भवानीनाथ बिस्वनाथपुर फिरि आन कलि-काल की ।—तुलसी ।

भोरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] अफीम का एक रोग ।

भोरु*-संज्ञा पुं० दे० "भोर" ।

भोला-वि० [हिं० भूलना] (१) जिसे छल-कपट आदि न आता हो। सीधा-सादा। सरल।

यौ०—भोलानाथ। भोला भाला।

(२) मूर्ख। बेवकूफ।

भोलानाथ-संज्ञा पुं० [हिं० भोला + सं० नाथ,] महादेव। शिव।

भोलापन-संज्ञा पुं० [हिं० भोला + पन (प्रत्य०)] (१) सिधाई। सरलता। सादगी। (२) नादानी। मूर्खता।

भोला भाला-वि० [हिं० भोला + अनु० भाला] सीधा सादा। सरल चित्त का। निश्छल।

भोसर†-वि० [देश०] बेवकूफ। मूर्ख।

भौं-संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू] आँख के ऊपर के बालों की श्रेणी। भृकुटी। भौंह।

मुहा०—दे० "भौंह"।

भौंकना-क्रि० अ० [भौं भौं से अनु०] (१) भौं भौं शब्द करना। कुत्तों का बोलना। भूँकना। (२) बहुत बकवाद करना। निरर्थक बोलना। बक बक करना।

भौंगर-संज्ञा पुं० [देश०] छत्रियों की एक जाति। †वि० मोटा ताज़ा। हृष्ट पुष्ट।

भौंचाल†-संज्ञा पुं० दे० "भूकंप"।

भौंडी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटा पहाड़। पहाड़ी। टीला।

भौंड़ा†-वि० दे० "भोंडा"।

भौंतुवा-संज्ञा पुं० [हिं० भ्रमना = घूमना] (१) खटमल के आकार का एक प्रकार का काले रंग का कीड़ा जो प्रायः वर्षा ऋतु में जलाशयों आदि में जल-तल के ऊपर चक्कर काटता हुआ चलता है। (२) एक प्रकार का रोग जिसमें बाहुदंड के नीचे एक गिलटी निकल आती है। उ०—कहा भयो जो मन मिलि कलि कालहि कियो भौंतुवा भोर को हौं।—तुलसी। (३) तेली का बैल जो सबेरे से ही कोल्हू में जोता जाता है और दिन भर घूमा करता है।

भौंर-संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] (१) भौंरा। चंचरीक। (२) तेज बहते हुए पानी में पड़नेवाला चक्कर। आवर्त्त। नाँद।

क्रि० प्र०—पड़ना।

भौंरकली-संज्ञा स्त्री० दे० "भँवरकली"।

भौंरा-संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर = पा० भमर, प्रा० भँवर] [स्त्री० भँवरी] (१) काले रंग का उड़नेवाला एक पतंगा जो गोबरैले के बराबर होता है और देखने में बहुत दढ़ांग प्रतीत होता है। इसके छः पैर, दो पर और दो मूछें होती हैं। इसके सारे शरीर पर भूरे रंग के छोटे छोटे चमकदार रोएँ होते हैं। इसका रंग प्रायः नीलापन लिए चमकीला काला होता है और इसकी पीठ पर दोनों परों की जड़ के पास का प्रदेश पीले रंग का होता है। स्त्री के डंक होता है और वह डंक मारती है। यह गुंजारता हुआ उड़ा करता है और फूलों का रस पीता है। अन्य पतंगों के समान इस जाति के अंडे से भी ढोले निकलते हैं जो कालांतर में परिवर्त्तित होकर पतिंगे हो जाते हैं। यह डालियों और ठूठी टहनियों पर अंडे देता है। कवि इसकी उपमा और रूपक नायक के लिये लाते हैं। उनका यह भी कथन है कि यह सब फूलों पर बैठता है, पर चंपा के फूल पर नहीं बैठता। उ०—आपुहि भौंरा आपुहि फूल। आतम ज्ञान बिन जग भूल।—सूर। (२) बड़ी मधुमक्खी। सारंग। भंमर। डंगर। (३) काला वा लाल भड़। (४) एक खिलौना जो लट्टू के आकार का होता है और जिसमें कील वा छोटी डंडी लगी रहती है। इसी कील में रस्सी लपेटकर लड़के इसे भूमि पर नचाते हैं। उ०—लोचन मानत नाहिन बोल। ऐसे रहत श्याम के आगे मनु दै लीन्हें मोल। इत आवत दै जात देखाई ज्यों भौंरा चकडोर। उतते सूत्र न टारत कबहूँ मोसों मानत कोर।—सूर। (५) हिंडोले की वह लकड़ी जो मयारी में लगी रहती है और जिसमें डोरी वा डंडी बँधी रहती है। उ०—हिंडोरना माई झूलत गोपाल। संग राधा परम सुंदरि चहूँघा ब्रज-बाल। सुभग यमुना पुलिन मोहन रच्यो रुचिर हिंडोर। लाल डाँड़ी स्फटिक पटुली मणिन मरुवा घोर। भौंरा मयारिनि नील मरकत खँचे पाँति अपार। सरल कंचन खंभ सुंदर रच्यो काम श्रुतिहार।—सूर। (६) गाड़ी के पहिए का वह भाग, जिसके बीच के छेद में धुरे का गज रहता है और जिसमें आरा लगाकर पहिए की पुट्ठियाँ जड़ी जाती हैं। नाभि। लट्टा। मूँड़ी। (७) रहट की खड़ी चरखी जो भँवरी को फिराती है। चकरी (बुंदेल०)। (८) पशुओं का एक रोग जिसे चेचक कहते हैं (बुंदेल०)। (९) पशुओं की मिरगी (बुंदेल०)। (१०) वह कुत्ता जो गड़रियों की भेड़ों की रखवाली करता है। (११) एक प्रकार का कीड़ा जो ज्वार आदि की फसल को बहुत हानि पहुँचाता है।

संज्ञा पुं० [सं० भ्रमण] (१) मकान के नीचे का घर। तहखाना। (२) वह गड्ढा जिसमें अन्न रखा जाता है। खात। खत्ता।

†संज्ञा पुं० दे० "भाँवर"।

भौंराना*-क्रि० स० [सं० भ्रमण] (१) घुमाना। परिक्रमा कराना। (२) विवाह कराना। विवाह की भाँवर दिलाना। उ०—बर खोजाय टीका करो बहुरि देहु भौंराय।—विश्राम।

क्रि० अ० घूमना। चक्कर काटना। फेरी लगाना।

भौंरी-संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमण] (१) पशुओं आदि के शरीर में रोओं या बालों आदि के घुमाव से बना हुआ वह चक्र जिसके स्थान आदि के विचार से उनके गुण-दोष का निर्णय होता है। जैसे,—इस घोड़े के अगले दाहिने पैर की भौंरी अच्छी पड़ी है।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

(२) विवाह के समय वर-वधू का अग्नि की परिक्रमा करना। भाँवर ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—लेना ।

(३) तेज बहते हुए जल में पड़नेवाला चक्कर । आवर्त्त ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

(४) अँगाकड़ी । बाटी । (पकवान)

भौंह-संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रू] आँख के ऊपर की हड्डी पर जमे हुए रोएँ या बाल । भृकुटी । भौं । भँव ।

मुहा०—भौंह चढ़ाना या तानना=(१) नाराज होना। क्रुद्ध होना। उ०—वदत काहू नहीं निधरक निदरि मोहिं न गनत । बार बार बुझाइ हारी भौंह मोपर तनत ।—सूर । (२) त्योरी चढ़ाना । विगड़ना । भौंह जोहना=प्रसन्न रखने के लिये संकेत पर चलना । खुशामद करना । उ०—अकारन को हितू और को है । विरद गरीबनेवाज कौन को भौंह जासु जन जोहे ।—तुलसी । भौंह ताकना=किसी की प्रवृत्ति या विचार का ध्यान रखना । रुख देखना ।

भौ*-संज्ञा पुं० [सं० भव] संसार । जगत । दुनियाँ ।

संज्ञा पुं० [सं० भय] डर । खौफ़ । भय । उ०—मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई ।............लोक कहैं राम को गुलाम हौं कहावौं । ए तो बड़ो अपराध मन भौ न पावौं । —तुलसी ।

भौका†-संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० भौकी] बड़ी दौरी । टोकरा ।

भौगिया*†-संज्ञा पुं० [हिं० भोग+इया (प्रत्य०)] संसार के सुखों का भोग करनेवाला । वह जो सांसारिक सुख भोगता हो ।

भौगोलिक-वि० [सं०] भूगोल संबंधी । भूगोल का ।

भौचक-वि० [हिं० भय+चकित] जो कोई विलक्षण बात या आकस्मिक घटना देखकर घबरा गया हो । हक्का बक्का । चकपकाया हुआ । स्तंभित ।

क्रि० प्र०—रह जाना ।—होना ।

भौचाल†-संज्ञा पुं० दे० "भूकंप" ।

भौज*-संज्ञा स्त्री० [हिं० भावज] भाई की पत्नी। भौजाई। भावज। उ०—ननँद भौज परपंच रच्यो है मोर नाम कहि लीन्हा । —कबीर ।

भौजाई-संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रातृजाया] भाई की भार्या । भ्रातृवधू । भावज । भाभी ।

भौज्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह राज्य प्रबंध जिसमें प्रजा से राजा लाभ तो उठाता हो, पर प्रजा के सत्वों का कुछ विचार न करता हो । वह राज्य जो केवल सुख-भोग के विचार से होता हो, प्रजा-पालन के विचार से नहीं । इसमें प्रजा सदा दुःखी रहती है ।

भौंड़ा†-संज्ञा पुं० [देश०] छोटा पहाड़ । टीला । पहाड़ी ।

भौतिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव । (२) मुक्ता । मोती । (३) उपद्रव । (४) आधि-व्याधि । (५) आँख, नाक आदि इंद्रियाँ ।

वि० (१) पंचभूत संबंधी । (२) पाँचों भूतों से बना हुआ । पार्थिव । उ०—भौतिक देह जीय अभिमानी देखत ही दुख लायो ।—सूर । (३) शरीर संबंधी । शरीर का ।

यौ०—भौतिक सृष्टि ।

(४) भूतयोनि से संबंध रखनेवाला ।

यौ०—भौतिक विद्या ।

भौतिक विद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिसके अनुसार भूत प्रेत आदि से बातें की जाती हैं और उनके अद्भुत व्यापार जाने अथवा रोके जाते हैं । भूतों-प्रेतों को बुलाने और दूर करने की विद्या ।

भौतिक सृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ प्रकार की देव-योनि, पाँच प्रकार की तिर्यग्योनि और मनुष्य योनि, इन सबकी समष्टि ।

भौती-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात । रात्रि । रजनी ।

†संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बालिश्त लंबी और पतली लकड़ी जिसकी सहायता से ताने का चरखा घुमाते हैं । भेडंती । (जुलाहा)

भौत्य-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भूति मुनि के पुत्र और चौदहवें मनु का नाम ।

भौन*-संज्ञा पुं० [सं० भवन] घर । मकान ।

भौना*†-क्रि०अ० [सं० भ्रमण] चक्कर लगाना । घूमना ।

भौम-वि० [सं०] (१) भूमि संबंधी । भूमि का । (२) भूमि से उत्पन्न । पृथ्वी से उत्पन्न । जैसे,—मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि ।

संज्ञा पुं० (१) मंगल ग्रह । (२) अंबर । (३) लाल पुनर्नवा । (४) योग में एक प्रकार का आसन । (५) वह केतु या पुच्छल तारा जो दिव्य और अंतरिक्ष के परे हो ।

भौमदेव-संज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार प्राचीन काल की एक प्रकार की लिपि ।

भौम प्रदोष-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदोष व्रत जो मंगलवार को पड़े । वह त्रयोदशी जो मंगलवार के सायंकाल में पड़े । इस प्रदोष का माहात्म्य साधारण प्रदोष की अपेक्षा कुछ विशेष माना जाता है ।

भौमरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] मूँगा ।

भौमराशि- संज्ञा स्त्री० [सं०] मेष और वृष राशियाँ ।

भौमवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] भौमासुर की स्त्री का नाम ।

भौमवार-संज्ञा पुं० [सं०] मंगलवार ।

भौमासुर-संज्ञा पुं० [सं०] नरकासुर नाम का असुर । वि० दे० "नरकासुर" ।

भौमिक-संज्ञा पुं० [सं०] भूमि का अधिकारी या स्वामी । जमींदार ।

वि० भूमि संबंधी। भूमि का।

भौमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी की कन्या, सीता।

भौर#-संज्ञा पुं० [सं० भ्रमर] (१) दे० "भौंरा"। (२) घोड़ों का एक भेद। उ०—लील समंद हाल जग-जाने। हाँसल भौर गियाह बखाने।—जायसी। (३) दे० "भँवर"।

भौलिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] बजरे की तरह की पर उससे कुछ छोटी एक प्रकार की नाव जो ऊपर से ढकी रहती है।

भौसा-संज्ञा पुं० [देश०] (१) भीड़-भाड़। जन-समूह। (२) हो हुल्लड़। गड़बड़।

भ्रंगारी-संज्ञा पुं० [सं० भृंगार] झींगुर। (डिं०)

भ्रंगी-संज्ञा पुं० [सं० भृंगी] एक प्रकार का गुंजार करनेवाला पतिंगा।

भ्रंश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अधः पतन। नीचे गिरना। (२) नाश। ध्वंस। (३) भागना।

वि० भ्रष्ट। खराब।

भ्रकुंश, भ्रकुंस-संज्ञा पुं० [सं०] वह नाचनेवाला पुरुष जो स्त्री का वेष धरकर नाचता हो।

भ्रकुटि-संज्ञा स्त्री० [सं०] भृकुटी। भौंह।

भ्रत-संज्ञा पुं० [सं० भृत्य] दास। सेवक। (डिं०)

भ्रद्रु-संज्ञा पुं० [डिं०] हाथी।

भ्रम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ को और का और समझना। किसी चीज या बात को कुछ का कुछ समझना। मिथ्या ज्ञान। भ्रांति। धोखा। (२) संशय। संदेह। शक।

क्रि० प्र०—में डालना।—में पड़ना।—होना।

(३) एक प्रकार का रोग जिसमें रोगी का शरीर चलने के समय चक्कर खाता है और वह प्रायः जमीन पर पड़ा रहता है। यह रोग मूर्च्छा के अंतर्गत माना जाता है। (४) मूर्च्छा। बेहोशी। (५) नल। पनाला। (६) कुम्हार का चाक। (७) भ्रमण। घूमना फिरना। (८) वह पदार्थ जो चक्राकार घूमता हो। चारों ओर घूमनेवाली चीज।

वि० (१) घूमनेवाला। चक्कर काटनेवाला। (२) भ्रमण करनेवाला। चलनेवाला।

भ्रमकारी-वि० [सं० भ्रमकारिन्] भ्रम उत्पन्न करनेवाला। शक में डालनेवाला।

भ्रमण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घूमना-फिरना। विचरण। (२) आना-जाना। (३) यात्रा। सफर। (४) मंडल। चक्कर। फेरी।

भ्रमणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सैर या मनोविनोद के लिये चलना। घूमना फिरना। (२) जोंक।

भ्रमणीय-वि० [सं०] (१) घूमनेवाला। (२) चलने फिरनेवाला।

भ्रमना#-क्रि० अ० [सं० भ्रमण] घूमना। फिरना।

क्रि० अ० [सं० भ्रम] (१) धोखा खाना। भूल करना। उ०—कहा देखि के तुम भ्रमि गए।—सूर। (२) भटकना। भूलना।

भ्रममूलक-वि० [सं०] जो भ्रम के कारण उत्पन्न हुआ हो। जिसका आविर्भाव भ्रम के कारण हुआ हो। जैसे,—आपका यह विचार भ्रममूलक है।

भ्रमर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भौंरा। वि० दे० "भौंरा"।

यौ०—भ्रमर गुफा = योगशास्त्र के अनुसार हृदय के अंदर का एक स्थान। उ०—केवल सकल देह का साखी भ्रमर गुफा अटकाना।—कबीर। (२) उद्धव का एक नाम।

यौ०—भ्रमरगीत = वह गीत या काव्य जिसमें उद्धव के प्रति व्रज की गोपियों का उपालंभ हो।

(३) दोहे का पहला भेद जिसमें २२ गुरु और ४ लघु वर्ण होते हैं। उ०—सीता सीता-नाथ को गावो आठो जाम। इच्छा पूरी जो करै औ देवै विश्राम। (४) छप्पय का तिरसठवाँ भेद जिसमें ८ गुरु, १३६ लघु, १४४ वर्ण या कुल १५२ मात्राएँ होती हैं।

विं० कामुक। विषयी।

भ्रमरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) माथे पर लटकनेवाले बाल।

भ्रमरच्छली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बहुत बड़ा जंगली वृक्ष जिसके पत्ते बादाम के पत्तों के समान होते हैं और जिसमें बहुत पतली पतली फलियाँ लगती हैं। इसकी लकड़ी सफेद रंग की और बहुत बढ़िया होती है और प्रायः तलवार के म्यान बनाने के काम में आती है। वैद्यक में यह चरपरी, गरम, कड़वी, रुचिकारक, अग्निदीपक और सर्वदोष नाशक मानी जाती है।

पर्या०—भृंगाह्वा। भ्रमराह्वा। क्षीरद्रु। भृंगमूलिका। उग्रगंधा। छल्ली।

भ्रमरमारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा जो मालव में अधिकता से होता है। इसमें सुंदर और सुगंधित फूल लगते हैं। वैद्यक में यह तिक्त और पित्त, श्लेष्म, ज्वर, शोथ, कुष्ट, व्रण तथा त्रिदोष का नाश करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—भ्रमरादि। भृंगादि। मांसपुष्पिका। कुष्टारि। भ्रमरी। यष्टिलता।

भ्रमरविलासिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में म भ न ल ग SSS, SII, III, I, होता है। उ०—मैं भौने लोगन नहिं डरिहौं। माधो को दै मन नहिं फिरिहौं। फूलै वल्ली भ्रमरविलसिता। पावै शोभा अलि सह मुदिता।

भ्रमरहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के चौदह प्रकार के हस्तविन्यासों में से एक प्रकार का हस्तविन्यास।

भ्रमरा-संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमरच्छली नामक पौधा।

भ्रमरातिथि-संज्ञा पुं० [सं०] चंपा का वृक्ष ।

भ्रमरावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भँवरों की श्रेणी । (२) एक वृत्त का नाम जिसे नलिनी या मनहरण भी कहते हैं। इसके प्रत्येक पाद में पाँच सगण होते हैं। उ०—ससि सों सु सखी रघुनंदन को वदना । लखिकै पुलकीं मिथिलापुर की ललना । तिनके सुख में दिश फूल रहीं दशहूँ । पुर मैं नलिनी विकसीं जनु ओर चहूँ ।—जगन्नाथ ।

भ्रमरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जतुका नामक लता । पुत्रदात्री । षट्पदी । (२) मिरगी रोग । (३) पार्वती । (४) भौंरे की मादा । भौंरी ।

भ्रमरेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का श्योनाक ।

भ्रमरेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भुइँ-जामुन । (२) भारंगी ।

भ्रमवात-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का वह वायुमंडल जो सर्वदा घूमा करता है । उ०—सूखिगे गात चले नभ जात परे भ्रमवात न भूतल आए ।—तुलसी ।

भ्रमात्मक-वि० [सं०] जिससे अथवा जिसके संबंध में भ्रम उत्पन्न होता हो । संदिग्ध ।

भ्रमाना॥†-क्रि० स० [हिं० भ्रमना का स०] (१) घुमाना । फिराना । (२) धोखे में डालना । भटकाना ।

भ्रमासक्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अस्त्र शस्त्र आदि साफ करता हो ।

भ्रमित-वि० [सं०] (१) जिसे भ्रम हुआ हो । शंकित । (२) घूमता हुआ ।

भ्रमितनेत्र-वि० [सं०] ऐंचाताना ।

भ्रमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घूमना-फिरना । भ्रमण । (२) चक्कर लगाना । फेरी देना । (३) सेना की वह रचना जिसमें सैनिक मंडल बाँधकर खड़े होते हैं । (४) तेज बहते हुए पानी में का भौंर । नाँद । (५) कुम्हार का चाक ।

वि० [सं० भ्रमिन्] (१) जिसे भ्रम हुआ हो । (२) चकित । भौचक । उ०—किधौ वेदविद्या प्रभाई भ्रमी सी ।—केशव ।

भ्रष्ट-वि० [सं०] (१) नीचे गिरा हुआ । पतित । (२) जो खराब हो गया हो । जो अच्छी दशा में या काम का न रह गया हो । बहुत बिगड़ा हुआ । (३) जिसमें कोई दोष आ गया हो । दूषित । (४) जिसका आचरण खराब हो गया हो । बुरी चाल-चलनवाला । बद-चलन । दुराचारी ।

भ्रष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुंश्चली । कुलटा । छिनाल ।

भ्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तलवार के ३२ हाथों में से एक । तलवार को गोलाकार घुमाना । इसके द्वारा दूसरे के चलाए हुए शस्त्र को व्यर्थ किया जाता है । (२) राज-धतूरा । (३) मस्त हाथी । (४) घूमना-फिरना । भ्रमण ।

वि० [सं०] (१) जिसे भ्रांति या भ्रम हुआ हो । धोखे में आया हुआ । भूला हुआ । (२) व्याकुल । घबराया हुआ । हक्का बक्का । (३) उन्मत्त । (४) घुमाया हुआ ।

भ्रांतापह्नुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक काव्यालंकार जिसमें किसी भ्रांति को दूर करने के लिये सत्य वस्तु का वर्णन होता है ।

भ्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भ्रम । धोखा । (२) संदेह । संशय । शक । (३) भ्रमण । (४) पागलपन । (५) भँवरी । घुमेर । (६) भूलचूक । (७) मोह । प्रमाद । (८) एक प्रकार का काव्यलंकार । इसमें किसी वस्तु को, दूसरी वस्तु के साथ उसकी समानता देखकर, भ्रम से वह दूसरी वस्तु ही समझ लेना वर्णित होता है । जैसे,—अटारी पर नायिका को देखकर कहना—हैं ! यह चंद्रमा कहाँ से निकल आया !

भ्राज-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम को गवामयन सत्र में विषुव नामक प्रधान दिन में गाया जाता था ।

भ्राजक-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार त्वचा में रहनेवाला पित्त । शरीर में जो कुछ तेल आदि मला जाता है, उसका परिपाक इसी पित्त के द्वारा होना माना जाता है ।

भ्राजना॥-क्रि० अ० [सं० भ्राजन = दीपन] (१) शोभा पाना । शोभायमान होना । उ०—(क) उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषन वीर ।—तुलसी । (ख) केकी पच्छ मुकुट सिर भ्राजत । गौरी राग मिले सुर गावत ।—सूर ।

भ्राजमान॥-वि० [हिं० भ्राजना + मान (प्रत्य०)] शोभायमान ।

भ्राजिर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भौत्य मन्वंतर के एक प्रकार के देवता ।

भ्रात॥-संज्ञा पुं० दे० "भ्राता" ।

भ्राता-संज्ञा पुं० [सं० भ्रातृ] सगा भाई । सहोदर ।

भ्रातृक-संज्ञा पुं० [सं०] वह धन आदि जो भाई से मिला हो ।

भ्रातृज-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० भ्रातृजा] भाई का लड़का । भतीजा ।

भ्रातृजाया-संज्ञा स्त्री० [सं०] भाई की स्त्री । भौजाई । भाभी ।

भ्रातृत्व-संज्ञा पुं० [सं०] भाई होने का भाव या धर्म्म । भाईपन ।

भ्रातृद्वितीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया । यम द्वितीया । भाई दूज ।

विशेष—इस दिन यम और चित्रगुप्त का पूजन किया जाता है, बहनों से तिलक लगवाया जाता है, उन्हीं के दिए हुए पदार्थ खाए जाते हैं और उन्हें कुछ द्रव्य दिया जाता है ।

भ्रातृपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] भाई का लड़का । भतीजा ।

भ्रातृभाव-संज्ञा पुं० [सं०] भाई का सा प्रेम या संबंध । भाई-चारा । भाईपन ।

भ्रातृवधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] भौजाई । भाभी । भावज ।

भ्रातृव्य-संज्ञा पुं० [सं०] भाई का लड़का । भतीजा ।

भ्रातृश्वसुर-संज्ञा पुं० [सं०] पति का बड़ा भाई । जेठ । भसुर ।

भ्रामक-वि० [सं०] (१) भ्रम में डालनेवाला । बहकानेवाला ।

धोखे में डालनेवाला। (२) संदेह उत्पन्न करनेवाला। (३) घुमानेवाला। चक्कर दिलानेवाला। (४) धूर्त्त। चालबाज। संज्ञा पुं० (१) गीदड़। सियार। (२) चुंबक पत्थर। (३) कांति लोहा।

भ्रामर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रमर से उत्पन्न, मधु। शहद। (२) दोहे का दूसरा भेद। इसमें २१ गुरु और ६ लघु मात्राएँ होती हैं। उ०—माधो मेरे ही बसो राखो मेरी लाज। कामी क्रोधी लंपटी जानि न छाँड़ो काज। (३) वह नृत्य जिसमें बहुत से लोग मंडल बनाकर नाचते हैं। रास। (४) चुंबक पत्थर। (५) अपस्मार रोग।

वि० भ्रमर संबंधी। भ्रमर का।

भ्रामरी-संज्ञा पुं० [सं० भ्रामरिन्] जिसे भ्रामर या अपस्मार रोग हुआ हो।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती। (२) पुत्रदात्री नाम की लता।

भ्राष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश। (२) वह बरतन जिसमें भड़भूँजे अनाज रखकर भूनते हैं।

भ्राष्ट्रकि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

भ्रास्त्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर की एक नाड़ी का नाम।

भ्रुकुंस-संज्ञा पुं० [सं०] वह नट जो स्त्री का वेष धारण करके नाचता हो।

भ्रुकुटि-संज्ञा स्त्री० दे० "भृकुटी"।

भ्रुकुटिमुख-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

भ्रू-संज्ञा स्त्री० [सं०] आँखों के ऊपर के बाल। भौं। भौंह।

क्रि० प्र०—चलाना।—मटकाना।—हिलाना।

भ्रूण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्री का गर्भ। (२) बालक की उस समय की अवस्था जब कि वह गर्भ में रहता है। बालक की जन्म लेने से पहले की अवस्था।

भ्रूणहत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भ गिराकर या और किसी प्रकार गर्भ में आए हुए बालक की हत्या। गर्भ के बालक की हत्या।

भ्रूणहा-संज्ञा पुं० [सं० भ्रूणहन्] वह जिसने भ्रूण-हत्या की हो।

भ्रूप्रकाश-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का काला रंग जिससे श्रृंगार आदि के लिये भौंहें बनाते हैं।

भ्रूभंग-संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध आदि प्रकट करने के लिये भौंह चढ़ाना। त्यौरी चढ़ाना। उ०—ब्रह्म रुद्र उर डरत काल के काल डरत भ्रुवभंग की आँची।—सूर।

भ्रूविक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] त्योरी बदलना। नाराजगी दिखाना। भ्रूभंग।

भ्रेष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाश। (२) चलना। गमन। (३) भय। डर।

भ्रौणहत्या-संज्ञा स्त्री० दे० "भ्रूणहत्या"।

भ्वहरना*†-क्रि० अ० [हिं० भय + हरना (प्रत्य०)] भयभीत होना। डरना।

भ्वासर‡-वि० [देश०] बेवकूफ। मूर्ख।

म

म-हिंदी वर्णमाला का पचीसवाँ व्यंजन और प-वर्ग का अंतिम वर्ण। इसका उच्चारण स्थान होंठ और नासिका है। जिह्वा के अगले भाग का दोनों होंठों से स्पर्श होने पर इसका उच्चारण होता है। यह स्पर्श और अनुनासिक वर्ण है। इसके उच्चारण में संवार, नादघोष और अल्पप्राण प्रयत्न लगते हैं। प, फ, ब और भ इसके सवर्ण हैं।

मंकणक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) महाभारत के अनुसार एक यक्ष का नाम।

मंकुर-संज्ञा पुं० [सं०] दर्पण। शीशा।

मंखी-संज्ञा स्त्री० [देश०] बच्चों के कंठ में पहनाने का एक गहना।

मंग-संज्ञा पुं० [सं०] नाव का अगला भाग। गलही।

मंगता-संज्ञा पुं० [हिं० माँगना + ता (प्रत्य०)] भिखमंगा। भिक्षुक।

मंगन-संज्ञा पुं० [हिं० माँगना] भिखमंगा। भिक्षुक।

मँगनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० माँगना + ई (प्रत्य०)] (१) माँगने की क्रिया या भाव। (२) वह पदार्थ जो किसी से इस शर्त्त पर माँगकर लिया जाय कि कुछ समय तक काम लेने के के उपरांत फिर लौटा दिया जायगा। जैसे,—मँगनी की गाड़ी, मँगनी की किताब। (३) इस प्रकार माँगने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।—लेना।

(४) विवाह के पहले की वह रस्म जिसके अनुसार वर और कन्या का संबंध निश्चित होता है। जैसे,—चट मँगनी, पट ब्याह।

विशेष—साधारणतः वर पक्ष के लोग कन्या-पक्षवालों से विवाह के लिये कन्या माँगा करते हैं; और जब वर तथा कन्या के विवाह की बातचीत पक्की होती है, तब उसे मँगनी कहते हैं। इसके कुछ दिनों के उपरांत विवाह होता है। मँगनी केवल सामाजिक रीति है, कोई धार्म्मिक कृत्य नहीं है। अतः एक स्थान पर मँगनी हो जाने पर संबंध छूट सकता है और दूसरी जगह विवाह हो सकता है।

मंगल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभीष्ट की सिद्धि। मनोकामना का पूर्ण होना। (२) कल्याण। कुशल। भलाई। जैसे,—आपका मंगल हो। (३) सौर जगत का एक प्रसिद्ध ग्रह जो पृथ्वी के उपरांत पहले पहल पड़ता है और जो सूर्य्य से १४,१५,००,००० मील दूर है। यह हमारी पृथ्वी से बहुत ही छोटा और चंद्रमा से प्रायः दूना है। इसका वर्ष अथवा सूर्य्य की एक बार परिक्रमा करने का काल हमारे ६८७ दिनों का होता है; और इसका दिन हमारे दिन की अपेक्षा प्रायः आध घंटा बड़ा होता है। इसके साथ दो उपग्रह या चंद्रमा हैं जिनमें से एक प्रायः आठ घंटे में और दूसरा प्रायः तीस घंटे में इसकी परिक्रमा करता है। इसका रंग गहरा लाल है। अनुमान किया जाता है कि इस ग्रह में स्थल और नहरों आदि की बहुत अधिकता है और यहाँ का जल-वायु हमारी पृथ्वी के जल-वायु के बहुत कुछ समान है। पुराणानुसार यह ग्रह पुरुष, क्षत्रिय, सामवेदी, भरद्वाज मुनि का पुत्र, चतुर्भुज, चारों भुजाओं में शक्ति, वर, अभय तथा गदा का धारण करनेवाला, पित्त प्रकृति, युवा, क्रूर, वनचारी, गेरू आदि धातुओं तथा लाल रंग के समस्त पदार्थों का स्वामी और कुछ अंगहीन माना जाता है। इसके अधिष्ठाता देवता कार्त्तिकेय कहे गए हैं और यह अवंति देश का अधिपति बतलाया गया है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है कि एक बार पृथ्वी विष्णु भगवान् पर आसक्त होकर युवती का रूप धारण करके उनके पास गई थी। जब विष्णु उसका शृंगार करने लगे, तब वह मूर्च्छित हो गई। उसी दशा में विष्णु ने उससे संभोग किया, जिससे मंगल की उत्पत्ति हुई। पद्मपुराण में लिखा है एक बार विष्णु का पसीना पृथ्वी पर गिरा था, जिससे मंगल की उत्पत्ति हुई। मत्स्यपुराण में लिखा है कि दक्ष का नाश करने के लिये महादेव ने जिस वीरभद्र को उत्पन्न किया था, वही वीरभद्र पीछे से मंगल हुआ। इसी प्रकार भिन्न भिन्न पुराणों में इसकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ दी हुई हैं।

पर्य्या०—अंगारक। भौम। कुज। वक्र। महीसुत। लोहितांग। ऋणांतक। आवनेय।

(४) एक वार जो इस ग्रह के नाम से प्रसिद्ध है। मंगलवार। (५) विष्णु।

मंगलचंडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

मंगलच्छाय-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ का पेड़।

मंगलपाठक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो राजाओं की स्तुति आदि करता हो। वंदीजन।

मंगलप्रद-वि० [सं०] जिससे मंगल होता हो। मंगल करनेवाला।

मंगलप्रदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हलदी। (२) शमी का वृक्ष।

मंगलप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

मंगलवाद-संज्ञा पुं० [सं०] आशीर्वाद। आशीष।

मंगलवार-संज्ञा पुं० [सं०] सात वारों में तीसरा वार जो सोमवार के उपरांत और बुधवार के पहले पड़ता है। भौमवार।

मंगलसूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह तागा जो किसी देवता के प्रसाद रूप में किसी शुभ अवसर पर कलाई में बाँधा जाता है।

मंगलस्नान-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्नान जो मंगल की कामना से अथवा किसी शुभ अवसर पर किया जाता है।

मंगला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती। (२) सफेद दूब। (३) पतिव्रता स्त्री। (४) एक प्रकार का करंज। (५) हलदी। (६) नीली दूब।

मंगलाचरण-संज्ञा पुं० [सं०] वह श्लोक या पद आदि जो किसी शुभ कार्य्य के आरंभ में मंगल की कामना से पढ़ा, लिखा या कहा जाय।

मंगलामुखी-संज्ञा स्त्री० [सं० मंगल + मुखी] वेश्या। रंडी।

मंगलारंभ-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

मंगलालय-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

मंगलाव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) एक व्रत जो स्त्रियाँ पार्वती के उद्देश्य से करती हैं।

मंगली-वि० [सं० मंगल (ग्रह)] जिसकी जन्मकुंडली के चौथे, आठवें या बारहवें स्थान में मंगल ग्रह पड़ा हो। (ऐसा स्त्री या पुरुष, फलित ज्योतिष के अनुसार, कई बातों में बुरा और विशेषतः विवाह संबंध के लिये बहुत ही बुरा और अनुपयुक्त समझा जाता है; और वर या कन्या में से जो मंगली होता है, वह दूसरे पर भारी माना जाता है।)

मंगल्य-वि० [सं०] (१) मंगलकारक। मंगल या कल्याण करनेवाला। (२) सुंदर। (३) साधु।

संज्ञा पुं० (१) त्रायमाणा लता। (२) अश्वत्थ। (३) बेल। (४) मसूर। (५) जीवक वृक्ष। (६) नारियल। (७) कैथ। (८) रीठा करंज। (९) दही। (१०) चंदन। (११) सोना। (१२) सिंदूर।

मंगल्यकुसुमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखपुष्पी।

मंगल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का अगर जिसमें चमेली की सी गंध होती है। (२) शमी। (३) सफेद बच। (४) रोचना। (५) शंखपुष्पी। (६) जीवंती। (७) ऋद्धि लता। (८) हल्दी। (९) दूब। (१०) दुर्गा का एक नाम।

मँगवाना-क्रि० स० [हिं० माँगना का प्रेर०] (१) माँगने का काम दूसरे से कराना। किसी को माँगने में प्रवृत्त करना। जैसे,—तुम्हारे ये लक्षण तुमसे भीख मँगवाकर छोड़ेंगे। (२) किसी को कोई चीज मोल खरीदकर या किसी से माँगकर लाने में प्रवृत्त करना। जैसे,—(क) अगर मैं किताब मँगवाऊँ,

तो भेज दीजिएगा। (ख) एक रुपए की मिठाई मँगवा लो।
संयो० क्रि०—देना।—रखना।—लेना।

मँगाना—क्रि० स० [हिं० माँगना का प्रे०] (१) दे० "मँगवाना"। (२) मँगनी का संबंध कराना। विवाह की बातचीत पक्की कराना।

मँगेतर—वि० [हिं० मँगनी + एतर (प्रत्य०)] जिसकी किसी के साथ मँगनी हुई हो। किसी के साथ जिसके विवाह की बातचीत पक्की हो गई हो।

मँगोल—संज्ञा पुं० [मंगोलिया प्रदेश से] मध्य एशिया और उसके पूरब की ओर (तातार, चीन, जापान में) बसनेवाली एक जाति जिसका रंग पीला, नाक चिपटी और चेहरा चौड़ा होता है।
विशेष—पृथ्वी के मनुष्यों के जो प्रधान चार वर्ग किए गए हैं, उनमें एक मंगोल भी है जिसके अंतर्गत नैपाल, तिब्बत, चीन, जापान आदि के निवासी माने जाते हैं। आज से छः सात सौ वर्ष पहले इस जाति के लोगों ने एशिया के बहुत बड़े और युरोप के कुछ भाग पर भी अधिकार कर लिया था।

मंच, मंचक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खाट। खटिया। (२) खाट की तरह बुनी हुई बैठने को छोटी पीढ़ी। मँचिया। (३) ऊँचा बना हुआ मंडल जिस पर बैठकर सर्वसाधारण के सामने किसी प्रकार का कार्य किया जाय। जैसे,—रंगमंच।

मंचपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरपत्री नाम की लता।

मंचकाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] खटमल।

मंचकासुर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक असुर का नाम।

मंचमंडप—संज्ञा पुं० [सं०] खेतों में बनी हुई वह मचान जिस पर खेतिहर लोग बैठकर पशुओं आदि से खेतों की रक्षा करते हैं।

मंजर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोती। (२) तिल का पौधा।

मंजरिका—संज्ञा स्त्री० दे० "मंजरी"।

मंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटे पौधे या लता आदि का नया निकला हुआ कल्ला। कोंपल। (२) कुछ विशिष्ट वृक्षों या पौधों में फूलों या फलों के स्थान में एक सींके में लगे हुए बहुत से दानों का समूह। जैसे,—आम की मंजरी, तुलसी की मंजरी। (३) मोती। (४) तिल का पौधा। (५) लता। बेल। (६) तुलसी।

मंजरीक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुलसी। (२) मोती। (३) तिल का पौधा। (४) बेंत (लता)। (५) अशोक का वृक्ष।

मंजि—संज्ञा स्त्री० दे० "मंजरी"।

मंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

मंजिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] केला।

मंजिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ।

मंजिष्ठामेह—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मजीठ के पानी के समान मूत्र होता है।

मंजी—संज्ञा स्त्री० दे० "मंजरी"।

मंजीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नूपुर। घुँघरू। (२) वह खंभा या लकड़ी जिसमें मथानी का डंडा बँधा रहता है। (३) एक पहाड़ी जाति जो पश्चिमी बंगाल में रहती है।

मंजु—वि० [सं०] सुंदर। मनोहर।

मंजुकेशी—संज्ञा पुं० [सं० मंजुकेशिन्] श्रीकृष्ण।

मंजुगर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] नेपाल देश का प्राचीन नाम।

मंजुघोष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तांत्रिकों के एक देवता का नाम। कहते हैं कि इनका पूजन करने से मूर्खता दूर होती है। (२) एक प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य्य जो बौद्ध धर्म्म का प्रचार करने के लिये चीन गए थे। कहा जाता है कि जिस स्थान पर आजकल नेपाल देश है, उस स्थान पर पहले जल था। इन्होंने मार्ग बनाकर वह जल निकाला था और उस देश को मनुष्यों के रहने के योग्य बनाया था। इन्हें मंजुदेव और मंजुश्री भी कहते हैं।

मंजुघोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

मंजुदेव—संज्ञा पुं० दे० "मंजुघोष" (२)।

मंजुनाशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा का एक नाम। (२) इंद्राणी का एक नाम।

मंजुपाठक—संज्ञा पुं० [सं०] तोता।

मंजुप्राण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

मंजुभद्र—संज्ञा पुं० दे० "मंजुघोष" (२)।

मंजुल—वि० [सं०] सुंदर। मनोहर। खूबसूरत।
संज्ञा पुं० (१) नदी या जलाशय का किनारा। (२) कुंज।

मंजुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

मंजुवज्र—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के एक देवता का नाम।

मंजुश्री—संज्ञा पुं० दे० "मंजुघोष" (२)।

मंजूर—वि० [अ०] जो मान लिया गया हो। स्वीकृत।

मंजूरी—संज्ञा स्त्री० [अ० मनज़ूर + ई (प्रत्य०)] मंजूर होने का भाव। स्वीकृति।
क्रि० प्र०—देना।—पाना।—माँगना।—मिलना।—लेना।

मंजूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटा पिटारा या डिब्बा। पिटारी। (२) पत्थर। (३) मजीठ।

मंजूसा—संज्ञा पुं० दे० "मंजूषा"।

मंझा*†—वि० [सं० मध्य = पा० मज्झ] मध्य का। बीच का। जो दो के बीच में हो।
संज्ञा पुं० (१) सूत कातने के चरखे में वह मध्य का अवयव जिसके ऊपर माल रहती है। मुँडला। (२) अटेरन के बीच की लकड़ी। मँझेरू।
संज्ञा स्त्री० वह भूमि जो गोयंड और पालों के बीच में हो।
संज्ञा पुं० [सं० मंच] (१) चौकी। (२) पलंग। खाट (पंजाब)।

संज्ञा पुं० [हिं० माँजना] वह पदार्थ जिससे रस्सी वा पतंग की डोर को माँजते हैं। माँझा।

मुहा०—मंझा देना = माँजना। लेस चढ़ाना।

मंठ-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का मैदे का बना हुआ पकवान जो शीरे में डुबोया हुआ होता था।

मंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उबले हुए चावलों आदि का गाढ़ा पानी। भात का पानी। माँड़। (२) पिच्छ। सार। (३) एरंड वृक्ष। अंडी। (४) भूषा। सजावट। (५) मेंढक। (६) एक प्रकार का साग।

मंडक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का पिष्टक। मैदे की एक प्रकार की रोटी। माँड़ा। (२) माधवी लता। (३) गीत का एक अंग।

मंडन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शृंगार करना। अलंकरण। सजाना। सँवारना। (२) युक्ति आदि देकर किसी कथन या सिद्धांत का पुष्टीकरण। प्रमाण आदि द्वारा कोई बात सिद्ध करना। 'खंडन' का उलटा। जैसे,—पक्ष का मंडन।

मंडना*-क्रि० स० [सं० मंडन] (१) मंडित करना। सुसज्जित करना। सँवारना। भूषित करना। शृंगार करना। (२) युक्ति आदि देकर सिद्ध या प्रतिपादित करना। समर्थन या पुष्टिकरण करना।

क्रि० स० [सं० मर्दन] मर्दित करना। दलित करना। माँड़ना। उ०—प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड खंडि मंडि मेदिनी को मंडलीक-लीक लोपिहैं।—तुलसी।

मंडप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐसा स्थान जहाँ बहुत से लोग धूप, वर्षा आदि से बचते हुए बैठ सकें। विश्राम स्थान। घर। जैसे,—देव मंडप। (२) बहुत से आदमियों के बैठने योग्य चारों ओर से खुला, पर ऊपर से छाया हुआ स्थान। बारहदरी।

विशेष—ऐसा स्थान प्रायः पटे हुए चबूतरे के रूप में होता जिसके ऊपर खंभों पर टिकी छत या छाजन होती है। देवमंदिरों के सामने नृत्य गीत आदि के लिये भी ऐसा स्थान प्रायः होता है।

(३) किसी उत्सव या समारोह के लिये बाँस, फूस आदि से छाकर बनाया हुआ स्थान। जैसे,—यज्ञमंडप, विवाह-मंडप। (४) देवमंदिर के ऊपर का गोल या गावदुम हिस्सा। (५) चँदोवा। शामियाना।

मंडपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा मंडप।

मंडपी-संज्ञा स्त्री० [सं० मंडप] छोटा मंडप। मढ़ी।

मंडर*-संज्ञा पुं० दे० "मंडल"।

मँडरना-क्रि० अ० [सं० मंडल] मंडल बाँधकर छा जाना। चारों ओर से घेर लेना। उ०—झाँझ ताल सुर मंडरे रँग हो हो होरी।—सूर।

मँडराना-क्रि० अ० [सं० मंडल] (१) मंडल बाँधकर उड़ना। किसी वस्तु के चारों ओर घूमते हुए उड़ना। चक्कर देते हुए उड़ना। जैसे,—चील का मँडराना। उ०—हंस को मैं अंश राख्यो काग कत मँडराय?—सूर। (२) किसी के चारों ओर घूमना। परिक्रमण करना। उ०—मंडप ही में फिरै मँडरात न जात कहूँ तजि नेह को ओनो।—पद्माकर। (३) किसी के आस पास ही घूम फिरकर रहना। उ०—देखहु जाय और काहू को हरि पै सबै रहति मँडरानी।—सूर।

मँडरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] पयाल की बनी हुई गोंदरी या चटाई।

मंडल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चक्र के आकार का घेरा। किसी एक विंदु से समान अंतर पर चारों ओर घूमी हुई परिधि। चक्कर। गोलाई। वृत्त।

मुहा०—मंडल बाँधना = (१) चारों ओर वृत्त की रेखा के रूप में फिरना। चक्कर काटना। जैसे, मंडल बाँधकर नाचना। (२) चारों ओर घेरना। चारों ओर से छा जाना। जैसे,—बादलों का मंडल बाँधकर बरसना। (३) अँधेरे का चारों ओर छा जाना।

(२) गोल फैलाव। वृत्ताकार या अंडाकार विस्तार। गोला। जैसे,—भूमंडल। (३) चंद्रमा वा सूर्य के चारों ओर पड़नेवाला घेरा जो कभी कभी आकाश में बादलों की बहुत हलकी तह या कुहरा रहने पर दिखाई पड़ता है। परिवेश। (४) किसी वस्तु का वह गोल भाग जो अपनी दृष्टि के सम्मुख हो। जैसे,—चंद्रमंडल, सूर्यमंडल, मुखमंडल। (५) चारों दिशाओं का घेरा जो गोल दिखाई पड़ता है। क्षितिज। (६) बारह राज्यों का समूह।

यौ०—मंडलेश्वर।

(७) चालीस योजन लंबा और बीस योजन चौड़ा भूमिखंड वा प्रदेश। (८) समाज। समूह। समुदाय। जैसे,—मित्रमंडल। उ०—गोपिन मंडल मध्य बिराजत निसि दिन करत बिहार।—सूर। (९) एक प्रकार का व्यूह। सेना की वृत्ताकार स्थिति। (१०) कूकुर। कुत्ता। (११) एक प्रकार का सर्प। (१२) एक प्रकार का गंधद्रव्य। व्याघ्रनखा। बघनही। (१३) एक प्रकार का कुष्ट रोग जिसमें शरीर में चकत्ते से पड़ जाते हैं। (१४) शरीर की आठ संधियों में से एक। (सुश्रुत०) (१५) ग्रह के घूमने की कक्षा। (१६) गेंद। (खेलने का) (१७) कोई गोल दाग वा चिह्न। (१८) ऋग्वेद का एक खंड। (१९) चक्र। चाक। पहिया।

मंडलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "मंडल"। (२) दर्पण।

मंडलनृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] गति भेदानुसार नृत्य का एक भेद। वृत्त की परिधि के रूप में घूमते हुए नाचना।

मंडलपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्त पुनर्नवा। लाल गदहपूरना।

मंडलपुच्छक-संज्ञा पुं० [सं०] एक कीड़ा जिसको सुश्रुत में प्राणनाशक लिखा है। इसके काटने से सर्प का सा विष चढ़ता है।

मंडलाकार-वि० [सं०] गोल।

मंडलाग्र-संज्ञा पुं० [सं०] चीर फाड़ में काम आनेवाला एक प्रकार का शस्त्र या औज़ार। (सुश्रुत)

मंडलाना-क्रि० अ० दे० "मँडराना"।

मंडलायित-वि० [सं०] वर्त्तुल। गोल।

मंडली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) समूह। गोष्ठी। समाज। जमाअत। समुदाय। (२) दूब। (३) गुडुच।

संज्ञा पुं० [सं० मंडलिन्] (१) एक प्रकार का साँप। सुश्रुत के गिनाए हुए साँप के आठ भेदों में से एक।

विशेष—इनके शरीर में गोल गोल चित्तियाँ सी होती हैं और यह भारी होने के कारण चलने में उतने तेज नहीं होते।

(२) वटवृक्ष। (३) बिल्ली। विड़ाल। (४) नेवले की जाति का बिल्ली की तरह का एक जंतु जिसे बंगाल में खटाश और युक्त प्रांत में कहीं कहीं सेंधुवार कहते हैं। (५) सूर्य। उ०—मुख तेज सहस दस मंडली बुधि दस सहस कमंडली। —गोपाल।

मंडलीक-संज्ञा पुं० [सं० मांडलीक] एक मंडल वा १२ राजाओं का अधिपति। उ०—बालक नृपाल जू के ख्याल ही पिनाक तोर्‌यो मंडलीक मंडली प्रताप दाप दाली री।—तुलसी।

मंडलेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक मंडल का अधिपति। १२ राजाओं का अधिपति।

मँड़वा-संज्ञा पुं० [सं० मंडप, प्रा० मंडव] मंडप।

मंडहारक-संज्ञा पुं० [सं०] मद्य का व्यवसायी। कलवार।

मंडा-संज्ञा पुं० [सं० मंडल] भूमि का एक मान जो दो बिस्वे के बराबर होता है।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बँगला मिठाई।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुरा। (२) आमलकी।

मँडार†-संज्ञा पुं० [सं० मंडल] गड्ढा।

मंडित-वि० [सं०] (१) विभूषित। सजाया हुआ। सँवारा हुआ। (२) आच्छादित। छाया हुआ। (३) पूरित। भरा हुआ।

मँड़िआर-संज्ञा पुं० [देश०] झरबेरी नामक कँटीली झाड़ी।

मंडी-संज्ञा स्त्री० [सं० मंडप] थोक बिक्री की जगह। बहुत भारी बाजार जहाँ व्यापार की चीजें बहुत आती हों। बड़ा हाट। जैसे,—अनाज की मंडी।

मुहा०—मंडी लगना = बाज़ार खुलना।

संज्ञा स्त्री० [सं० मंडल] भूमि मापने का एक मान जो दो बिस्वे के बराबर होता है।

मँडुआ-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कदन्न।

मंडूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेंढक। (२) एक ऋषि। (३) दोहा छंद का पाँचवाँ भेद जिसमें १८ गुरु और १२ लघु अक्षर होते हैं। (४) रुद्रताल के ग्यारह भेदों में से एक। (५) प्राचीन काल का एक बाजा। (६) एक प्रकार का नृत्य। (७) घोड़े की एक जाति।

मंडूकपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्राह्मी बूटी। (२) मंजिष्ठा।

मंडूका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मंजिष्ठा। मजीठ।

मंडूकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्राह्मी। (२) आदित्यभक्ता।

मंडूर-संज्ञा पुं० [सं०] लोह कीट। गलाए हुए लोहे की मैल। सिंघान।

विशेष—वैद्य लोग औषध में इसका व्यवहार शोध कर करते हैं। इसमें लोहे का ही गुण माना जाता है। मंडूर जितना ही पुराना हो, उतना ही व्यवहार के योग्य और गुणकारी माना जाता है। सौ वर्ष का मंडूर सब से उत्तम कहा गया है। बहेड़े की लकड़ी में जलाकर सात बार गोमूत्र में डालने से मंडूर शुद्ध हो जाता है। इसके सेवन से ज्वर, प्लीहा, कँवल आदि रोग आराम होते हैं।

मँढा, मंढा-संज्ञा पुं० [हिं० मढ़ना] कमख्वाब बुननेवालों का एक औज़ार जो नक़शा उठाने में काम आता है। यह लकड़ी का होता है जिसमें दो शाखें सी निकली होती हैं। सिरे पर एक छेद होता है जिसमें एक डंडा लगा रहता है।

मंत*†-संज्ञा पुं० [सं० मंत्र] (१) सलाह। उ०—(क) कंत सुम मंत कुल अंत किय अंत, हानि हातो किजै हिय ये भरोसो भुज बीस को।—तुलसी। (ख) मैं जो कहौं कंत सुनु मंत भगवंत सों विमुख ह्वै बालि फल कौन लीन्हों।—तुलसी।

यौ०—तंत मंत = उद्योग। प्रयत्न। उ०—के जिव तंत मंत सों हेरा। गयो हेराय जो वह भा मेरा।—जायसी।

(२) मंत्र।

मंतव्य-वि० [सं०] मानने योग्य। माननीय।

संज्ञा पुं० विचार। मत।

मंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोप्य वा रहस्यपूर्ण बात। सलाह। परामर्श।

(२) देवाधिसाधन गायत्री आदि वैदिक वाक्य जिनके द्वारा यज्ञ आदि क्रिया करने का विधान हो।

विशेष—निरुक्त के अनुसार वैदिक मंत्रों के तीन भेद हैं—परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिक। जिन मंत्रों द्वारा देवता को परोक्ष मानकर प्रथम पुरुष की क्रिया का प्रयोग करके स्तुति आदि की जाती है, उसे परोक्षकृत मंत्र कहते हैं। जिन मंत्रों में देवता को प्रत्यक्ष मानकर मध्यमपुरुष के सर्वनाम और क्रिया का प्रयोग करके उसकी स्तुति आदि होती है, उसे प्रत्यक्षकृत कहते हैं। जिन मंत्रों में देवता का आरोप अपने में करके उत्तमपुरुष के सर्वनाम और क्रियाओं

द्वारा उसकी स्तुति आदि की जाती है, वे आध्यात्मिक कहलाते हैं। मंत्रों के विषय प्रायः स्तुति, आशीर्वाद, शपथ, अभिशाप, परिदेवना, निंदा आदि होते हैं। मीमांसा के अनुसार वेदों का वह वाक्य जिसके द्वारा किसी कर्म के करने की प्रेरणा पाई जाय, मंत्रपद वाच्य है। मीमांसक मंत्र को ही देवता मानते हैं और उसके अतिरिक्त देवता नहीं मानते। वैदिक मंत्र गद्य और पद्य दोनों रूपों में पाए जाते हैं। गद्य को यजु और पद्य को ऋचा कहते हैं। जो पद्य गाए जाते हैं, उन्हें साम कहते हैं। इन्हीं तीन प्रकार के मंत्रों द्वारा यज्ञ के सब कर्म संपादित होते हैं।

(३) वेदों का वह भाग जिसमें मंत्रों का संग्रह है। संहिता।

(४) तंत्र के अनुसार वे शब्द वा वाक्य जिनका जप भिन्न भिन्न देवताओं की प्रसन्नता वा भिन्न भिन्न कामनाओं की सिद्धि के लिये करने का विधान है। ऐसा शब्द या वाक्य जिसके उच्चारण में कोई दैवी प्रभाव या शक्ति मानी जाती हो। (इन मंत्रों में एकाक्षर मंत्र जो अविस्पष्टार्थ हों, बीज मंत्र कहलाते हैं)।

क्रि० प्र०—पढ़ना।

यौ०—मंत्र यंत्र वा यंत्र मंत्र = जादू टोना। उ०—डाकिनी साकिनी खचर भूचर यंत्र मंत्र भंजन प्रबल कल्मषारी। —तुलसी।

मंत्रकार-संज्ञा पुं० [सं०] मंत्र रचनेवाला ऋषि।

मंत्रकृत्-वि० [सं०] (१) परामर्शकारी। सलाह देनेवाला। (२) दौत्यकारी।

संज्ञा पुं० [सं०] वेदमंत्र रचनेवाला ऋषि। मंत्रकार।

मंत्रगूढ़-संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर।

मंत्रगृह-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ मंत्र वा सलाह की जाती हो। परामर्श करने के लिये नियत स्थान।

मंत्रजल-संज्ञा पुं० [सं०] मंत्र से प्रभावित किया हुआ जल।

मंत्रजिह्व-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

मंत्रज्ञ-वि० [सं०] (१) मंत्र जाननेवाला। (२) जिसमें परामर्श देने की योग्यता हो। जो अच्छा परामर्श देना जानता हो। (३) भेद जाननेवाला।

संज्ञा पुं० (१) गुप्तचर। (२) चर। दूत।

मंत्रण-संज्ञा पुं० [सं०] परामर्श। मंत्रणा। सलाह। राय। मशवरा।

मंत्रणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) परामर्श। सलाह। मशवरा।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।

(२) कई आदमियों की सलाह से स्थिर किया हुआ मत। मंतव्य।

मंत्रद-वि० [सं०] परामर्श देनेवाला।

संज्ञा पुं० मंत्र देनेवाला, गुरु।

मंत्रदर्शी-वि० [सं० मंत्रदर्शिन्] वेदवित्। वेदज्ञ।

मंत्रदीधिति-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

मंत्रद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] चाक्षुष मन्वंतर के इंद्र का नाम।

मंत्रधर-संज्ञा पुं० [सं०] मंत्री।

मंत्रपति-संज्ञा पुं० [सं०] मंत्र का देवता। मंत्र का अधिष्ठाता देवता।

मंत्रपूत-वि० [सं०] जो मंत्र द्वारा पवित्र किया गया हो।

मंत्रबीज-संज्ञा पुं० [सं०] मूल मंत्र।

मंत्रमूल-संज्ञा पुं० [सं०] राज्य।

मंत्रयान-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धधर्म की एक शाखा जिसका प्रचार तिब्बत, नेपाल, भूटान आदि में है। इस संप्रदाय के ग्रंथों में अनेक तंत्र ग्रंथ हैं जिनके अनुसार तांत्रिक उपासना होती है। इस मत के प्रधान आचार्य सिद्ध नागार्जुन माने जाते हैं। इसे वज्रयान भी कहते हैं।

मंत्रयोग-संज्ञा पुं० [सं०] मंत्र का प्रयोग। मंत्र पढ़ना।

मंत्रवादी-वि० [सं० मंत्रवादिन्] (१) मंत्रज्ञ। (२) जो मंत्रोच्चारण करे।

मंत्रविद्-वि० [सं०] (१) मंत्रज्ञ। (२) वेदज्ञ। (३) जो राज्य के रहस्यों को जानता हो।

मंत्रविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रविद्या। भोजविद्या। मंत्रशास्त्र। तंत्र।

मंत्रसंस्कार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विवाह संस्कार।

यौ०—मंत्र संस्कारकृत् = विवाह करनेवाला। विवाहित।

(२) तंत्रानुसार मंत्रों का वह संस्कार जिसके करने का विधान मंत्र ग्रहण के पूर्व है और जिसके बिना मंत्र फलप्रद नहीं होते। ऐसे संस्कार दस हैं जिनके नाम ये हैं—

(१) जनन—मंत्र का मातृका यंत्र से उद्धार करना। इसे मंत्रोद्धार भी कहते हैं।

(२) जीवन—मंत्र के प्रत्येक वर्ण को प्रणव से संपुट करके सौ सौ बार जपना।

(३) ताड़न—मंत्र के प्रत्येक वर्ण को पृथक् पृथक् लिखकर लाल कनेर के फूल से वायु बीज पद पढ़कर प्रत्येक वर्ण को सौ सौ बार मारना।

(४) बोधन—मंत्र के लिखे हुए प्रत्येक वर्ण पर 'रं' बीज से सौ सौ बार लाल कनेर के फूल से मारना।

(५) अभिषेक—मंत्र के प्रत्येक वर्ण को लाल कनेर के फूल से 'रं' बीज द्वारा अभिमंत्रित कर यथाविधि अभिषेक करना।

(६) विमलीकरण—सुषुम्ना नाड़ी में मनोयोगपूर्वक मंत्र की चिंता करके मंत्रों के प्रत्येक वर्ण के ऊपर अश्वत्थ के पल्लव से ज्योति मंत्र द्वारा जल सींचना।

(७) अप्यापन—ज्योतिर्मंत्र द्वारा सोने के जल, कुशोदक वा पुष्पोदक से मंत्र के वर्णों को सींचना।

(८) तर्पण—ज्योतिर्मंत्र द्वारा जल से मंत्र के प्रत्येक वर्ण का तर्पण करना।

(९) दीपन—ज्योतिर्मंत्र से दीप्ति साधन करना।

(१०) गोपन—मंत्र को प्रकट न करके सदा गुप्त रखना और ओठों के बाहर न निकालना।

मंत्रसंहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदों का वह अंश जिसमें मंत्रों का संग्रह हो।

मंत्रसिद्ध-वि० [सं०] [स्त्री० मंत्रसिद्धा] जिसको मंत्र सिद्ध हो। जिसका प्रयोग किया हुआ कोई मंत्र निष्फल न जाता हो।

मंत्रसिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] मंत्र का सिद्ध होना। मंत्र की सफलता। मंत्र में प्रभाव आना।

मंत्रसूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह रेशम या सूत का तागा जो मंत्र पढ़कर बनाया गया हो। गंडा।

मंत्रित—वि० [सं०] मंत्र द्वारा संस्कृत। अभिमंत्रित।

मंत्रिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मंत्री का भाव वा पद। मंत्रित्व। (२) मंत्री की क्रिया। मंत्री का काम। मंत्रित्व।

मंत्रित्व-संज्ञा पुं० [सं०] मंत्री का कार्य्य वा पद। मंत्रिता। मंत्री-पन।

मंत्रिपति-संज्ञा पुं० [सं०] प्रधान अमात्य।

मंत्री-संज्ञा पुं० [सं० मंत्रिन्] (१) परामर्श देनेवाला। सलाह देनेवाला। (२) वह पुरुष जिसके परामर्श से राज्य के काम काज होते हों। सचिव।

पर्या०—अमात्य। सचिव। धीसख। सामवायिक।

(३) शतरंज की एक गोटी का नाम जो राजा से छोटी मानी जाती है और पक्ष की शेष सब गोटियों से श्रेष्ठ होती है। यह टेढ़ी सीधी सब प्रकार की चालें चलती है। इसे वजीर या रानी भी कहते हैं।

मंथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मथना। बिलोना। (२) हिलाना। क्षुब्ध करना। (३) मर्द्दन। मलना। (४) मारना। ध्वस्त करना। (५) कंपन। (६) एक प्रकार की पीने की वस्तु जो कई द्रव्यों को एक साथ मथकर बनाते हैं। (७) दूध वा जल में मिलाकर मथा हुआ सत्तू। (८) मथानी। वह औज़ार जिससे कोई पदार्थ मथा जाता है। (९) मृग की एक जाति का नाम। (१०) सूर्य की किरण। (११) आँख का एक रोग जिसमें आँखों से पानी या कीचड़ बहता है। (१२) एक प्रकार का ज्वर जो बाल-रोग के अंतर्गत माना जाता है। वैद्यक के अनुसार यह रोग ज्वर में घी खाने और पसीना रोकने से होता है। इसमें रोगी को दाह, भ्रम, मोह और मतली होती है, प्यास अधिक लगती है, नींद नहीं आती, मुँह लाल हो आता है और गले के नीचे छोटे छोटे दाने निकल आते हैं। कभी कभी अतीसार भी होता है। मंथर।

मंथक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गोत्रकार मुनि का नाम। (२) मंथक मुनि के वंश में उत्पन्न पुरुष।

मंथज-संज्ञा पुं० [सं०] नवनीत। नैनूँ। मक्खन।

मंथन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मथना। बिलोना। (२) अवगाहन। खूब डूब डूबकर तत्त्वों का पता लगाना। (३) मथानी।

मंथपर्वत-संज्ञा पुं० [सं०] मंदर पर्वत।

मंथर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाल का गुच्छा। (२) कोष। खज़ाना। (३) फल। (४) बाधा। अवरोध। रोक। (५) मथानी। (६) कोप। गुस्सा। (७) दूत। गुप्तचर। (८) वैशाख का महीना। (९) दुर्ग। (१०) भँवर। (११) हरिण। (१२) एक प्रकार का ज्वर। मंथ ज्वर। वि० दे० "मंथ"। (१३) मक्खन। वि० मट्ठर। मंद। सुस्त। (२) जड़। मंदबुद्धि। (३) भारी। स्थूल। (४) झुका हुआ। टेढ़ा। (५) नीच। अधम।

मंथरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रामायण के अनुसार कैकेयी की एक दासी जो उसके साथ मायके से आई थी। इसी के बहकाने पर कैकेयी ने रामचंद्र को वनवास और भरत को राज्य देने के लिये महाराज दशरथ से अनुरोध किया था।

मंथरु-संज्ञा पुं० [सं०] चँवर की वायु।

मंथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी।

मंथान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मथानी। (२) मंदर नामक पर्वत। (३) महादेव। (४) अमलतास। (५) एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दो तगण होते हैं। उ०—वाणी कही बान। कीन्ही न सो कान। अद्यापि आनीन। रे वंदिकानीन।—केशव। (६) भैरव का एक भेद।

मंथिता-वि० [सं० मंथितृ] [स्त्री० मंथित्री] मथनेवाला।

मंथिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] माठ। मटका।

मंथिप-वि० [सं०] मथा हुआ सोम रस पीनेवाला।

मंथी-वि० [सं० मंथिन्] (१) मथनेवाला। (२) पीड़ाकारक। (३) मंथनयुक्त।

संज्ञा पुं० मथा हुआ सोम रस।

मंद-वि० [सं०] (१) धीमा। सुस्त।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

(२) ढीला। शिथिल। (३) आलसी। (४) मूर्ख। कुबुद्धि। (५) खल। दुष्ट।

संज्ञा पुं० (१) वह हाथी जिसकी छाती और मध्य भाग की वलि ढीली हो, पेट लंबा, चमड़ा मोटा, गला, कोख और पूँछ की चँवरी मोटी हो तथा जिसकी दृष्टि सिंह के समान हो। (२) शनि। (३) यम। (४) अभाग्य। (५) प्रलय।

मंदऊ†-संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े का एक रोग जिसमें उसके गले के पास की हड्डी में सूजन आ जाती है।

मंदक-वि० [सं०] मूर्ख। निर्बोध।

मंदकर्णि-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

मंदग-वि० [सं०] [स्त्री० मंदगा] धीमा चलनेवाला।
संज्ञा पुं० महाभारत के अनुसार शक द्वीप के अंतर्गत चार जनपदों में से एक।

मंदगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहों की गति की वह अवस्था जब वे अपनी कक्षा में घूमते हुए सूर्य से दूर निकल जाते हैं।

[मं]दट-संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु।

मंदता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आलस्य। (२) धीमापन। (३) क्षीणता।

मंदधूप-संज्ञा पुं० [हिं० मंद+धूप] काला धूप। काला डामर। दे० "डामर"।

मंदपरिधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदोच्च वृत्ति।

मंदफल-संज्ञा पुं० [सं०] गणित ज्योतिष में ग्रहगति का एक भेद।

मंदभागी-वि० [सं०] अभागा। हतभाग्य।

मंदभाग्य-वि० [सं०] दुर्भाग्य। अभाग्य।

मंदयंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

मंदर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक पर्वत जिससे देवताओं ने समुद्र को मथा था। (२) मंदार। (३) स्वर्ग। (४) मोती का वह हार जिसमें आठ वा सोलह लड़ियाँ हों। (५) मुकुर। दर्पण। आईना। (६) कुशद्वीप के एक पर्व का नाम। (७) बृहत्संहिता के अनुसार प्रासादों के बीस भेदों में दूसरा। वह प्रासाद जो छकोना हो और जिसका विस्तार तीस हाथ हो। इसमें दस भूमिकाएँ और अनेक कँगूरे होते हैं। (८) एक वर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक भगण (ऽ।।) होता है।
वि० (१) मंद। धीमा। (२) मठा।

मंदरगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंदराचल पर्वत। (२) एक छोटे पहाड़ का नाम जो मूँगेर के पास है। इस पर्वत पर हिंदुओं, जैनों और बौद्धों के अनेक मंदिर हैं और सीताकुंड नामक प्रसिद्ध गरम जल का कुंड है।

मँदरा-वि० [सं० मंदर मि० पं० मदरा=नाटा] [स्त्री० मँदरी] नाटा। ठिंगना। उ०—स्त्रियाँ नाटी मँदरी और मर्दों से भी जियादः मजबूत होती हैं।—शिवप्रसाद।

मंदरा-संज्ञा पुं० [सं० मंडल] एक प्रकार का बाजा। उ०—मंदरा तबल सुमरु खंजरी ढोलक धामक।—सूदन।

मँदरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] खाजे की जाति का एक पेड़। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खेती के सामान तथा गाड़ियाँ बनाने के काम आती है। छाल से चमड़ा सिझाया जाता है, फल खाए जाते हैं और पत्तियाँ पशुओं के चारे के काम आती हैं। इसी की जाति का एक और पेड़ होता है जिसे गेंड़ली कहते हैं। इसकी छाल पर, जब वे छोटे रहते हैं, काँटे होते हैं; पर ज्यों ज्यों बड़ा होता है, छाल साफ होती जाती है। इसकी लकड़ी की तौल प्रति घन फुट २० से ३० सेर तक होती है और पानी में बहुत दिनों तक रहने पर भी खराब नहीं होती। यह खेरी, गोरखपुर, अजमेर और मध्यप्रांत के जंगलों में होती है। इसके बीज बरसात में बोए जाते हैं।

मंदसान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) प्राण। (३) निद्रा।

मंदसानु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वप्न। (२) जीव।

मंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य की वह संक्रांति जो उत्तरा फल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी नक्षत्र में पड़े। ऐसी संक्रांति में संक्रमणानंतर तीन दंड तक पुण्य काल होता है। (२) वल्लीकरंज। लताकरंज।
वि० [सं० मंद] [स्त्री० मंदी] (१) धीमा। मंद।
क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।
(२) ढीला। शिथिल। (३) सामान्य मूल्य से कम मूल्य पर बिकनेवाला। जो महँगा न हो। जिसका दाम थोड़ा हो। सस्ता। उ०—मधुकर ह्याँ नाहिन मन मेरो। गयो जु संग नंद नंदन के बहुरि न कीन्हौं फेरो। उन नैनन मुसुकानि मोल लै कियो परायो चेरो। जाके हाथ परेउ ताही को बिसरेउ बास बरोरो। को सीखै ता बिनु सुनु सूरज योगज काहे केरो। मंदो परेउ सिधाउ अनत लै यहि निर्गुण मत मेरो।—सूर। (४) खराब। निकृष्ट। उ०—योग वियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रमफंदा।—तुलसी। (५) बिगड़ा हुआ। नष्ट। भ्रष्ट।

मंदाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुराणानुसार गंगा की वह धारा जो स्वर्ग में है। ब्रह्मवैवर्त के अनुसार इसकी धार एक अयुत योजन लंबी है। (२) आकाश गंगा। (३) एक छोटी नदी का नाम जो हिमालय पर्वत में उत्तर काशी में बहती है और भागीरथी में मिलती है। (४) महाभारत आदि के अनुसार एक नदी का नाम जो चित्रकूट के पास बहती है। इसे अब पयस्विनी कहते हैं। उ०—राम कथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु। तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु।—तुलसी। (५) हरिवंश के अनुसार द्वारका के पास की एक नदी का नाम। (६) संक्रांति के सात भेदों में से एक। (७) बारह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और दो रगण होते हैं (।।।, ।।।, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ)।

मंदाक्रांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्रह अक्षरों के एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में मगण, भगण, नगण और तगण और अंत में दो गुरु होते हैं। अर्थात् ५, ६, ७, ८ और ९ तथा १२ और १३ अक्षर लघु और शेष गुरु होते हैं। (ऽऽऽ ऽ।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ) उ०—मेरी भक्ति सुलभ तिहिं को शुद्ध है बुद्धि जाकी।

मंदाग्नि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें रोगी की पाचनशक्ति मंद पड़ जाती है और अन्न नहीं पचा सकती। हारीत का मत है कि मंदाग्नि वात और श्लेष्मा से होती है। माधव

निदान के मत से कफ की अधिकता से मंदाग्नि होती है। इस रोग में अन्न न पचने के अतिरिक्त रोगी का सिर और उदर भारी रहता है, उसे मतली आती है, शरीर शिथिल रहता है और पसीना आता है। यह रोग दुःसाध्य माना जाता है। बदहजमी। अपच।

मंदान-संज्ञा पुं० [?] जहाज का अगला भाग। (लश०)

मंदानल-संज्ञा पुं० [सं०] मंदाग्नि।

मंदार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग के पाँच वृक्षों में से एक देव-वृक्ष। (२) फरहद का पेड़। नहसुत। (३) आक। मदार। (४) स्वर्ग। (५) हाथ। (६) धतूरा। (७) हाथी। (८) हिरण्यकशिपु के एक पुत्र का नाम। (९) मंदराचल पर्वत। (१०) विंध्य पर्वत के किनारे के एक तीर्थ का नाम।

मंदारमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाइस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात तगण और अंत में एक गुरु होता है। उ०—मेरी कही मान ले मीत तू जन्म जावै वृथा आपको तार ले।

मंदारषष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्रत जो माघ शुक्ल षष्ठी के दिन पड़ता है।

मंदालसा-संज्ञा स्त्री० दे० "मदालसा"।

मंदिकुकुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

मंदिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वासस्थान। (२) घर। (३) देवालय। (४) नगर। (५) शिविर। (६) शालिहोत्र के अनुसार घोड़े की जाँघ का पिछला भाग। (७) समुद्र। (८) एक गंधर्व का नाम।

मंदिरपशु-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली।

मंदिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घोड़साल। अश्वशाला। (२) मजीरा नामक बाजा।

मंदिल*‡-संज्ञा पुं० [सं० मंदिर] (१) घर। (२) देवालय। (३) प्रत्येक रुपए या थान आदि के पीछे दाम में से काटा जानेवाला वह अल्प धन जो किसी मंदिर या धार्मिक कृत्य के लिये दूकानदार दाम देते समय काटते हैं।

क्रि० प्र०—कटना।—काटना।

मंदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मंद] भाव का उतरना। महँगी का उलटा। सस्ती।

मंदीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) मंजीर।

मंदील-संज्ञा पुं० [हिं० मुंड] एक प्रकार का सिरबंद जिस पर काम बना रहता है।

मंदुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अश्वशाला। घोड़साल। (२) बिछाने की चटाई।

मंदुरिक-संज्ञा पुं० [सं०] साईस।

मंदोच्च-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों की एक गति जिससे राशि आदि का संशोधन करते हैं।

मंदोदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रावण की पटरानी का नाम। यह मय की कन्या थी।

वि० सूक्ष्म पेटवाली।

मंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंभीर ध्वनि। (२) संगीत में स्वरों के तीन भेदों में से एक। इस जाति के स्वर मध्य से अवरोहित होते हैं। इसे उदारा वा उतार भी कहते हैं। (३) हाथी की एक जाति का नाम। (४) मृदंग।

वि० (१) मनोहर। सुंदर। (२) प्रसन्न। हृष्ट। (३) गंभीर। (४) धीमा। (शब्द आदि)

मंद्राज-संज्ञा पुं० [सं० मंद्र] [स्त्री० मंद्राजिन] दक्षिण का एक प्रधान नगर जो पूर्व घाट के किनारे पर है। इस नाम से दक्षिण का पूर्वीय प्रदेश भी ख्यात है।

मंद्राजी-वि० [हिं० मंद्राज] (१) मंद्राज में उत्पन्न वा मंद्राज का रहनेवाला। (२) मंद्राज संबंधी। (३) मंद्राज का बना हुआ। जैसे,—मंद्राजी दुपट्टा।

मंसना†-क्रि० स० [सं० मनस्] (१) इच्छा करना। मन में संकल्प करना। (२) दे० "मनसना"।

मंसब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पद। स्थान। पदवी। (२) काम। कर्त्तव्य। (३) अधिकार।

मंसा-संज्ञा स्त्री० [सं० मनस्] (१) इच्छा। चाहना। अभिरुचि। उ०—कह गिरधर कविराय केलि की रही न मंसा।—गि० दा०। (२) संकल्प। (३) आशय। अभिप्राय।

विशेष—यह शब्द संस्कृत 'मनस्' से निकला है; पर कुछ लोग भ्रमवश इसे अरबी 'मंशा' से निकला हुआ समझते हैं।

मंसूख-वि० [अ०] खारिज किया हुआ। रद। काटा हुआ।

मंसूबा-संज्ञा पुं० दे० "मनसूबा"।

म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) चंद्रमा। (३) ब्रह्मा। (४) यम। (५) समय। (६) विष। जहर। (७) मधुसूदन।

मइँ‡-सर्व० दे० "मैं"।

मइका‡-संज्ञा पुं० दे० "मायका" या "मैका"।

मइमंत*-वि० [सं० मदमत्त, प्रा० मअमत्त] मदोन्मत्त। मतवाला। दे० "मैमंत"। उ०—जोबन अस मइमंत न कोई। नवँइ हसति जउ आँकुस होई।—जायसी।

मइया‡-संज्ञा स्त्री० दे० "मैया"।

मई-संज्ञा स्त्री० [सं० मयी] (१) मय जाति की स्त्री। (२) ऊँटनी।

संज्ञा स्त्री० [अं० मे] अँगरेजी पाँचवाँ महीना जो अप्रैल के उपरांत और जून से पहले आता है। यह सदा ३१ दिन का होता है और प्रायः वैशाख में पड़ता है।

मउर†-संज्ञा पुं० [सं० मौलि] फूलों का बना हुआ वह मुकुट या सेहरा जो विवाह के समय दूल्हे के सिर पर पहनाया जाता है। मौर।

मउरछोराई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मउर+छुड़ाई] (१) विवाह के

उपरांत मौर खोलने की रस्म। (जब वर कोहवर में पहुँच जाता है, तब ससुराल की स्त्रियाँ उसको कुछ देकर मौर उतार लेती हैं और उसे दही गुड़ खिलाकर कुछ नगद देकर बिदा करती हैं।) (२) वह धन जो वर को मौर खोलने के समय दिया जाता है।

मउरी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मौर] एक प्रकार का कागज का बना हुआ तिकोना छोटा मौर जो विवाह के समय कन्या के सिर पर रखा जाता है।

मउलसिरी-संज्ञा स्त्री० दे० "मौलसिरी"।

मउसी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मासी] माता की बहिन। मासी।

मकई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मक्का] ज्वार नामक अन्न।

मकड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० मकड़ी] बड़ी मकड़ी।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो बहुत शीघ्रता से बढ़ती है। यह पशुओं और विशेषतः घोड़ों के लिये बहुत पुष्टिकारक होती है। यह दस बरस तक सुखाकर रखी जा सकती है। कहीं कहीं गरीब लोग इसके बीज अनाज की भाँति खाते हैं। मधाना। खमकरा। मनसा।

मकड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० मर्कटक] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध कीड़ा जिसकी सैकड़ों हजारों जातियाँ होती हैं और जो प्रायः सारे संसार में पाया जाता है। इसका शरीर दो भागों में विभक्त हो सकता है। एक भाग में सिर और छाती तथा दूसरे भाग में पेट होता है। साधारणतः इसके आठ पैर और आठ आँखें होती हैं। पर कुछ मकड़ियों को केवल छः, कुछ को चार और किसी किसी को केवल दो ही आँखें होती हैं। इनकी प्रत्येक टाँग में प्रायः सात जोड़ होते हैं। प्राणिशास्त्र के ज्ञाता इसे कीट वर्ग में नहीं मानते; क्योंकि कीटों को केवल चार पैर और दो पंख होते हैं। कुछ जाति की मकड़ियाँ विषैली होती हैं और यदि उनके शरीर से निकलनेवाला तरल पदार्थ मनुष्य के शरीर से स्पर्श कर जाय, तो उस स्थान पर छोटे छोटे दाने निकल आते हैं जिनमें जलन होती है और जिनमें से पानी निकलता है। कुछ मकड़ियाँ तो इतनी जहरीली होती हैं कि कभी कभी उनके काटने से मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है। मकड़ी प्रायः घरों में रहती है और अपने उदर से एक प्रकार का तरल पदार्थ निकालकर उसके तार से घर के कोनों आदि में जाल बनाती है जिसे जाला या झाला कहते हैं। उसी जाल में यह मक्खियाँ तथा दूसरे छोटे छोटे कीड़े फँसाकर खाती है। दीवारों की संधियों आदि में यह अपने शरीर से निकाले हुए चमकीले, पतले और पारदर्शी पदार्थ का घर बनाती है और उसी में असंख्य अंडे देती है। साधारणतः नर से मादा बहुत बड़ी होती है और संभोग के समय मादा कभी कभी नर को खा जाती है। कुछ मकड़ियाँ इतनी बड़ी होती हैं कि छोटे मोटे पक्षियों तक का शिकार कर लेती हैं। मकड़ियाँ प्रायः उछलकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती हैं। इसकी कुछ प्रसिद्ध जातियों के नाम इस प्रकार हैं:—जंगली मकड़ी, जल मकड़ी, राज-मकड़ी, कोष्टी मकड़ी, जहरी मकड़ी आदि। (२) मकड़ी के विष के स्पर्श से शरीर में होनेवाले दाने जिनमें जलन होती है और जिनमें से पानी निकलता है।

मकतब-संज्ञा पुं० [अ०] छोटे बालकों के पढ़ने का स्थान। पाठ-शाला। चटसाल। मदरसा।

मकता-संज्ञा पुं० [सं० मगध] मगध देश। (आईन अकबरी में मगध का यही नाम दिया गया है।)

मक़दूर-संज्ञा पुं० [अ०] सामर्थ्य। ताक़त। शक्ति।

मक़नातीस-संज्ञा पुं० [अ०] चुंबक पत्थर।

मक़फ़ूल-वि० [अ०] रेहन किया हुआ। गिरों रखा हुआ।

मक़बरा-संज्ञा पुं० [अ०] वह इमारत जिसमें किसी की लाश गाड़ी गई हो। रौजा। मजार। समाधि।

मक़बूजा-वि० [अ०] कब्जा किया हुआ। अधिकृत।

मकरंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फूलों का रस जिसे मधुमक्खियाँ और भौंरे आदि चूसते हैं। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात जगण और एक यगण होता है। इसको 'राम' 'माधवी' और 'मंजरी' भी कहते हैं। उ०—जुलोक यथामति वेद पढ़ें सह आगम औ दश आठ सयाने। (३) ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक। (४) कुंद का पौधा। (५) किंजल्क। फूल का केसर।

मकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मगर या घड़ियाल नामक प्रसिद्ध जलजंतु। यह कामदेव की ध्वजा का चिह्न और गंगाजी तथा वरुण का वाहन माना जाता है। (२) बारह राशियों में से दसवीं राशि जिसमें उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के अंतिम तीन पाद, पूरा श्रवण नक्षत्र और धनिष्ठा के आरंभ के दो पाद हैं। इसे पृष्ठोदय, दक्षिण दिशा का स्वामी, रूक्ष, भूमिचारी, शीतल स्वभाव और पिंगल वर्ण का, वैश्य, वात-प्रकृति और शिथिल अंगोंवाला मानते हैं। ज्योतिष के अनुसार इस राशि में जन्म लेनेवाला पुरुष पर-स्त्री का अभिलाषी, धन उड़ाने-वाला, प्रतापशाली, बात चीत में बहुत होशियार, बुद्धिमान् और वीर होता है। (३) फलित ज्योतिष के अनुसार एक लग्न। (४) सुश्रुत के अनुसार कीड़ों और छोटे जीवों का एक वर्ग। (५) कुबेर की नौ निधियों में से एक। (६) अस्त्र शस्त्र आदि को निष्फल बनाने के लिये उन पर पढ़ा जानेवाला एक प्रकार का मंत्र। (७) एक पर्वत का नाम। (८) एक प्रकार का व्यूह जिसमें सैनिक लोग इस प्रकार खड़े किए जाते हैं कि उनकी समष्टि मकर के आकार की जान पड़ती है। (९) माघ मास। (१०) मछली। उ०—श्रुति

मंडल कुंडल बिबि मकर सुविलसत सदन सदाई।—सूर। (११) छप्पय के उनतालीसवें भेद का नाम जिसमें ३२ गुरु, ८८ लघु, १२० वर्ण या १५२ मात्राएँ अथवा ३२ गुरु, ८४, लघु ११६ वर्ण, कुल १४८ मात्राएँ होती हैं।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) छल। कपट। फरेब। धोखा (२) नखरा।

क्रि० प्र०—रचना।—फैलाना।

मकरकर्कट-संज्ञा पुं० [सं०] क्रांति वृत्त की वह सीमा जहाँ से सूर्य उत्तरायण वा दक्षिणायन होकर लौट आता है।

मकरकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मकरतार-संज्ञा पुं० [हिं० मुकेश] बादले का तार। उ०—चलु सखि चलु सखि प्रेम-बिलास। झूमर खेलौ सतगुरु के पास। श्वेत सिंहासन छत्र अँजोर। मकरतार पर लागी डोर।—कबीर।

मकरध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। कंदर्प। (२) रस सिंदूर। चंद्रोदय नामक रस। (३) इंद्र पुष्प। लौंग। (४) पुराणानुसार अहिरावण का एक द्वारपाल जो हनुमान का पुत्र माना जाता है। कहते हैं कि लंका को जलाने के उपरांत जब हनुमान ने समुद्र में स्नान किया था, तब एक मछली ने उनके पसीने से मिला हुआ जल पीकर गर्भ धारण किया था जिससे इसका जन्म हुआ। मत्स्योदर।

मकरपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। (२) ग्राह।

मकरव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्यूह या सेना-रचना जिसमें सैनिक मकर के आकार में खड़े किए जाते हैं।

मकरसंक्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह समय जब कि सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है। यह एक पर्व माना जाता है।

मकरांक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। (२) समुद्र। (३) एक मनु का नाम।

मकरा-संज्ञा पुं० [सं० वरक] मड़ुवा नामक अन्न।

संज्ञा पुं० [हिं० मकड़ा] (१) भूरे रंग का एक कीड़ा जो दीवारों और पेड़ों पर जाला बनाकर रहता है। इसकी टाँगे बड़ी बड़ी होती हैं। (२) हलवाइयों की एक प्रकार की घोड़िया या चौघड़िया जिससे सेव बनाया जाता है। यह एक चौकी होती है जिसमें छाननी की तरह छेदवाला लोहे का एक पात्र जड़ा होता है। इसी पात्र में घोला हुआ बेसन भरकर ऊपर से एक दस्ते से दबाते हैं जिससे नीचे सेव बनकर गिरता जाता है।

मकराकर-संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र। (डिं०)।

मकराकार-वि० [सं०] मकर या मछली के आकार का।

मकराकृत-वि० [सं०] मकर या मछली के आकारवाला।

मकराक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] खर का पुत्र और रावण का भतीजा। यह कुंभ और निकुंभ के मारे जाने पर युद्ध में गया था और राम के द्वारा मारा गया था।

मकरानन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।

मकराना-संज्ञा पुं० [देश०] राजपूताने का एक प्रदेश जहाँ का संगमरमर बहुत प्रसिद्ध होता है।

मकरा राई-संज्ञा स्त्री० [मकरा ? + राई] काली राई।

मकरालय-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

मकराश्व-संज्ञा पुं० [सं०] मकर पर सवार होनेवाले, वरुण।

मकरासन-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक आसन जिसमें हाथ और पैर पीठ की ओर कर लिए जाते हैं।

मकरिकापत्र-संज्ञा पुं० [सं०] मछली के आकार का बना हुआ चंदन का चिह्न जो प्राचीन काल में स्त्रियाँ अपनी कनपटियों पर बनाती थीं।

मकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मगर की मादा। मगरी। उ०—पोखरी विशाल बाहुबल वारिचर पीर मकरी ज्यों पकरि कै बदन बिदारिये।—तुलसी। (२) एक प्रकार का वैदिक गीत। (३) चक्की में लगी हुई एक लकड़ी जो अनुमान आठ अंगुल की होती है और जो किल्ले की नोक पर रखकर और उसके दोनों सिरों पर जोती लगाकर जुए से बाँधी रहती है। इस जोती में दोनों ओर छोटी छोटी लकड़ियाँ लगी होती हैं जिनके घुमाने से ऊपर का पाट आवश्यकतानुसार ऊपर उठाया या नीचे गिराया जा सकता है। जब यह ऊपर कर दी जाती है, तब चक्की के ऊपर का पाट भी कुछ ऊपर उठ जाता है जिससे आटा कुछ मोटा और दरदरा होने लगता है। और जब इसे घुमाकर कुछ नीचे करते हैं, तब पाट के नीचे आ जाने के कारण आटा महीन होने लगता है। (४) जहाज में फ़र्श या खंभों आदि में लगा हुआ लकड़ी या लोहे का वह चौकोर टुकड़ा जिसके अगले दोनों भाग अँकुसे के आकार के होते हैं और जिनमें रस्सा आदि बाँधकर फँसा देते हैं। (लश०)

मकरूह-वि० [फ़ा०] (१) नापाक। अपवित्र। (२) जिसे देखकर घृणा उत्पन्न हो। घृणित।

मकरेड़ा†-संज्ञा पुं० [हिं० मक्का + एड़ा (प्रत्य०)] ज्वार वा मक्के का डंठल।

मकरौरा†-संज्ञा पुं० [हिं० मकड़ी] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो प्रायः आम के पेड़ों पर चिपका रहता है।

मकलई-संज्ञा स्त्री० [मकालिया बंदरगाह से] एक प्रकार का गोंद जो अदन से बंबई में आता है। यह सफ़ेद या लाली लिए पीले रंग का होता है और इसके गोल गोल दाने होते हैं। यह मकालिया नामक बंदरगाह से आता है; इसी लिये मकलई कहलाता है।

मक़सद-संज्ञा पुं० [अ०] (१) मनोरथ। मनोकामना। (२) अभिप्राय। तात्पर्य्य। मतलब।

मक़सूद-वि० [अ०] उद्दिष्ट। अभिप्रेत।

संज्ञा पुं० (१) अभिप्राय । मतलब । (२) मनोरथ ।

मकाँ-संज्ञा पुं० [फ़ा०] गृह । घर । मकान ।

मकाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मक्का] बड़ी जोन्हरी । ज्वार ।

मकान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) गृह । घर । (२) निवासस्थान । रहने की जगह ।

मक़ाम-संज्ञा पुं० दे० "मुकाम" ।

मकुंद-संज्ञा पुं० दे० "मुकुंद" ।

मकु-अव्य० [सं० म] (१) चाहे । उ०—(क) तिमिर तरुन तरनिहिं मकु गिलई । गगन मगन मकु मेघहिं मिलई ।—तुलसी । (ख) मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई । होइ न नृप-मद भरतहि भाई ।—तुलसी । (२) बल्कि । वरन् । उ०—पाउँ छुवइ मकु पावउँ एहि मिस लहरइ देहु ।—जायसी । (३) कदाचित् । क्या जाने । शायद । उ०—मकु यह खोज होइ निसि आई । तुरइ रोग हरि माँथइ जाई ।—जायसी ।

मकुआ-संज्ञा पुं० [हिं० मक्का] बाजरे के पत्तों का एक रोग ।

मकुट-संज्ञा पुं० दे० "मुकुट" ।

मकुना-संज्ञा पुं० [सं० मनाक = हाथी] (१) वह नर हाथी जिसके दाँत न हों अथवा छोटे छोटे दाँत हों । (२) बिना मूछों का पुरुष ।

मकुनी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) आटे के भीतर बेसन या चने की पीठी भरकर बनाई हुई कचौरी । बेसनी रोटी । (२) चने का बेसन और गेहूँ का आटा एक में मिलाकर उसमें नमक, मेथी, मँगरैला आदि मिलाकर बाटी की भाँति भूभल में सेंकी हुई बाटी या लिट्टी । (३) मटर के आटे की रोटी ।

मकुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुम्हार का डंडा जिससे वह चाक घुमाता है । (२) बकुल । मौलसिरी । (३) शीशा । दर्पण । (४) कोरक । कली ।

मकुष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] मोठ नामक अन्न ।

मकुष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का धान । (२) मोठ नामक अन्न ।

मकूनी-संज्ञा स्त्री० दे० "मकुनी" । उ०—मीठे तेल चना की भाजी । एक मकूनी दै मोहि साजी ।—सूर ।

मकूला-संज्ञा पुं० [अ०] (१) कहावत । कहनूत । (२) वचन । कथन ।

मकेरा-संज्ञा पुं० [हिं० मक्का] वह खेत जिसमें ज्वार या बाजरा बोया जाता हो ।

मकेरुक-संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें मल के साथ कीड़े निकलते हैं ।

मको-संज्ञा स्त्री० दे० "मकोय" ।

मकोइचा-संज्ञा पुं० दे० "मकोई" ।

मकोइया-वि० [हिं० मकोय + इया (प्रत्य०)] मकोय के पके हुए फल के रंग का । मकोय के रंग के समान । ललाई लिये पीला । (रंग)

मकोई-संज्ञा स्त्री० [हिं० मकोय] जंगली मकोय जिसमें काँटे होते हैं । मकोचा । उ०—झाँखर जहाँ सो छाँड़हु पंथा । हिलगि मकोइन फारहु कंथा ।—जायसी ।

मकोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० कोड़ा का अनु०] कोई छोटा कीड़ा । जैसे,—बरसात में बहुत से कीड़े मकोड़े पैदा हो जाते हैं ।

मकोय-संज्ञा स्त्री० [सं० काकमाता या काकमाची से विप०] (१) एक प्रकार का क्षुप जिसके पत्ते गोलाई लिए लंबोतरे होते हैं और जिसमें सफेद रंग के छोटे फूल लगते हैं । फल के विचार से यह क्षुप दो प्रकार का होता है । एक में लाल रंग के और दूसरे में काले रंग के बहुत छोटे छोटे, प्रायः काली मिर्च के आकार और प्रकार के, फल लगते हैं । इसकी पत्तियों और फलों का व्यवहार ओषधि के रूप में होता है । इसके पत्ते उबालकर रोगियों को दिए जाते हैं । इसके क्वाथ को मकोय की भुजिया कहते हैं । वैद्यक में इसे गरम, चरपरी, रसायन, स्निग्ध, वीर्य्यवर्धक, स्वर को उत्तम करनेवाली, हृदय और नेत्रों को हितकारी, रुचिकारक, दस्तावर और कफ, शूल, बवासीर, सूजन, त्रिदोष, कुष्ट, अतिसार, हिचकी, वमन, श्वास, खाँसी और ज्वर आदि को दूर करनेवाली माना है । कबैया । (२) इस क्षुप का फल । (३) एक प्रकार का कँटीला पौधा जो प्रायः सीधा ऊपर की ओर उठता है । इसमें प्रायः सुपारी के आकार के फल लगते हैं जो पकने पर कुछ ललाई लिए पीले रंग के होते हैं । ये फल एक प्रकार के पतले पत्तों के आवरण में बंद रहते हैं । फल खट-मिट्ठा होता है और उसमें एक प्रकार का अम्ल होता है जिसके कारण वह पाचक होता है । (४) इस पौधे का फल । रसभरी ।

मकोरना*†-क्रि० स० दे० "मरोड़ना" । उ०—सुनि धन धनक भौंह कर फेरी । काम कटाछ मकोरत हेरी ।—जायसी ।

मकोसल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का ऊँचा वृक्ष जो सर्वदा हरा भरा रहता है । इसकी लकड़ी अंदर से लाल और बहुत कड़ी तथा दृढ़ होती है । यह इमारत के काम में आती है । आसाम में इससे नावें भी बनाई जाती हैं ।

मकोहा†-संज्ञा पुं० [सं० मत्कुण या हिं० मकोय ?] लाल रंग का एक प्रकार का कीड़ा जो अनुमान एक इंच लंबा होता है । यह प्रायः अनावृष्टि के समय होता है और फसल को बहुत हानि पहुँचाता है ।

मक्कर†-संज्ञा पुं० [अ० मक्र] (१) छल । कपट । धोखा । (२) नखरा ।

क्रि० प्र०—दिखाना ।—फैलाना ।—बिछाना ।—साधना ।

मकल्ल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्त्री-रोग जिसमें प्रसव के अनंतर प्रसूता स्त्री की नाभि के नीचे, पसली में, मूत्राशय में वा उसके ऊपर वायु की एक गाँठ सी पड़ जाती है और पीड़ा होती है। इस रोग में पक्वाशय फूल जाता है और मूत्र रुक जाता है।

मक्का–संज्ञा पुं० [अ०] अरब का एक प्रसिद्ध नगर जहाँ मुहम्मद साहब का जन्म हुआ था। यह मुसलमानों का सबसे बड़ा तीर्थ-स्थान है। हज करने के लिये मुसलमान यहीं जाते हैं।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की ज्वार। बड़ी जोन्हरी। मकई। वि० दे० "ज्वार"।

मक्कार–वि० [अ०] मकर करनेवाला। फ़रेबी। कपटी। छली।

मक्कारी–संज्ञा स्त्री० [अ०] छल। धोखेबाजी। दग़ाबाजी। फरेब।

मक्की†–संज्ञा स्त्री० दे० "मक्का"।

मक्खन–संज्ञा पुं० [सं० मन्थज] दूध में की, विशेषतः गौ या भैंस के दूध में की, वह चरबी या सार भाग जो दही या मठे को मथने पर अथवा और कुछ विशिष्ट क्रियाओं से निकाला जाता है और जिसको तपाने से घी बनता है। वैद्यक में इसे शीतल, मधुर, बलकारक, संग्राहक, कांति-वर्धक, आँखों के लिये हितकर और सब दोषों का नाश करनेवाला माना है। नवनीत। नैनूँ।

मुहा०—कलेजे पर मक्खन मला जाना = शत्रु की हानि देख कर शान्ति या प्रसन्नता होना। कलेजा ठंढा होना।

मक्खा–संज्ञा पुं० [हिं० मक्खी] (१) बड़ी जाति की मक्खी। (२) नर मक्खी।

मक्खी–संज्ञा स्त्री० [सं० मक्षिका] (१) एक प्रसिद्ध छोटा कीड़ा जो प्रायः सारे संसार में पाया जाता है और जो साधारणतः घरों और मैदानों में सब जगह उड़ता फिरता है। इसके छः पैर और दो पर होते हैं। मक्षिका।

विशेष—मक्खी प्रायः कूड़े कतवार और सड़े गले पदार्थों पर बैठती, उन्हीं को खाती और उन्हीं पर बहुत से अंडे देती है। इन अंडों में से बहुधा एक ही दिन में एक प्रकार का ढोला निकलता है, जो बिना सिर पैर का होता है। यह ढोला प्रायः दो सप्ताह में पूरा बढ़ जाता है और तब किसी सूखे स्थान में पहुँचकर अपना रूप परिवर्त्तित करने लगता है। प्रायः १०-१२ दिन में वह साधारण मक्खी का रूप धारण कर लेता है और इधर उधर उड़ने लगता है। मक्खी के पैरों में से एक प्रकार का तरल और लसदार पदार्थ निकलता है, जिसके कारण वह चिकनी से चिकनी चीज पर पेट ऊपर और पीठ नीचे करके भी चल सकती है।

यौ०—मक्खीचूस। मक्खीमार।

मुहा०—जीती मक्खी निगलना = (१) जान बूझकर कोई ऐसा अनुचित कृत्य या पाप करना जिसके कारण पीछे से हानि हो। (२) अनौचित्य या दोष की ओर ध्यान न देना। दोष या पाप की उपेक्षा करके वह दोष या पाप कर डालना। **नाक पर मक्खी न बैठने देना** = किसी को अपने ऊपर एहसान करने का तनिक भी अवसर न देना। अभिमान के कारण किसी के सामने न दबना। **मक्खी की तरह निकाल या फेंक देना** = किसी को किसी काम से बिलकुल अलग कर देना। किसी को किसी काम से कोई संबंध न रहने देना। **मक्खी छोड़ना और हाथी निगलना** = छोटे छोटे पापों या अपराधों से बचना और बड़े बड़े पाप या अपराध करना। **मक्खी मारना या उड़ाना** = बिलकुल निकम्मा रहना। कुछ भी काम धंधा न करना।

(२) मधुमक्खी। मुमाखी। (३) बंदूक के अगले भाग में वह उभरा हुआ अंश जिसकी सहायता से निशाना साधा जाता है।

मक्खीचूस–संज्ञा पुं० [हिं० मक्खी + चूसना] घी आदि में पड़ी हुई मक्खी तक को चूस लेनेवाला व्यक्ति। बहुत अधिक कृपण। भारी कंजूस।

मक्खीमार–संज्ञा पुं० [हिं० मक्खी + मारना] (१) एक प्रकार का बहुत छोटा जानवर जो प्रायः मक्खियाँ मार मारकर खाया करता है। (२) एक प्रकार की छड़ी जिसके सिरे पर चमड़ा लगा होता है और जिसकी सहायता से लोग प्रायः मक्खियाँ उड़ाते हैं। (३) बहुत ही घृणित व्यक्ति।

मक्खीलेट–संज्ञा स्त्री० [हिं० मक्खी + लेट ?] एक प्रकार की जाली जिसमें बहुत छोटी छोटी बूटियाँ होती हैं।

मक़दूर–संज्ञा पुं० [अ०] (१) सामर्थ्य। ताकत। शक्ति। बल। जोर। जैसे,—यह अपने अपने मक़दूर की बात है।

मुहा०—मक़दूर से बाहर पाँव रखना = सामर्थ्य या योग्यता से बढ़कर काम करना।

(२) वश। काबू।

मुहा०—मक़दूर चलना = बस चलना। काबू चलना।

(३) समाई। गुंजाइश। (४) दौलत। धन। पूँजी।

यौ०—मक़दूरवाला = धनवान्। संपन्न। अमीर।

मक्सी–संज्ञा पुं० [देश०] (१) वह सब्ज़ा घोड़ा जिस पर काले फूल या दाग हों। (२) बिलकुल काले रंग का घोड़ा।

मक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपने दोष को छिपाना। अपना ऐब जाहिर न होने देना। (२) क्रोध। गुस्सा। (३) समूह।

मक्षदृग–संज्ञा पुं० [सं० मत्स्यदृग] एक प्रकार का मोती जिसके विषय में लोगों की यह धारणा है कि इसके पहनने से पुत्र मर जाता है।

मक्षवीर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] पियार नाम का वृक्ष।

मक्षिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साधारण मक्खी। (२) शहद की मक्खी।

मक्षिकामल-संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

मक्षिकासन-संज्ञा पुं० [सं०] शहद की मक्खी का छत्ता।

मख-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ।

मख़ज़न-संज्ञा पुं० [अ०] ख़जाना। भंडार। कोष।

मखतूल-संज्ञा पुं० [सं० महर्घ तूल] काला रेशम।

मखतूली-वि० [हिं० मखतूल + ई (प्रत्य०)] काले रेशम से बना हुआ। काले रेशम का।

मखत्राता-संज्ञा पुं० [सं० मखत्रातृ] (१) वह जो यज्ञ की रक्षा करता हो। (२) रामचंद्र जिन्होंने विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की थी।

मख़दूम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह जिसकी खिदमत की जाय। (२) स्वामी। मालिक।
वि० सेवा के योग्य। पूज्य।

मखद्वेषी-संज्ञा पुं० [सं० मखद्वेषिन्] राक्षस।

मखधारी-संज्ञा पुं० [सं० मखधारिन्] यज्ञ करनेवाला। वह जो यज्ञ करता हो।

मखन*-संज्ञा पुं० दे० "मक्खन"।

मखना-संज्ञा पुं० दे० "मकुना"।

मखनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के स्वामी, विष्णु।

मखनिया†-संज्ञा पुं० [हिं० मक्खन + इया (प्रत्य०)] मक्खन बनाने या बेचनेवाला।
वि० जिसमें से मक्खन निकाल लिया गया हो। जैसे,—मखनिया दूध, मखनिया दही।

मखनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मक्खन] प्रायः एक बालिश्त लंबी एक प्रकार की मछली जो मध्य भारत की नदियों में पाई जाती है।

मखमय-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

मख़मल-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) एक प्रकार का बहुत बढ़िया रेशमी कपड़ा जो एक ओर से रूखा और दूसरी ओर से बहुत चिकना और अत्यंत कोमल होता है। इस ओर छोटे छोटे रेशमी रोएँ भी उभरे रहते हैं। (२) एक प्रकार की रंगीन दरी जिसके बीचोबीच एक गोल चँदोआ बना रहता है।

मखमली-वि० [अ० मखमल + ई (प्रत्य०)] (१) मखमल का बना हुआ। जैसे,—मखमली टोपी। (२) मखमल का सा। मखमल की तरह का। जैसे,—मखमली किनारे की धोती।

मखमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

मखराज-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञों में श्रेष्ठ, राजसूय यज्ञ।

मख़लूक़-संज्ञा पुं० [अ०] ईश्वर की सृष्टि। परमेश्वर के बनाए हुए प्राणी।

मखवल्क्य-संज्ञा पुं० दे० "याज्ञवल्क्य"।

मखशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ करने का स्थान। यज्ञशाला।

मख़सूस-वि० [अ०] जो किसी विशिष्ट कार्य के लिये अलग कर दिया गया हो। खास तौर पर अलग किया या बनाया हुआ।

मखस्वामी-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के स्वामी, विष्णु।

मखाना-संज्ञा पुं० दे० "ताल मखाना"।

मखान्न-संज्ञा पुं० [सं०] ताल मखाना।

मखालय-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञशाला।

मखी*-संज्ञा स्त्री० दे० "मक्खी"।

मखेश-संज्ञा पुं० [सं०] राजसूय यज्ञ।

मखोना†-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कपड़ा। उ०—चकवा चीर मखोना लोने। मोति लाग औ छापे सोने।—जायसी।

मग-संज्ञा पुं० [सं० मार्ग प्रा० मग्ग] (१) रास्ता। राह।
मुहा०—के लिये दे० "बाट" और "रास्ता"।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार के शाकद्वीपी ब्राह्मण। (२) मगह देश। मगध। उ०—कासी मग सुरसरि क्रवि नासा। मरु मारव महिदेव गवासा।—तुलसी। (३) मगध का निवासी। (४) पिप्पलीमूल।

मगज-संज्ञा पुं० [अ० मग्ज़] (१) दिमाग़। मस्तिष्क।
यौ०—मगजपच्ची।
मुहा०—मगज खौलना = (१) कार्य्य की अधिकता के कारण दिमाग का कुछ काम न करना। (२) क्रोध के मारे दिमाग खराब होना। (३) दिमाग में गरमी आ जाना। पागल हो जाना। मगज खाना = बक कर तंग करना। मगज उड़ना या भिन्नाना = दुर्गंध या शोर के कारण दिमाग खराब होना। मगज उड़ाना = बहुत बक बककर दिक करना। मगज खाली करना = दे० "मगज पचाना"। मगज चाटना = बक बककर तंग करना। मगज चलना = (१) बहुत अभिमान होना। (२) पागल होना। मगज पचाना = (१) बहुत अधिक दिमाग लड़ाना। सिर खपाना। (२) समझाने के लिये बहुत बकना।
(२) गिरी। मींगी। गूदा।

मगजचट-संज्ञा पुं० [हिं० मगज + चाटना] वह जो बहुत बकता हो। बकवादी।

मगजचट्टी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मगज + चाटना] बकवाद। बकबक।

मगजपच्ची-संज्ञा स्त्री० [हिं० मगज + पचाना] किसी काम के लिये बहुत दिमाग लड़ाना। सिर खपाना।

मगजी-संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़े के किनारे पर लगी हुई पतली गोट।

मगण-संज्ञा पुं० [सं०] कविता के आठ गणों में से एक जिसमें ३ गुरु वर्ण होते हैं। लिखने में इसका स्वरूप यह है—SSS। इसका छंद के आदि में आना शुभ माना जाता है। कहते हैं कि इसका देवता पृथ्वी है और यह लक्ष्मीदाता है। जैसे,—आमोदी, काकोली, दीवाना।

मगद-संज्ञा पुं० [सं० मुद्ग] एक प्रकार की मिठाई जो मूँग के आटे और घी से बनती है।

मगदर†-संज्ञा पुं० दे० "मगदल"।

मगदल-संज्ञा पुं० [सं० मुद्ग] एक प्रकार का लड्डू जो मूँग वा उड़द के सत्तू में चीनी मिलाकर घी में फेटकर बनाया जाता है।

मगदा-वि० [सं० मग + दा (प्रत्य०)] मार्ग-प्रदर्शक। रास्ता दिखलानेवाला। उ०—वे मगदा पग अंधन को तुम चालिबो आछेनहूँ को निवारेउ।—विश्राम।

मगदूर*-संज्ञा पुं० दे० "मक़दूर"।

मगध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षिणी बिहार का प्राचीन नाम। वैदिक काल में इस देश का नाम कीकट था। (२) इस देश के निवासी। (३) राजाओं की कीर्त्ति का वर्णन करनेवाले, वंदीजन। मागध।

मगधेश-संज्ञा पुं० [सं०] मगध देश का राजा, जरासंध।

मगधेश्वर-संज्ञा पुं० दे० "मगधेश"।

मगन-वि० [सं० मग्न] (१) डूबा हुआ। समाया हुआ। (२) प्रसन्न। हर्षित। खुश। (३) बेहोश। मूर्च्छित। (४) लीन। वि० दे० "मग्न"।

मगना*†-क्रि० अ० [सं० मग्न] (१) लीन होना। तन्मय होना। (२) डूबना। उ०—तुलसी लगन लै दीन मुनिन्ह महेश आनँद रँग मगे।—तुलसी।

मगमा-संज्ञा पुं० [देश०] कागज बनाने में उसके लिये तैयार किए हुए गूदे को धोने की क्रिया।

मगर-संज्ञा पुं० [सं० मकर] (१) घड़ियाल नामक प्रसिद्ध जल-जंतु। (२) मीन। मछली। (३) मछली के आकार का कान में पहनने का एक गहना। (४) नैपालियों की एक जाति।

अव्य० लेकिन। परंतु। पर। जैसे,—आप कहते हैं, मगर यहाँ सुनता कौन है।

मुहा०—अगर मगर करना = आनाकानी करना। हीला हवाला करना।

मगरधर-संज्ञा पुं० [सं० मकर + धर] समुद्र। (डिं०)

मग़रब-संज्ञा पुं० [अ०] पश्चिम।

यौ०—मग़रब की नमाज़ = वह नमाज जो सूर्य्य अस्त होने के समय पढ़ी जाती है।

मगरबाँस-संज्ञा पुं० [हिं० मगर ? + बाँस] एक प्रकार का काँटेदार बाँस जो कोंकण और पश्चिमी घाट में अधिकता से होता है।

मगरमच्छ-संज्ञा पुं० [हिं० मगर + मछली] (१) मगर या घड़ियाल नामक प्रसिद्ध जल-जंतु। (२) बड़ी मछली।

मग़रूर-वि० [अ०] घमंडी। अभिमानी।

मग़रूरी-संज्ञा स्त्री० [अ० मग़रूर + ई (प्रत्य०)] घमंड। अभिमान।

मगरो†-संज्ञा पुं० [देश०] नदी का ऐसा किनारा जिसमें बालू के साथ कुछ मिट्टी मिली हो और जो जोतने बोने के योग्य हो गया हो।

मगरोसन†-संज्ञा स्त्री० [अ० मग्ज़ + रौशन] सुँघनी। नसवार।

मगली एरंड-संज्ञा पुं० [देश० मगली + हिं० एरंड] रतन जोत। बागबेरँडा।

मग़लूब-संज्ञा पुं० [फा०] चौबीस शोभाओं में से एक। (संगीत) वि० जो जीत लिया गया हो। पराजित।

मगस-संज्ञा पुं० [देश०] पेरे हुए ऊखों की सीठी। खोई।

संज्ञा पुं० [सं०] शकद्वीप की एक प्राचीन योद्धा जाति का नाम।

मगसिर†-संज्ञा पुं० [सं० मार्गशीर्ष] अगहन मास।

मगह†-संज्ञा पुं० [सं० मगध] मगध देश।

मगहपति* संज्ञा पुं० [सं० मगधपति] मगध देश का राजा, जरासंध।

मगहय*†-संज्ञा पुं० [सं० मगध] मगध देश। उ०—युद्धामन्यु अलंबु उलूका। मगहय बंधु चतुर अहि मूका।—सबल।

मगहर*†-संज्ञा पुं० [सं० मगध] मगध देश। उ०—सो मगहर महँ कीन्हो थाना। तहँ बसत बहु काल बिताना।—रघुराज।

मगही-वि० [सं० मगह + ई (प्रत्य०)] (१) मगध संबंधी। मगध देश का। (२) मगह में उत्पन्न।

यौ०—मगही पान = मगध देश का पान जो सबसे उत्तम समझा जाता है। वि० दे० "पान"।

मगु*†-संज्ञा पुं० [सं० मार्ग] मग। माग। पथ। राह। रास्ता।

मगोर-संज्ञा स्त्री० [देश०] सींगी की तरह की एक प्रकार की मछली जो बिना छिलके की और कुछ लाली लिये काले रंग की होती है। यह डंक मारती है। मंगुर। मँगुरी।

मग्ग*†-संज्ञा पुं० [सं० मार्ग] राह। रास्ता। मग। मार्ग।

मग़ज़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) मस्तिष्क। दिमाग़। भेजा। (२) किसी फल के बीज की गिरी। मींगी। गूदा। जैसे,—मग़ज़कद्दू।

मुहा०—के लिये दे० "मगज"।

मग़ज़रोशन-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सुँघनी। नास। वि० दे० "सुँघनी"।

मग्न-वि० [सं०] (१) डूबा हुआ। निमज्जित। (२) तन्मय। लीन। लिप्त। (३) प्रसन्न। हर्षित। खुश। (४) नशे आदि में चूर। मदमस्त। (५) नीचे की ओर गिरा या ढलका हुआ। जो उन्नत न हो। जैसे,—मग्न नासिका। मग्न स्तन। संज्ञा पुं० एक पर्वत का नाम।

मघ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुरस्कार। इनाम। (२) धन। संपत्ति। (३) एक प्रकार का फूल। पुराणानुसार एक द्वीप का नाम जिसमें म्लेच्छ रहते हैं।

मघई†-वि० दे० "मगही"।

मघवा-संज्ञा पुं० [सं० मघवन्] (१) इंद्र। (२) जैनों के बारह

चक्रवर्तियों में से एक। (३) पुराणानुसार सातवें द्वापर के व्यास का नाम। (४) पुराणानुसार एक दानव का नाम।

मघवाजित्-संज्ञा पुं० [सं०] रावण का बड़ा पुत्र इंद्रजित् जिसने इंद्र को जीत लिया था। मेघनाद।

मघवान-संज्ञा पुं० [सं० मघवन्] इंद्र। (डिं०)

मघवाप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रप्रस्थ नामक प्राचीन नगर। उ०—फिरि आए हस्तिनपुर पारथ मघवाप्रस्थ बसायो।—सूर।

मघवारिपु-संज्ञा पुं० [हिं० मघवा + रिपु = शत्रु] इंद्र का शत्रु, मेघनाद।

मघा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों में से दसवाँ नक्षत्र जिसमें पाँच तारे हैं। यह चूहे की जाति का माना जाता है और इसके अधिपति पितृगण कहे गए हैं। जिस समय सूर्य इस नक्षत्र में रहता है, उस समय खूब वर्षा होती है और उस वर्षा का जल बहुत अच्छा माना जाता है। उ०—(क) मनहुँ मघा-जल उमगि उदधि रुष चले नदी नद नारे।—तुलसी। (ख) दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई।—तुलसी। (ग) मघा मकरी, पूर्वा डाँस। उत्तरा में सबका नास। (कहावत) (२) एक प्रकार की ओषधि।

मघाना-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास। वि० दे० "मकड़ा"।

मघाभव-संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र ग्रह।

मघारना†-क्रि० स० [हिं० माघ + आरना (प्रत्य०)] आगामी वर्षा ऋतु में धान बोने के लिये माघ के महीने में हल चलाना।

मघोनी*-संज्ञा स्त्री० [सं० मघवन्] इंद्राणी। इंद्रपत्नी। शची।

मचक-संज्ञा स्त्री० [हिं० मचकना] दबाव। बोझ। दाब। उ०—बरजे दूनी है चढ़ै ना सकुचै न सँकाय। टूटति कटि दुमची मचक लचकि लचकि बचि जाय।—बिहारी।

मचकना-क्रि० स० [मच मच से अनु०] किसी पदार्थ को, विशेषतः लकड़ी आदि के बने पदार्थ को, इस प्रकार जोर से दबाना कि उसमें से मच मच शब्द निकले। उ०—यों मिचकी मचकौ न हहा लचकै करिहाँ मचकै मिचकी के।—पद्माकर।

क्रि० अ० इस प्रकार दबना जिसमें मच मच शब्द हो। झटके से हिलना। उ०—उचकि चलत हरि दचकनि दचकत मंच ऐसे मचकत भूतल के थल थल।—केशव।

मचका-संज्ञा पुं० [हिं० मचकना] [स्त्री० अल्पा० मचकी] (१) झोंका। धक्का। झटका। हुमचन। (२) झूले की पेंग।

मचना-क्रि० अ० [अनु०] (१) किसी ऐसे कार्य का आरंभ या प्रचलित होना जिसमें कुछ शोर-गुल हो। जैसे,—क्या दिल्लगी मचा रखी है। (२) छा जाना। फैलना। जैसे,—होली मच गई। उ०—नाचैंगी निकसि ससिबदनी बिहँसि तहाँ को हमैं गनत मही माह मैं मचति सी।—देव।

क्रि० अ० दे० "मचकना"। उ०—यह सुनि हँसत मचत अति गिरधर डरत देखि अति नारि।—सूर।

मचरंग-संज्ञा पुं० [देश०] किलकिला पक्षी।

मचक्रुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक यक्ष का नाम। (२) कुरुक्षेत्र के पास का एक पवित्र स्थान जिसकी रक्षा उक्त यक्ष करता है।

मचर्चिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तमता। श्रेष्ठता।

वि० जो सबसे उत्तम हो। सर्वश्रेष्ठ।

मचल-संज्ञा स्त्री० [हिं० मचलना] मचलने की क्रिया या भाव।

मचलना-क्रि० अ० [अनु०] किसी चीज़ को लेने अथवा न देने के लिये ज़िद बाँधना। हठ करना। अड़ना। (विशेषतः बालकों अथवा स्त्रियों के विषय में बोलते हैं।)

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मचला-वि० [हिं० मचलना अ० पं० मचला] जो बोलने के अवसर पर जान बूझकर चुप रहे। अनजान बननेवाला।

मचलाना-क्रि० अ० [अनु०] कै मालूम होना। जी मतलाना। ओकाई आना।

क्रि० स० किसी को मचलने में प्रवृत्त करना।

*†क्रि० अ० दे० "मचलना"।

मचवा-संज्ञा पुं० [सं० मंच] (१) खाट। पलंग। मंझा। (२) खटिया वा चौकी का पावा। (३) नाव। किश्ती। (क्व०)

मचाँग†-संज्ञा स्त्री० दे० "मचान"।

मचान-संज्ञा स्त्री० [सं० मंच + आन (प्रत्य०)] (१) चार खंभों पर बाँस का टट्टर बाँधकर बनाया हुआ स्थान जिस पर बैठकर शिकार खेलते वा खेत की रखवाली करते हैं। मंच। (२) कोई ऊँची बैठक। (३) दीया रखने की टिकठी। दीयट।

मचाना-क्रि० स० [हिं० मचना का स०] मचना का सकर्मक रूप। कोई ऐसा कार्य्य आरंभ करना जिसमें हुल्लड़ हो। जैसे,—दिल्लगी मचाना, होली मचाना।

मचामच-संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी पदार्थ को दबाने से होनेवाला मचमच शब्द। हुमचने का शब्द।

मचिया†-संज्ञा स्त्री० [सं० मंच + इया (प्रत्य०)] ऊँचे पायों की एक आदमी के बैठने योग्य छोटी चारपाई। पलँगड़ी। पीढ़ी।

मचिलई*-संज्ञा स्त्री० [हिं० मचलना] (१) मचलने का भाव। (२) इतराहट। (३) मचलापन।

मचेरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] बैलों के जूए के नीचे की लकड़ी।

मचोला-संज्ञा पुं० [देश०] बंगाल की खारी दलदलों में होनेवाला एक पौधा जिससे सुहागा बनता है।

मच्छ-संज्ञा पुं० [सं० मत्स्य, प्रा० मच्छ] (१) बड़ी मछली। (२) दोहे के सोलहवें भेद का नाम। इसमें ७ गुरु और ३४ लघु मात्राएँ होती हैं। (३) दे० "मत्स्य"।

मच्छअसवारी-संज्ञा पुं० [हिं० मच्छ + सवारी] कामदेव । मदन । (डिं०)

मच्छघातिनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मच्छ + सं० घातिनी] मछली फँसाने की लग्घी । बंसी ।

मच्छड़-संज्ञा पुं० [सं० मशक] एक प्रसिद्ध छोटा पतिंगा जो वर्षा तथा ग्रीष्म ऋतु में गरम देशों में और केवल ग्रीष्म ऋतु में कुछ ठंढे देशों में पाया जाता है । इसकी मादा पशुओं और मनुष्यों को काटती और डंक से उनका रक्त चूसती है। इसके काटने से शरीर में खुजली होती है और दाने से पड़ जाते हैं । यह पानी पर अंडे देता है; और इसी लिये जलाशयों तथा दलदलों के आस पास बहुत अधिक संख्या में पाया जाता है । प्रायः उड़ने के समय यह भुन् भुन् शब्द किया करता है । मलेरिया ज्वर इसी के द्वारा फैलता है ।

वि० कृपण । कंजूस ।

मच्छर-संज्ञा पुं० दे० "मच्छड़" ।

संज्ञा पुं० [सं० मत्सर] (१) क्रोध । कोप । (डिं०) (२) दे० "मत्सर"।

मच्छरता*-संज्ञा स्त्री० [सं० मत्सर + ता (प्रत्य०)] मत्सर । ईर्ष्या । द्वेष ।

मछरिया†-संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्य] (१) दे० "मछली" । (२) एक प्रकार की बुलबुल ।

मच्छसीमा-संज्ञा स्त्री० [हिं० मच्छ + सीमा] भूमि संबंधी झगड़ों का वह निपटारा जो किसी नदी आदि को सीमा मानकर किया जाता है । महाज़ी ।

मच्छी-संज्ञा स्त्री० दे० "मछली" ।

मच्छीकाँटा-संज्ञा पुं० [हिं० मच्छी + काँटा] एक प्रकार की सिलाई जिसमें सीए जानेवाले टुकड़ों के बीच में एक प्रकार की पतली जाली सी बन जाती है । (२) कालीन में एक प्रकार की जालीदार बेल ।

मच्छीमार-संज्ञा पुं० [हिं० मच्छी + मार (प्रत्य०)] धीवर । मल्लाह ।

मच्छोदरी*-संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्योदरी] व्यास जी की माता और शांतनु की भार्या, सत्यवती । उ०—सत्यवती मच्छोदरि नारी । गंगा-तट ठाढ़ी सुकुमारी ।—सूर ।

मछली-संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्य, प्रा० मच्छ] (१) सदा जल में रहनेवाला एक प्रसिद्ध जीव जिसकी छोटी बड़ी असंख्य जातियाँ होती हैं । इसे फेफड़े के स्थान में गलफड़े होते हैं जिनकी सहायता से ये जल में रहकर ही उसके अंदर की हवा खींचकर साँस लेती है; और यदि जल से बाहर निकाली जाय, तो तुरंत मर जाती है । पैरों या हाथों के स्थान में इसके दोनों ओर दो पर होते हैं जिनकी सहायता से यह पानी में तैर सकती है । कुछ विशिष्ट मछलियों के शरीर पर एक प्रकार का चिकना चिमड़ा छिलका होता है जो छीलने पर टुकड़े टुकड़े होकर निकलता है और जिससे सजावट के लिये अथवा कुछ उपयोगी सामान बनाए जाते हैं । अधिकांश मछलियों का मांस खाने के काम में आता है । कुछ मछलियों की चर्बी भी उपयोगी होती है । इसकी उत्पत्ति अंडों से होती है । मीन । मत्स्य ।

यौ०—**मछली का दाँत** = गैंडे के आकार के एक पशु का दाँत जो प्रायः हाथीदाँत के समान होता है और इसी नाम से बिकता है । **मछली का मोती** = एक प्रकार का कल्पित मोती जिसके विषय में लोगों की यह धारणा है कि यह मछली के पेट से निकलता है, गुलाबी रंग का और घुँघची के समान होता है और बड़े भाग्य से किसी को मिलता है । **मछली की स्याही** = एक प्रकार का काला रोगन जो भूमध्यसागर में पाई जानेवाली एक प्रकार की मछली के अंदर से निकलता है और जो नक़्शे आदि खींचने के काम में आता है ।

(२) मछली के आकार का बना हुआ सोने, चाँदी आदि का लटकन जो प्रायः कुछ गहनों में लगाया जाता है । (३) मछली के आकार का कोई पदार्थ ।

मछलीगोता-संज्ञा पुं० [हिं० मछली + गोता] कुश्ती का एक पेंच ।

मछलीडंड-संज्ञा पुं० [हिं० मछली + डंड] एक प्रकार का डंड जिसमें दोनों हाथ ज़मीन पर पास पास रखकर छाती और कोहनी को ज़मीन से ऊपर करते हुए मछली के समान उछलते हैं । इसमें पंजों को नीचे ज़मीन पर पटकने से आवाज़ होती है ।

मछलीदार-संज्ञा पुं० [हिं० मछली + दार (प्रत्य०)] दरी की एक प्रकार की बुनावट ।

मछलीमार-संज्ञा पुं० [हिं० मछली + मार (प्रत्य०)] मछली मारनेवाला । मछुआ । धीवर । मल्लाह ।

मछवा-संज्ञा पुं० [हिं० मछली] (१) वह नाव जिस पर बैठकर मछली का शिकार करते हैं । (लश०) (२) मल्लाह ।

मछुआ, मछुवा-संज्ञा पुं० [हिं० मछली + उआ (प्रत्य०)] मछली मारनेवाला । धीवर । मल्लाह ।

मछेह†-संज्ञा पुं० [देश०] शहद का छत्ता ।

मछोतर†-संज्ञा पुं० [सं० मत्स्य] मछली के आकार का लकड़ी का वह टुकड़ा जिसकी सहायता से हरिस में हल जुड़ा रहता है ।

मज़कूर-वि० [फ़ा०] जिसका उल्लेख या चर्चा पहले हो चुकी हो । जिक्र किया हुआ । कथित । उक्त ।

मज़कूर-ए-बाला-वि० [फ़ा०] ऊपर कहा हुआ । पूर्वोक्त । उपर्युक्त ।

मज़कूरात-संज्ञा पुं० [फ़ा०] शामिलात देहात अराज़ी का लगान जो गाँव के ख़र्च में आता है ।

मज़कूरी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) ताल्लुकेदार। (२) चपरासी। (३) वह मनुष्य जिसको चपरासी अपनी ओर से अपने सम्मन वग़ैरह की तामील के लिये रख लेते हैं। (४) बिना वेतन का चपरासी। (५) वह ज़मीन जिसका बँटवारा न हो सके और जो सर्वसाधारण के लिये छोड़ दी गई हो।

मज़दूर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० मजदूरनी, मजदूरिन] (१) बोझ ढोनेवाला। मजूरा। कुली। मोटिया। (२) इमारत आदि या कल-कारखानों में छोटा मोटा काम करनेवाला आदमी। जैसे,—राज-मजदूर, मिलों के मजदूर।

मज़दूरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) मज़दूर का काम। बोझ ढोने का या इसी प्रकार का और कोई छोटा मोटा काम। (२) बोझ ढोने या और कोई छोटा मोटा काम करने का पुरस्कार। (३) वह धन जो किसी को कोई नियत कार्य करने पर मिले। परिश्रम के बदले में मिला हुआ धन। उजरत। पारिश्रमिक। (४) जीविका निर्वाह के लिये किया जानेवाला कोई छोटा मोटा और परिश्रम का काम।

मजना*†-क्रि० अ० [सं० मज्जन] (१) डूबना। निमज्जित होना। (२) अनुरक्त होना। उ०—मानत नहीं लोक मर्यादा हरि के रंग मजी। सूर स्याम को मिलि चूने हरदी ज्यों रंगरजी।—सूर।

मजनूँ-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पागल। सिड़ी। बावला। दीवाना। सौदाई। (२) अरब के एक प्रसिद्ध सरदार का लड़का जिसका वास्तविक नाम कैस था और जो लैला नाम की एक कन्या पर आसक्त होकर उसके लिये पागल हो गया था; और इसी कारण जो "मजनूँ" प्रसिद्ध हुआ था। लैला के साथ मजनूँ के प्रेम के बहुत से कथानक प्रसिद्ध हैं। (३) आशिक। प्रेमी। आसक्त। (४) बहुत दुबला पतला आदमी। सूखा हुआ मनुष्य। अति दुर्बल मनुष्य। (५) एक प्रकार का वृक्ष जिसकी शाखाएँ झुकी हुई होती हैं। इसे 'बेद मजनूँ' भी कहते हैं। वि० दे० "बेद मजनूँ"।

मज़बूत-वि० [अ०] (१) दृढ़। पुष्ट। पक्का। (२) अटल। अचल। स्थिर। (३) बलवान्। सबल। तकड़ा। हृष्टपुष्ट।

मज़बूती-संज्ञा स्त्री० [अ० मज़बूत+ई (प्रत्य०)] (१) मज़बूत का भाव। दृढ़ता। पुष्टता। पक्कापन। (२) ताकत। बल। (३) हिम्मत। साहस।

मजबूर-वि० [अ०] जिस पर जब्र किया गया हो। विवश। लाचार। जैसे,—आपको यह काम करने के लिये कोई मजबूर नहीं कर सकता।

मजबूरन्-क्रि० वि० [अ०] विवश होकर। लाचारी से।

मजबूरी-संज्ञा स्त्री० [अ० मजबूर+ई (प्रत्य०)] असमर्थता। लाचारी। बे-बसी।

मजमा-संज्ञा पुं० [अ०] बहुत से लोगों का एक स्थान में जमाव। भीड़भाड़। जमघट।

मजमुआ-वि० [अ०] इकट्ठा किया हुआ। जमा किया हुआ। एकत्र किया हुआ। संगृहीत।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) एक ही प्रकार की बहुत सी चीज़ों का समूह। ज़ख़ीरा। खजाना। (२) एक प्रकार का इत्र जो कई इत्रों को एक में मिलाकर बनता है। यह प्रायः जमा हुआ होता है।

मज़मून-संज्ञा पुं० [अ०] (१) विषय, जिस पर कुछ कहा या लिखा जाय।

मुहा०—मजमून बाँधना=किसी विषय अथवा नवीन विचार को गद्य या पद्य में लिखना। मजमून मिलना या लड़ना=दो अलग अलग लेखकों या कवियों के वर्णित विषयों या भावों का मिल जाना।

(२) लेख।

मजरिया-वि० [फ़ा०] जो जारी हो। प्रवर्त्तित। (कच०)

मजरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का झाड़ जिसके डंठलों से टोकरे बनाए जाते हैं। यह सिंध और पंजाब में अधिकता से होता है।

मज़रूआ-वि० [फ़ा०] जोता और बोया हुआ। (खेत)

मजरूह-वि० [अ०] चोट खाया हुआ। घायल। ज़ख़मी।

मजल†-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मंजिल] मंज़िल। पड़ाव। टिकान।

मुहा०—मजल मारना=(१) बहुत दूर से पैदल चलकर आना। (२) कोई बड़ा काम करना।

मजलिस-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बहुत से लोगों के बैठने की जगह। वह स्थान जहाँ बहुत से मनुष्य एकत्र हों। (२) सभा। समाज। जलसा।

क्रि० प्र०—जमना।—जुड़ना।—लगना।

(३) महफ़िल। नाच-रंग का स्थान।

मजलिसी-संज्ञा पुं० [अ०] नेवता देकर मजलिस में बुलाया हुआ मनुष्य। निमंत्रित व्यक्ति।

वि० (१) मजलिस संबंधी। मजलिस का। (२) जो मजलिस में रहने योग्य हो। सब को प्रसन्न करनेवाला।

मज़लूम-वि० [अ०] जिस पर ज़ुल्म हुआ हो। सताया हुआ। अत्याचार पीड़ित।

मज़हब-संज्ञा पुं० [अ०] धार्मिक संप्रदाय। पंथ। मत।

मज़हबी-वि० [अ०] किसी धार्मिक मत या संप्रदाय से संबंध रखनेवाला।

संज्ञा पुं० मेहतर सिक्ख। भंगी सिक्ख।

मज़ा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) स्वाद। लज्जत। जैसे,—अब इन आमों में कुछ मजा नहीं रह गया।

मुहा०—मज़ा चखाना=किसी को उसके किए हुए अपराध का दंड देना। बदला लेना। किसी चीज़ का मज़ा पड़ना=

चसका लगना। आदत पड़ना। **मज़े पर आना** = अपनी सबसे अच्छी दशा में आना। जोबन पर आना।

(२) आनंद। सुख। जैसे,—आपको तो लड़ाई झगड़े में ही मजा मिलता है।

मुहा०—मज़ा उड़ाना या लूटना = आनंद लेना। सुख भोगना। **मज़ा किरकिरा होना** = आनंद में विघ्न पड़ना। रंग में भंग होना। **मजे का** = अच्छा। बढ़िया। उत्तम। **मजे में या मजे से** = आनंदपूर्वक। बहुत अच्छी तरह। सुख से।

(३) दिल्लगी। हँसी। मजाक। जैसे,—मजा तो तब हो, जब वह आज भी न आवे।

मुहा०—मज़ा आ जाना = परिहास का साधन प्रस्तुत होना। दिल्लगी का सामान होना। जैसे,—अगर आप यहाँ गिरें तो मजा आ जाय। **मज़ा देखना या लेना** = दिल्लगी या तमाशा देखना। जैसे,—आप चुपचाप बैठे बैठे मजा देखा कीजिए।

मज़ाक़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) हँसी। ठट्ठा। दिल्लगी। ठठोली।

क्रि० प्र०—करना।—सूझना।

मुहा०—मज़ाक उड़ाना = परिहास करना। दिल्लगी करना।

यौ०—मज़ाक का आदमी = हँसमुख। दिल्लगीबाज। ठठोल।

(२) प्रवृत्ति। रुचि।

मज़ाक़न्-क्रि० वि० [अ०] मज़ाक़ से। हँसी-दिल्लगी के तौर पर। जैसे,—मैंने तो वह बात मज़ाक़न् कही थी।

मज़ाक़िया-क्रि० वि० दे० "मजाकन्"।

मजाज†-संज्ञा पुं० [फ़ा० मिज़ाज] (१) गर्व। अभिमान। (डिं०) (२) दे० "मिज़ाज"।

मजाज़-संज्ञा पुं० [अ०] अधिकार। हक़। इख़तियार।

मजाज़ी-वि० [अ०] (१) कृत्रिम। बनावटी। बनौवा। नकली। (२) माना हुआ। कल्पित।

मज़ार-संज्ञा पुं० [अ०] (१) समाधि। मकबरा। (२) कब्र।

मजाल-संज्ञा स्त्री० [अ०] सामर्थ्य। शक्ति। ताकत। जैसे,—किस की मजाल नहीं जो आपसे बातें कर सके।

मजिल*†-संज्ञा स्त्री० दे० "मंज़िल"।

मजिस्टर-संज्ञा पुं० दे० "मजिस्ट्रेट"।

मजिस्ट्रेट-संज्ञा पुं० [अं०] फौजदारी अदालत का अफ़सर, जो ब्रिटिश भारत में प्रायः ज़िले का माल विभाग का प्रधान अधिकारी भी होता है।

यौ०—आनरेरी मजिस्ट्रेट। ज्वाइंट मजिस्ट्रेट। डिप्टी मजिस्ट्रेट।

मजिस्ट्रेटी-संज्ञा स्त्री० [अं० मजिस्ट्रेट + ई (प्रत्य०)] (१) मजिस्ट्रेट का कार्य या पद। (२) मजिस्ट्रेट की अदालत।

मजीठ-संज्ञा स्त्री० [सं० मंजिष्ठा] एक प्रकार की लता जो समस्त भारत के पहाड़ी प्रदेशों में पाई जाती है। इसकी सूखी जड़ और डंठलों को पानी में उबालकर एक प्रकार का बढ़िया लाल या गुलनार रंग तैयार किया जाता है जो सूती और रेशमी कपड़े रँगने के काम में आता है। पर आज कल विलायती बुकनी के कारण इसका व्यवहार बहुत कम होता जाता है। वैद्यक में भी अनेक रोगों में इसका व्यवहार होता है। यह मधुर, कषाय, उष्ण, गुरु और व्रण, प्रमेह, ज्वर, श्लेष्मा तथा विष का प्रभाव दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्य्या०—विकसा। सभंगा। कालमेषिका। मंडूकपर्णी। भंडी। हरिणी। रक्ता। गौरी। योजनवल्लिका। वप्रा। रोहिणी। चित्रा। चित्रलता। जननी। विजया। मंजूषा। रक्तयष्टिका। क्षत्रिणी। छत्रा। अरुणी। नागकुमारिका। वस्त्रभूषणी।

मजीठी†-संज्ञा स्त्री० [सं० मध्य] (१) वह रस्सी जो जुआठे में बँधी रहती है। जोत। (२) रूई ओटने की चर्खी में लगी हुई बीच की लकड़ी जो घूमती है और जिसके घूमने से रूई में से बिनौले अलग होते हैं।

मजीर*-संज्ञा स्त्री० [सं० मंजरी] मंजरी। घौद। उ०—करि कुंभ कुंजर विटप भारी चमर चारु मजीर। चमू चंचल चलत नाहिन रही है पुर तीर।—सूर।

मजीरा-संज्ञा पुं० [सं० मंजीर] काँसे की बनी हुई छोटी छोटी कटोरियों की जोड़ी जिनके मध्य में छेद होता है। इन्हीं छेदों में डोरा पहनाकर उसकी सहायता से एक कटोरी से दूसरी पर चोट देकर संगीत के साथ ताल देते हैं। जोड़ी। ताल। टुनकी। इसके बोल इस प्रकार हैं—ताँयँ ताँयँ, किट् ताँयँ, किट् किट्, ताँयँ ताँयँ।

मजूर*-संज्ञा पुं० [सं० मयूर] मोर।

संज्ञा पुं० दे० "मजदूर"।

मजूरा†-संज्ञा पुं० दे० "मजदूर"।

मजूरी†-संज्ञा स्त्री० दे० "मजदूरी"।

मजेज*†-वि० [फ़ा० मिज़ाज] दर्प। अहंकार। अभिमान। उ०—(क) लाडिली कुँवरि राधा रानी के सदन तजी मदन मजेज-रति सेजहि सजति है।—देव। (ख) खेस को बहानो कै सहेलिन के संग चलि आई केलि मंदिर लौं सुंदर मजेज पर।—पद्माकर।

मजेठी†-संज्ञा स्त्री० [सं० मध्य] सूत कातने के चर्खे में वह लकड़ी जो नीचे से उन दोनों डंडों को जोड़े रहती है जिनमें पहिया या चक्कर लगा होता है।

मज़ेदार-वि० [फ़ा०] (१) स्वादिष्ट। ज़ायक़ेदार। (२) अच्छा। बढ़िया। (३) जिसमें आनंद आता हो। जैसे,—आपकी बातें बहुत मजेदार होती हैं।

मज़ेदारी-संज्ञा स्त्री० [फा० मजादार + ई (प्रत्य०)] (१) स्वाद। (२) आनंद। लुत्फ। मजा।

मज्ज*-संज्ञा स्त्री० [सं० मज्जा] हड्डी के भीतर का भेजा। नली के अंदर का गूदा। उ०—आवत गलानि जो बखान करौ

ज्यादा यह मादा मल-मूत और मज्ज की सलीती है।—पद्माकर।

मज्जन-संज्ञा पुं० [सं०] स्नान। नहाना। उ०—दरस परस मज्जन अरु पाना।—तुलसी।

मज्जना*-क्रि० अ० [सं० मज्जन] (१) स्नान करना। गोता लगाना। नहाना। (२) डूबना। निमग्न होना।

मज्जा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नली की हड्डी के भीतर का गूदा जो बहुत कोमल और चिकना होता है।

मज्झ*-क्रि० वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ] मध्य। बीच।

मझधार-संज्ञा स्त्री० [हिं० मझ = मध्य + धार] (१) नदी के मध्य की धारा। बीच-धारा। (२) किसी काम का मध्य।

मुहा०—मझधार में छोड़ना = (१) किसी काम को बीच में ही छोड़ना। पूरा न करना। (२) किसी को ऐसी अवस्था में छोड़ना कि वह इधर का रहे, न उधर का।

मझरासिंगही-संज्ञा स्त्री० [देश०] बैलों की एक जाति।

मझला-वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ + ला (प्रत्य०)] मध्य का। बीच का। जैसे,—मझला भाई।

मझाना*†-क्रि० स० [सं० मध्य] प्रविष्ट करना। बीच में धँसाना। क्रि० अ० प्रविष्ट होना। पैठना।

मझार*†-क्रि० वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ + आर (प्रत्य०)] बीच में। मध्य में। में। भीतर।

मझावना*†-क्रि० अ० स० दे० "मझाना"।

मझिया†-संज्ञा स्त्री० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ + इया (प्रत्य०)] लकड़ी की वह पट्टियाँ जो गाड़ी के पेंदे में लगी रहती हैं।

मझियाना*†-क्रि० अ० [हिं० माँझी + इयाना (प्रत्य०)] नाव खेना। मल्लाही करना। उ०—प्रथमहि नैन मलाह जे लेत सुनेह लगाइ। तब मझियावत जाय कै गहिर रूप दरयाइ।—रसनिधि।

क्रि० अ० [सं० मध्य + इयाना (प्रत्य०)] मध्य में होकर आना। बीच से होकर निकलना। उ०—सपने हू आए न जे हित गलियन मझियाइ। तिन सों दिल को दरद कहि मत दे भरम गमाइ।—रसनिधि।

क्रि० स० मध्य में से निकालना। बीच में से ले जाना।

मझियारा*†-वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ + इयारा (प्रत्य०)] बीच का। मध्यम।

मझुआ†-संज्ञा पुं० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ + उआ (प्रत्य०)] हाथ में पहनने की मठिया नामक चूड़ियों में कोहनी की ओर से पड़नेवाली दूसरी चूड़ी जो पछेला के बाद होती है।

मझेरू†-संज्ञा पुं० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ + एरू (प्रत्य०)] जुलाहों के ऊड़ी नामक औजार के बीच की लकड़ी।

मझेला-संज्ञा पुं० [देश०] (१) चमारों का लोहे का एक औजार जो एक बालिश्त का होता है। इससे जूते का तला सिया जाता है। (२) लोहे का एक औजार जिसमें लकड़ी का दस्ता लगा रहता है और जिससे चमड़े पर का खुरखुरापन दूर किया जाता है।

† संज्ञा पुं० दे० "झमेला"।

मझोला-वि० [सं० मध्य, प्रा० मज्झ + ओला (प्रत्य०)] (१) मझला। बीच का। मध्य का। (२) जो आकार के विचार से न बहुत बड़ा हो और न बहुत छोटा। मध्यम आकार का।

मझोली-संज्ञा स्त्री० [हिं० मझोला] (१) एक प्रकार की बैलगाड़ी। (२) टेकुरी की तरह का एक औजार जिससे जूते की नोक सी जाती है।

मट†-संज्ञा पुं० [हिं० मटका] मिट्टी का बड़ा पात्र जिसमें दूध दही रहता है। मटका। मटकी। उ०—तौ लगि गाय बँबाय उठी कवि देव बधून मथ्यो दधि को मट।—देव।

मटक-संज्ञा स्त्री० [सं० मट = चलना + क (प्रत्य०)] (१) गति। चाल। उ०—कुंडल लटक सोहै भृकुटी मटक सोहै अटकी चटक पट पीत फहरान की।—दीनदयाल। (२) मटकने की क्रिया या भाव।

यौ०—चटक मटक।

मटकना-क्रि० अ० [सं० मट = चलना] (१) अंग हिलाते हुए चलना। लचककर नखरे से चलना। (विशेषतः स्त्रियों का) (२) अंगों अर्थात् नेत्र, भृकुटी, उँगली आदि का इस प्रकार संचालन होना जिसमें कुछ लचक या नखरा जान पड़े। (३) हटना। लौटना। फिरना। उ०—श्याम सलोने रूप में अरी मन अन्यो। ऐसे ह्वै लटक्यौ तहाँ ते फिरि नहिं मटक्यौ बहुत जतन मैं कन्यो।—सूर। (४) विचलित होना। हिलना। उ०—उतर न देत मोहनी मौन ह्वै रही री सुनि सब बात नेकहू न मटकी।—सूर।

मटकनि*-संज्ञा स्त्री० [हिं० मटकना] (१) गति। चाल। (२) मटकने का भाव। उ०—भृकुटी मटकनि पीत पट चटक लटकती चाल।—बिहारी। (३) नाचना। नृत्य। (४) नखरा। मटक।

मटका-संज्ञा पुं० [हिं० मिट्टी + क (प्रत्य०)] मिट्टी का बना हुआ एक प्रकार का बड़ा घड़ा जिसमें अन्न, पानी इत्यादि रखा जाता है। मट। माट।

मटकाना-क्रि० स० [हिं० मटकना का स०] नखरे के साथ अंगों का संचालन करना। आँख, हाथ आदि हिलाकर कुछ चेष्टा करना। चमकाना। जैसे,—हाथ मटकाना, आँखें मटकाना। उ०—भृकुटी मटकाय गुपाल के गाल में आँगुरी ग्वालि गड़ाय गई।—मुबारक।

क्रि० स० दूसरे को मटकने में प्रवृत्त करना।

मटकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मटका] छोटा मटका। कमोरी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० मटकाना] मटकाने का भाव। मटक।

मुहा०—मटकी देना = मटकाना। चमकाना। जैसे,—आँख की एक मटकी देकर चला गया।

मटकीला-वि० [हिं० मटकना + ईला (प्रत्य०)] मटकनेवाला। नखरे से हिलने डोलनेवाला। उ०—चटकीली खौरि सजै मटकीली भौंहन पै दीनदयाल दग मोहे लटकीली चाल ने।—दीनदयाल।

मटकौअल, मटकौवल-संज्ञा स्त्री० [हिं० मटकाना + औवल (प्रत्य०)] मटकाने की क्रिया या भाव। मटक।

मटखौरा-संज्ञा पुं० [हिं० मिट्टी + खौरा?] एक प्रकार का हाथी जो दूषित माना जाता है।

मटना-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की ऊख जो कानपुर और बरेली के जिलों में पैदा होती है।

मटमँगरा†-संज्ञा पुं० [हिं० माटी + मंगल] विवाह के पहले की एक रीति जिसमें किसी शुभ दिन वर या बधू के घर की स्त्रियाँ गाती बजाती हुई गाँव के बाहर मिट्टी लेने जाती हैं और उस मिट्टी से कुछ विशिष्ट अवसरों के लिये गोलियाँ आदि बनाती हैं।

मटमैला-वि० [हिं० मिट्टी + मैला] मिट्टी के रंग का। खाकी। धूलिया।

मटर-संज्ञा पुं० [सं० मधुर] एक प्रकार का मोटा अन्न जो वर्षा या शरद ऋतु में भारत के प्रायः सभी भागों में बोया जाता है। इसके लिये अच्छी तरह और गहरी जोती हुई भूमि और खाद की आवश्यकता होती है। इसमें एक प्रकार की लंबी फलियाँ लगती हैं जिन्हें छीमी या छींबी कहते हैं और जिनके अंदर गोल दाने रहते हैं। आरंभ में ये दाने बहुत ही मीठे और स्वादिष्ट होते हैं और प्रायः तरकारी आदि के काम में आते हैं। जब फलियाँ पक जाती हैं, तब उनके दानों से दाल बनाई जाती है अथवा रोटी के लिये उसका आटा पीसा जाता है। कहीं कहीं इसका सत्तू भी बनता है। इसकी पत्तियाँ और डंठल पशुओं के चारे के लिये बहुत उपयोगी होते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक को दुबिया और दूसरे को काबुली मटर या केराव कहते हैं। वैद्यक में इसे मधुर, स्वादिष्ट, शीतल, पित्तनाशक, रुचिकारक, वातकारक पुष्टजनक, मल को निकालनेवाला और रक्तविकार को दूर करनेवाला माना है।

पर्य्या०—कलाय। मुंडचणक। हरेणु। रेणुक। संदिक। त्रिपुट। अतिवर्तुल। शमन। नीलक। कंटी। सतील। सतीनक।

मटरगश्त-संज्ञा स्त्री० पुं० [हिं० मट्ठर = मंद + फ़ा० गश्त] (१) धीरे धीरे घूमना। टहलना। (२) सैर-सपाटा।

मटरबोर-संज्ञा पुं० [हिं० मटर + बोर = घुँघरू] मटर के बराबर घुँघरू जो पाजेब आदि में लगते हैं।

मटराला-संज्ञा पुं० [हिं० मटर + आला (प्रत्य०)] जौ के साथ मिला हुआ मटर।

मटलनी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मिट्टी] मिट्टी का कच्चा बर्तन।

मटा†-संज्ञा पुं० [हिं० माटा] एक प्रकार का लाल च्यूँटा जिसके झुंड आम के पेड़ों पर रहा करते हैं।

मटिआना†-क्रि० स० [हिं० मिट्टी + आना (प्रत्य०)] (१) मिट्टी से माँजना। अशुद्ध बरतन आदि में मिट्टी मलकर उसे साफ करना। (२) मिट्टी से ढाँकना। (३) टालने के हेतु किसी बात को सुनकर भी उसका कुछ जवाब न देना। सुनी अनसुनी करना।

मटिया†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मिट्टी] (१) मिट्टी। (२) मृत शरीर। लाश। शव।

वि० मिट्टी का सा। मटमैला। खाकी।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का लटोरा पक्षी जिसे कजला भी कहते हैं।

मटियामसान-वि० [हिं० मटिया + मसान] गया बीता। नष्टप्राय। उ०—स्त्री प्रसंग, चाहे जो ऋतु हो, प्रति दिन करना हाथी सरीखे बलवान को भी मटियामसान कर बुड्ढों की कोटि में कर देता है।—जगन्नाथ।

मटियामेट-वि० दे० "मलिया मेट"।

मटियार†-संज्ञा पुं० [हिं० मिट्टी + यार (प्रत्य०)] वह भूमि या क्षेत्र जिसमें चिकनी मिट्टी अधिक हो।

मटियाला-वि० दे० "मटमैला"।

मटीला-वि० दे० "मटमैला"।

मटुका-संज्ञा पुं० दे० "मटका"।

मटुकिया†-संज्ञा स्त्री० दे० "मटकी"।

मटुकी*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मटका] मिट्टी का बना हुआ चौड़े मुँह का बरतन जिसमें अन्न या दूध आदि रखते हैं। मटकी।

मट्टी-संज्ञा स्त्री० दे० "मिट्टी"।

मट्ठा-संज्ञा पुं० [सं० मंथन] मथा हुआ दही जिसमें से नैनूँ निकाल लिया गया हो। मही। छाछ। तक्र।

मट्ठी-संज्ञा स्त्री० [देश०] मैदे का बना हुआ एक प्रकार का बहुत खस्ता पकवान।

मठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निवास स्थान। रहने की जगह। (२) वह मकान जिसमें एक महंत की अधीनता में बहुत से साधु आदि रहते हों।

यौ०—मठधारी। मठाधीश। मठपति।

(३) वह स्थान जहाँ विद्या पढ़ने के लिये छात्र आदि रहते हों। (४) मंदिर। देवालय।

यौ०—मठपति = पुजारी।

मठधारी-संज्ञा पुं० [सं० मठधारिन्] वह साधु या महंत जिसके अधिकार में कोई मठ हो।

मठपति-संज्ञा पुं० दे० "मठधारी"।

मठर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन मुनि का नाम।

मठरना-संज्ञा पुं० [देश०] सोनारों तथा कसगरों का एक औजार जो छोटे हथौड़े की तरह का होता है। इसका व्यवहार उस समय होता है जिस समय हलकी चोट देने का काम पड़ता है।

मठरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की मिठाई जिसे टिकिया भी कहते हैं। (२) दे० "मट्ठी"।

मठा-संज्ञा पुं० दे० "मट्ठा"।

मठाधीश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मठ का प्रधान कार्यकर्त्ता या मालिक। (२) मठ में रहनेवाला प्रधान साधु या महंत।

मठान†-संज्ञा पुं० दे० "मठरना"।

मठिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० मठ+इया (प्रत्य०)] (१) छोटी कुटी या मठ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] फूल (धातु) की बनी हुई चूड़ियाँ जो नीच जाति की स्त्रियाँ पहनती हैं। ये एक एक बाँह में में २०-२५ तक होती हैं और कोहनी से कलाई तक पहनी जाती हैं। इनमें कोहनी के पास की चूड़ी सब से बड़ी होती है; और उसके उपरांत की चूड़ियाँ क्रमशः छोटी होती जाती हैं।

मठी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मठ+ई (प्रत्य०)] (१) छोटा मठ। (२) मठ का अधिकारी। मठ का महंत। मठधारी। उ०—सुपुत्र हो हु जै-हठी मठीन सों न बोलिये।—केशव।

मठुलिया†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मठरी] (१) टिकिया या मठरी नाम की मिठाई। (२) दे० "मट्ठी"।

मठोर-संज्ञा स्त्री० [हिं० मट्ठा] (१) दही मथने वा मट्ठा रखने की मटकी जो साधारण मटकियों से कुछ बड़ी होती है। (२) नील बनाने की नाँद। नील का माठ।

मठोरना†-क्रि० स० [देश०] (१) किसी लकड़ी को खरादने के लिये रंदा लगाकर ठीक करना। (२) मठरना नामक हथौड़े से धीरे धीरे चोट लगाकर गहने आदि ठीक करना। (सुनार)

मठौरा-संज्ञा पुं० [हिं० मठोरना] एक प्रकार का रंदा जिससे लकड़ी रँदकर खरादने आदि के योग्य करते हैं।

मड़ई†-संज्ञा वि० [सं० मंडपी] (१) छोटा मंडप। (२) कुटिया। पर्णशाला।

संज्ञा स्त्री० दे० "मंडी"।

मड़मड़ाना-क्रि० अ० स० दे० "मरमराना"।

मड़राना-क्रि० अ० दे० "मँडराना"। उ०—सरस कुसुम मड़रात अलिन झुकि झपटि लपटात।—बिहारी।

मड़ला†-संज्ञा पुं० [सं० मंडल] अनाज रखने की छोटी कोठरी।

मड़वा-संज्ञा पुं० दे० "मंडप"।

मड़वारी†-संज्ञा पुं० दे० "मारवाड़ी"।

मड़हा†-वि० [हिं० माँड+हा (प्रत्य०)] माँड़ खानेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० मंडप] मिट्टी या घास फूस आदि का बना हुआ छोटा घर।

संज्ञा पुं० [देश०] भुना हुआ चना।

मड़ाड़†-संज्ञा पुं० [देश०] छोटा कच्चा तालाव या गड्ढा। उ०—मड़ाड़, बावली और कुएँ का झाँकना।—जगन्नाथ।

मड़ियार-संज्ञा पुं० [हिं० मारवाड़ ?] क्षत्रियों की एक जाति जो मारवाड़ में रहती है।

मड़ुआ-संज्ञा पुं० [देश०] (१) बाजरे की जाति का एक प्रकार का कदन्न जो बहुत प्राचीन काल से भारत में बोया जाता है; और अब तक अनेक स्थानों में जंगली दशा में भी मिलता है। यह वर्षा ऋतु में खाद दी हुई भूमि में कभी कभी ज्वार के साथ और कभी कभी अकेला बोया जाता है। मैदानों में इसकी देख रेख की विशेष आवश्यकता होती है; पर हिमालय की तराई में यह अधिकांश में आप से आप ही तैयार हो जाता है। अधिक वर्षा से इसकी फसल को हानि पहुँचती है। यदि इसकी फसल तैयार होने पर भी खेतों में रहने दी जाय, तो विशेष हानि नहीं होती। फसल काटने के उपरांत इसके दाने वर्षों तक रखे जा सकते हैं; और इसी कारण अकाल के समय गरीबों के लिये इसका बहुत अधिक उपयोग होता है। इसे पीसकर आटा भी बनाया जाता है और यह चावलों आदि के साथ उबालकर भी खाया जाता है। इससे एक प्रकार की शराब भी बनती है। वैद्यक में इसे कसैला, कड़ुआ, हलका, तृप्तिकारक, बल-वर्धक, त्रिदोष-निवारक और रक्त दोष को दूर करनेवाला माना है।

पर्य्या०—वटक। स्थूलकंगु। रूक्ष। स्थूल प्रियंगु।

(२) एक प्रकार का पक्षी।

मड़ैया†-संज्ञा स्त्री० [सं० मंडपी] (१) छोटा मंडप। (२) कुटी। पर्णशाला। झोपड़ी। (३) मिट्टी का बना हुआ छोटा घर।

मड़ोड़-संज्ञा स्त्री० दे० "मरोड़"।

मड़ोड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मरोड़ना+ई (प्रत्य०)] लोहे की छोटी पेंचदार कँटिया।

मढ़-संज्ञा पुं० दे० "मठ"।

वि० जो जल्दी हटाने से भी न हटे। अड़कर बैठनेवाला।

मढ़ना-क्रि० स० [सं० मंडन] (१) आवेष्टित करना। चारों ओर से घेर देना। लपेट लेना। जैसे,—तसवीर पर चौखटा मढ़ना, टेबुल पर कपड़ा मढ़ना। (२) बाजे के मुँह पर बजाने के लिये चमड़ा लगाना। उ०—(क) कमठ-खपर मढ़ि खाल निसान बजावहीं।—तुलसी। (ख) मढ़्यौ दमामा जात क्यों सौ चूहे के चाम।—बिहारी।

मुहा०—मढ़ आना=घिर आना (जैसे बादलों का)। उ०—

रति है आई चले घर को दसहू दिस मेघ महा मढ़ि आये। —केशव ।

(३) बलपूर्वक किसी पर आरोपित करना। किसी के गले लगाना। थोपना। जैसे,—अब तो आप सारा दोष मुझ पर ही मढ़ेंगे।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

†क्रि० अ० आरंभ होना। मचना। मँड़ना। (क्व०)

मढ़वाना-क्रि० स० [हिं० मढ़ना का प्रेर०] मढ़ने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को मढ़ने में प्रवृत्त करना।

मढ़ा†-संज्ञा पुं० [हिं० मढ़ी] मिट्टी का बना हुआ छोटा घर।

मढ़ाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० मढ़ना] (१) मढ़ने का भाव। (२) मढ़ने का काम। (३) मढ़ने की मजदूरी।

मढ़ाना-क्रि० स० दे० "मढ़वाना"।

मढ़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० मठ] (१) छोटा मठ। (२) छोटा देवालय। (३) कुटी। झोंपड़ी। पर्णशाला। (४) छोटा घर। (५) छोटा मंडप।

मढ़ैया†-संज्ञा स्त्री० दे० "मढ़ी"।

संज्ञा पुं० [हिं० मढ़ना + ऐया (प्रत्य०)] मढ़नेवाला।

मणगयण-संज्ञा पुं० [डिं०] सूर्य।

मणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुमूल्य रत्न। जवाहिर। जैसे,—हीरा, पन्ना, मोती, माणिक आदि। (२) सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति। जैसे,—रघुकुल-मणि। (३) बकरी के गले की थैली। (४) पुरुषेंद्रिय का अगला भाग। (५) योनि का अगला भाग। (६) घड़ा। (७) एक प्राचीन मुनि का नाम। (८) एक नाग का नाम।

मणिक-संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का घड़ा।

मणिकानन-संज्ञा पुं० [सं०] गला। कंठ।

मणिकुट्टिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

मणिकूट-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कामरूप के पास के एक पर्वत का नाम।

मणिकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक बहुत छोटा पुच्छल तारा जिसकी पूँछ दूध सी सफेद मानी गई है। यह केतु पच्छिम में उगता है और केवल एक पहर दिखाई देता है।

मणिगुण-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार नगण और एक सगण होता है। इसको 'शशिकला' और 'शरभ' भी कहते हैं। उ०—नवहु सुखद जसुमति सुत सहिता। लहहु जनम इह सुख सखि अमिता। बढ़त चरण रति सु हरि अनु-पला। जिमि सित पख नित बढ़त शशिकला।—भानु।

मणिगुणनिकर-संज्ञा पुं० [सं०] मणिगुण नामक छंद का एक रूप जो उसके ८ वें वर्ण पर विराम करने से होता है। इसका दूसरा नाम चंद्रावती भी है।

मणिग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर के एक पुत्र का नाम।

मणिच्छिद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेधा नाम की ओषधि। (२) ऋषभा नाम की ओषधि।

मणिजला-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

मणितारक-संज्ञा पुं० [सं०] सारस।

मणिद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार रत्नों का बना हुआ एक द्वीप जो क्षीरसागर में है। यह त्रिपुरसुंदरी देवी का निवास स्थान माना जाता है।

मणिधर-संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।

मणिपद्म-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

मणिपुर-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार छः चक्रों में से तीसरा चक्र जो नाभि के पास माना जाता है। यह तेजोमय और विद्युत् के समान आभायुक्त, नीले रंग का, दस दलोंवाला और शिव का निवासस्थान माना जाता है। कहते हैं कि यदि इस पर ध्यान लगाया जा सके तो फिर सब विषयों का ज्ञान हो जाता है। यह भी कहते हैं कि इस पर "ड" से "फ" तक अक्षर लिखे हैं।

मणिपुष्पक-संज्ञा पुं० [सं०] सहदेव के शंख का नाम।

मणिबंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नवाक्षरी वृत्त जिसके प्रति चरण में भगण, मगण और सगण होते हैं। उ०—कंठमणी मध्ये सुजला। टूट परी खोजैं अबला।—भानु। (२) कलाई।

मणिबीज-संज्ञा पुं० [सं०] अनार का पेड़।

मणिभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक प्रधान गण का नाम।

मणिभद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन जाति का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है। (२) एक नाग का नाम।

मणिभू-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह खान जिसमें से रत्न आदि निकलते हों।

मणिभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह खान जिसमें से रत्न आदि निकलते हों। (२) पुराणानुसार हिमालय के एक तीर्थ का नाम।

मणिमध्य-संज्ञा पुं० [सं०] मणिबंध नामक छंद।

मणिमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बारह अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तगण, यगण, तगण, यगण होते हैं। उ०—छाँड़ो सब जेते हैं रे जगमाला। फेरो हरि के नामों की मणिमाला। (२) मणियों की माला। (३) लक्ष्मी। (४) चमक। आभा।

मणिमेघ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दक्षिण भारत के एक पर्वत का नाम।

मणिरत-संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध आचार्य्य का नाम ।

मणिरथ-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम ।

मणिराग-संज्ञा पुं० [सं०] हिंगुल । शिंगरफ ।

मणिरोग-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषेंद्रिय का एक रोग जिसमें लिंग के अगले भाग का चमड़ा उसके मस्तक पर चिपक जाता है और मूत्र मार्ग कुछ चौड़ा होकर उसमें से मूत्र की महीन धारा गिरती है ।

मणिशैल-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो मंदराचल के पूर्व में है ।

मणिश्याम-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रनील नामक मणि । नीलम ।

मणिसर-संज्ञा पुं० [सं०] मोतियों की माला ।

मणिस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम ।

मणी-संज्ञा पुं० [सं० मणिन्] सर्प ।
संज्ञा स्त्री० दे० "मणि" ।

मणीचक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रकांत नामक मणि । (२) पुराणानुसार शकद्वीप के एक वर्ष का नाम । (३) एक प्रकार का पक्षी ।

मणीवक-संज्ञा पुं० [सं०] पुष्प । फूल ।

मतंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी । (२) बादल । (३) एक दानव का नाम । (४) एक प्राचीन तीर्थ का नाम । (५) कामरूप के अग्निकोण के एक देश का प्राचीन नाम । (६) एक ऋषि का नाम जो शबरी के गुरु थे । महाभारत में लिखा है कि ये एक नापित के वीर्य्य से एक ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । उस ब्राह्मणी के पति ने इन्हें अपना ही पुत्र और ब्राह्मण समझकर पाला था । एक बार ये गधे के रथ पर सवार होकर पिता के लिये यज्ञ की सामग्री लाने जा रहे थे । उस समय इन्होंने गधे को बहुत निर्दयता से मारा था । इस पर उस गधे की माता गधी से इन्हें मालूम हुआ कि मैं ब्राह्मण की संतान नहीं हूँ, चांडाल के वीर्य्य से उत्पन्न हूँ । इन्होंने घर आकर पिता से सब समाचार कहे और ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिये घोर तपस्या करने लगे । तब इंद्र ने आकर समझाया कि ब्राह्मणत्व प्राप्त करना सहज नहीं है । उसके लिये लाखों वर्षों तक अनेक जन्म धारण करके तपस्या करनी पड़ती है । तब इन्होंने वर माँगा कि मुझे ऐसा पक्षी बना दीजिए जिसकी सभी वर्णवाले पूजा करें; मैं जहाँ चाहूँ, वहाँ जा सकूँ और मेरी कीर्त्ति अक्षय हो । इंद्र ने इन्हें यही वर दिया और ये छंदोदेव के नाम से प्रसिद्ध हुए । कुछ दिनों के उपरांत इन्होंने शरीर त्याग कर उत्तम गति प्राप्त की ।

मतंगा-संज्ञा पुं० [सं० मतंग] एक प्रकार का बाँस जिसे मूल भी कहते हैं । यह बंगाल और बरमा में बहुत होता है । इसके पोर लंबे और सुदृढ़ होते हैं । इसको दीमक नहीं खाती ।

मतंगी-संज्ञा पुं० [सं० मतंगिन्] हाथी का सवार । उ०—तिमि लच्छ मतंगी स्वच्छ भट सरी निखंगी अति भले ।—गोपाल ।

मत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निश्चित सिद्धांत । सम्मति । राय ।
मुहा०—* मत उपाना = सम्मति स्थिर करना । उ०—करुना लखि करुना-निधान ने मन यह मती उपायो ।
(२) धर्म । पंथ । मज़हब । संप्रदाय । (३) भाव । आशय । मतलब । (४) ज्ञान । (४) पूजा ।
वि० (१) जिसकी पूजा की गई हो । पूजित । (२) कुत्सित । खराब । बुरा ।
क्रि० वि० [सं० मा] निषेधवाचक शब्द । न । नहीं । जैसे,—(क) वहाँ मत जाया करो । (ख) इनसे मत बोलो ।

मतना*-क्रि० अ० [सं० मति + ना (प्रत्य०)] सम्मति निश्चित करना । राय कायम करना । उ०—बिनय करहिं जेते गढ़-पती । का जिउ कीन्ह कौन मति मती ।—जायसी ।
क्रि० अ० [सं० मत्त] नशे आदि में चूर होना । मत्त होना ।

मतरिया‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० माता] दे० "माता" या "माँ" ।
मुहा०—मतरिया बहिनिया करना = माँ बहन की गाली देना ।
* वि० [सं० मंत्र] (१) मंत्र देनेवाला । मंत्री । सलाहकार । (२) मंत्र से प्रभावित । मंत्रित ।

मतलब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) तात्पर्य । अभिप्राय । आशय । (२) अर्थ । मानी । (३) अपना हित । निज का लाभ । स्वार्थ ।
मुहा०—मतलब का यार = अपना भला देखनेवाला । स्वार्थी । मतलब गाँठना या निकालना = स्वार्थ साधन करना ।
(४) उद्देश्य । विचार । जैसे,—आप भी किसी मतलब से आए हैं ।
मुहा०—मतलब हो जाना = (१) सफल मनोरथ होना । (२) बुरा हाल हो जाना । (३) मर जाना ।
(५) संबंध । वास्ता । जैसे,—अब तुम उनसे कोई मतलब न रखना ।

मतलबिया†-वि० दे० "मतलबी" ।

मतलबी-वि० [अ० मतलब + ई (प्रत्य०)] जो केवल अपने हित का ध्यान रखता हो । स्वार्थी । खुदगरज ।

मतवार, मतवारा*-वि० दे० "मतवाला" ।

मतवाला-वि० पुं० [सं० मत्त + वाला (प्रत्य०)] [स्त्री० मतवाली] (१) नशे आदि के कारण मस्त । मदमस्त । नशे में चूर । (२) उन्मत्त । पागल । (३) जिसे अभिमान हो । व्यर्थ अहंकार करनेवाला ।
संज्ञा पुं० (१) वह भारी पत्थर जो किले या पहाड़ पर से

नीचे के शत्रुओं को मारने के लिये लुढ़काया जाता है। (२) कागज का बना हुआ एक प्रकार का गावदुमा खिलौना जिसके नीचे का भाग मिट्टी आदि भरी होने के कारण भारी होता है और जो फेंकने पर सदा खड़ा ही रहता है, जमीन पर लोटता नहीं।

मता†-संज्ञा पुं० दे० "मत"।
संज्ञा स्त्री० दे० "मति"।

मतानुज्ञा-संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय दर्शन के अनुसार २१ प्रकार के निग्रह स्थानों में से एक जिसमें अपने पक्ष के दोष पर विचार न करके बार बार विपक्षी के पक्ष के दोष का ही उल्लेख किया जाता है।

मतानुयायी-संज्ञा पुं० [सं०] किसी के मत के अनुसार आचरण करनेवाला। किसी के मत को माननेवाला। मतावलंबी।

मतारी†-संज्ञा स्त्री० दे० "महतारी"।

मतावलंबी-संज्ञा पुं० [सं० मतावलंबिन्] किसी एक मत, सिद्धांत या संप्रदाय आदि का अवलंबन करनेवाला। जैसे,—जैन-मतावलंबी।

मति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धि। समझ। अक्ल। (२) राय। सलाह। सम्मति। (३) इच्छा। ख्वाहिश। (४) स्मृति।
वि० बुद्धिमान्। चतुर।
छ† क्रि० वि० दे० "मत"।

मतिगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धिमान्। चतुर। होशियार।

मतिचित्र-संज्ञा पुं० [सं०] अश्वघोष का एक नाम।

मतिदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] वह शक्ति जिसके अनुसार दूसरे की योग्यता या भावों का पता लगता है।

मतिदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ज्योतिष्मती नाम की लता। (२) सेमल।

मतिभ्रंश-संज्ञा पुं० [सं०] उन्माद रोग। पागलपन।

मतिमंत-वि० [सं० मतिमत्] बुद्धिमान्। विचारवान्। चतुर।

मतिमान-वि० [सं०] बुद्धिमान्। विचारवान्।

मतिवंत-वि० दे० "मतिमंत"।

मती-संज्ञा स्त्री० दे० "मति"।
क्रि० वि० दे० "मति"।
† क्रि० वि० दे० "मत"।

मतीरा-संज्ञा पुं० [सं० मेट] तरबूज। कलींदा। उ०—(क) विषय वृषादित की तृषा जिये मतीरनि सोधि। अमित अपार अगाध जल मारौ मूँड़ पयोधि।—बिहारी। (ख) प्यासे दुपहर जेठ के थके सबै जल सोधि। मरु धर पाय मतीर-हू मारू कहत पयोधि।—बिहारी।

मतील-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाजा। उ०—मदनभेरि अरु घूँघरा घंटा घनैं मतील। मुहचंगी कौ आड़ि दै आवज लुटे छतील।—सूदन।

मतेईछ†-संज्ञा स्त्री० [सं० विमातृ मि० पं० मतरई = विमाता] माता की सपत्नी। विमाता। उ०—तुलसी सरल भाय रघुराय माय मानी काय मन बानी हू न जानिए मतेई है। वाम विधि मेरो सुख सिरस सुमन समता को छल छुरी को कुलिस लै टेई है।—तुलसी।

मत्कुण-संज्ञा पुं० [सं०] खटमल।

मत्त-वि० [सं०] (१) मस्त। (२) मतवाला। (३) उन्मत्त। पागल। (४) प्रसन्न। खुश।
संज्ञा पुं० (१) वह हाथी जिसके मस्तक से मद बहता हो। मतवाला हाथी। (२) धतूरा। (३) कोयल।
*† संज्ञा स्त्री० [सं० मात्रा] मात्रा।

मत्तकाशिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम स्त्री। अच्छी औरत। उ०—श्यामा महिला भामिनी मत्तकाशिनी जान।—नंददास।

मत्तकीश-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

मत्तगयंद-संज्ञा पुं० [सं०] सवैया छंद का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में ७ भगण और २ गुरु होते हैं। इसे 'मालती' और 'इंदव' भी कहते हैं।

मत्तता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मत्त होने का भाव। मतवाला-पन। मस्ती। उ०—सौभाग्य-मद की मत्तता धीरे धीरे उनकी नस नस में सनसन करती हुई चढ़ने लगी।—सरस्वती।

मत्तताई*-संज्ञा स्त्री० [हिं० मत्तता + ई] मतवालापन। मस्ती। उ०—आप बलदेव सदा बरुणी सों मत्त रहे, चाहे मन मान्यो प्रेम मत्तताई चाखिये।—प्रियादास।

मत्तमयूर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंद्रह अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, तगण, यगण, सगण और मगण होते हैं। (ऽऽऽ, ऽऽ।, ।ऽऽ, ।।ऽ, ऽऽऽ) इसका दूसरा नाम माया भी है। उ०—कोऊ बोली ता कहँ लै आव सयानी। माया या पै डार दई री हम जानी। (२) मेघ को देखकर उन्मत्त होनेवाला, मोर।

मत्तमयूरक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक योद्धा जाति का नाम।

मत्तमातंगलीलाकर-संज्ञा पुं० [सं०] एक दंडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ९ रगण होते हैं। जैसे,—सच्चिदानंद अनंद के कंद को छाँड़ि कै रे मतीमंद भूलो फिरै ना कहूँ।

विशेष—९ से अधिक रगणवाले दंडक भी इसी नाम से पुकारे जाते हैं। केशवदास ने ८ ही रगण के छंद का नाम मत्त-मातंगलीलाकर लिखा है। जैसे,—मेघ मंदाकिनी चारु सौदामिनी रूप रूरे लसैं देह धारी मनो।

मत्तवारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकान के आगे का दालान या बरामदा। (२) आँगन के ऊपर की छत। (३) मतवाला हाथी।

मत्तसमक-संज्ञा पुं० [सं०] चौपाई छंद का एक भेद जिसमें नवीं मात्रा अवश्य लघु होती है।

मत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बारह अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, भगण, सगण और एक गुरु होता है और ४, ६ पर यति होती है। जैसे,—मत्ता है कै हरि रस सानी। धावै बंसी सुनत सयानी। (२) मदिरा। शराब।

प्रत्य० भाववाचक प्रत्यय। पन। (इसका प्रयोग शब्दों को भाववाचक बनाने में उसके अंत में होता है। जैसे,—बुद्धिमत्ता। नीतिमत्ता।)

*† संज्ञा स्त्री० दे० "मात्रा"।

मत्ताक्रीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तेईस अक्षरों का एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दो मगण, एक तगण, चार नगण और अंत में एक लघु और एक गुरु अक्षर होता है। जैसे,—यों रानी माधो की बानी सुनि कह कस तिय असत कहत री।

मत्था†-संज्ञा पुं० [सं० मस्तक] (१) ललाट। भाल। माथा। (२) सिर। मूँड़।

मुहा०—मत्था टेकना = प्रणाम करना। सिर झुकाकर अभिवादन करना। मत्था मारना = सिर-पच्ची करना। सिर खपाना।

(३) किसी पदार्थ का अगला या ऊपरी भाग।

मत्स-संज्ञा पुं० दे० "मत्स्य"।

मत्सर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी का सुख या विभव न देख सकना। डाह। हसद। जलन। (२) क्रोध। गुस्सा।

वि० (१) जो दूसरे की सुख संपत्ति देखकर जलता हो। डाह करनेवाला (२) कृपण। कंजूस। (३) जो सबको अपनी निंदा करते देखकर अपने आपको धिक्कारता हो।

मत्सरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मत्सरयुक्त होने का भाव। डाह। हसद।

मत्सरी-संज्ञा पुं० [सं० मत्सरिन्] वह जो दूसरों से मत्सर रखता हो। मत्सरपूर्ण व्यक्ति।

मत्सरीकृता-संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक मूर्च्छना का नाम। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—म, प, ध, नि, स, रे, ग। ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि।

मत्स्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मछली। (२) प्राचीन विराट देश का नाम।

विशेष—कुछ लोगों का मत है कि वर्त्तमान दीनाजपुर और रंगपुर ही प्राचीन काल का मत्स्य देश है; और कुछ लोग इसे प्राचीन पांचाल के अंतर्गत मानते हैं।

(३) छप्पय छंद के २३ वें भेद का नाम। (४) नारायण। (५) बारहवीं राशि। मीन राशि। (६) अठारह पुराणों में से एक जो महापुराण माना जाता है। कहते हैं कि जब विष्णु भगवान् ने मत्स्य अवतार धारण किया था, तब यह पुराण कहा था। (७) विष्णु के दस अवतारों में से पहला अवतार। कहते हैं कि यह अवतार सतयुग में हुआ था। इसका नीचे का अंग रोहू मछली के समान, ऊपर का अंग मनुष्य के समान और रंग श्याम था। इसके सिर पर सींग थे, चार हाथ थे, छाती पर लक्ष्मी थीं और सारे शरीर में कमल के चिह्न थे।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि प्राचीन काल में विवस्वान् के पुत्र वैवस्वत मनु एक बहुत ही प्रसिद्ध और बड़े तपस्वी थे। एक बार एक छोटी मछली ने आकर उनसे कहा कि मुझे बड़ी बड़ी मछलियाँ बहुत सताती हैं; आप उनसे मेरी रक्षा कीजिए। मनु ने उसे एक घड़े में रख दिया और वह दिन दिन बढ़ने लगी। जब वह बहुत बढ़ गई, तब मनु ने उसे एक कूएँ में छोड़ दिया। जब वह और बड़ी हुई, तब उन्होंने उसे गंगा में छोड़ा; और अंत में उसे वहाँ से भी निकालकर समुद्र में छोड़ दिया। समुद्र में पहुँचते ही उस मछली ने हँसते हुए कहा कि शीघ्र ही प्रलय काल आनेवाला है। इसलिये आप एक अच्छी और दृढ़ नाव बनवा लीजिए और सप्तर्षियों सहित उसी पर सवार हो जाइए। सब चीजों के बीज भी अपने पास रख लीजिएगा; और उसी नाव पर मेरी प्रतीक्षा कीजिएगा। वैवस्वत मनु ने ऐसा ही किया। जब प्रलय काल आया और सारा संसार जल-मग्न हो गया, तब वह विशाल मछली उन्हें दिखाई दी। उन्होंने अपनी नाव उस मछली के सींग से बाँध दी। कुछ दिनों बाद वह मछली उस नाव को खींचकर हिमालय के सब से ऊँचे शिखर पर ले गई। वहाँ वैवस्तव मनु और सप्तर्षियों ने उस मछली के कहने से अपनी नाव उस शिखर में बाँध दी। इसी लिये वह शिखर अब तक नौबंधन कहलाता है। उस समय उस मछली ने कहा कि मैं स्वयं प्रजापति ब्रह्मा हूँ। मैंने तुम लोगों की रक्षा करने और संसार की फिर से सृष्टि करने के लिये मत्स्य का अवतार धारण किया है। अब यही मनु फिर से सारे संसार की सृष्टि करेंगे। यह कहकर वह मछली वहीं अंतर्धान हो गई। मत्स्य पुराण में लिखा है कि प्राचीन काल में मनु नामक एक राजा ने घोर तपस्या करके ब्रह्मा से वर पाया था कि जब महाप्रलय हो, तब मैं ही फिर से सारी सृष्टि की रचना करूँ। और तब प्रलय काल आने से कुछ पहले विष्णु उक्त प्रकार से मछली का रूप धरकर उनके पास आए थे। इसी प्रकार भागवत आदि पुराणों में भी इससे मिलती जुलती अथवा भिन्न कई कथाएँ पाई जाती हैं।

(८) पुराणानुसार सुनहले रंग की एक प्रकार की शिला जिसका पूजन करने से मुक्ति होती है।

मत्स्यगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जलपीपल । (२) व्यास की माता सत्यवती का एक नाम । वि० दे० "व्यास" ।

मत्स्यजीवी-संज्ञा पुं० [सं० मत्स्यजीविन्] निषाद जाति का एक नाम ।

मत्स्यद्वादशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अगहन सुदी द्वादशी ।

मत्स्यद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम ।

मत्स्यनाथ-संज्ञा पुं० दे० "मत्स्येंद्रनाथ" ।

मत्स्यनाशक- संज्ञा पुं० [सं०] कुरर पक्षी ।

मत्स्यनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच प्रकार की सीमाओं में से वह सीमा जो नदी या जलाशय आदि के द्वारा निर्धारित होती है ।

मत्स्यपुराण-संज्ञा पुं० दे० "मत्स्य" (६) ।

मत्स्यबंध-संज्ञा पुं० [सं०] धीवर । मल्लाह ।

मत्स्यबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] मछली पकड़ने की वंशी ।

मत्स्यमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक मुद्रा जो सभी पूजाओं में आवश्यक होती है । इसमें दाहिने हाथ के पिछले भाग पर बाएँ हाथ की हथेली रखकर अँगूठा हिलाते हैं । यह मुद्रा अभीष्ट सिद्ध करनेवाली मानी जाती है । इसे कूर्म्म मुद्रा भी कहते हैं ।

मत्स्यराज- संज्ञा पुं० [सं०] रोहू मछली ।

मत्स्याक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] सोम लता ।

मत्स्याक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोमलता । (२) ब्राह्मी बूटी । (३) गाडर दूब ।

मत्स्यायिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जलपीपल । (२) दे० "मत्स्याक्षी" ।

मत्स्यावतार-संज्ञा पुं० दे० "मत्स्य" (७) ।

मत्स्यासन-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार योग का एक आसन ।

मत्स्यासुर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक असुर का नाम ।

मत्स्येंद्रनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध साधु और हठ योगी जो गोरखनाथ के गुरु थे । नेपाल में ये पद्मपाणि नामक बोधिसत्व के अवतार माने जाते हैं ।

मत्स्योदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास जी की माता सत्यवती का एक नाम । मत्स्यगंधा ।

मत्स्योपजीवी-संज्ञा पुं० [सं० मत्स्योपजीविन्] धीवर । मल्लाह ।

मथन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मथने का भाव या क्रिया । बिलोना । (२) एक अस्त्र का नाम । (३) गनियारी नामक वृक्ष ।
वि० मारनेवाला । नाशक । उ०—मधुकैटभ-मथन मुर भौम केशी भिदन कंस कुल काल अनुसाल हारी । जानि युग जूप में भूप तद्रूपता में बहुरि करिहै कलुष भूमिभारी ।—सूर ।

मथना-क्रि० स० [सं० मथन वा मंथन] (१) किसी तरल पदार्थ को लकड़ी आदि से वेगपूर्वक हिलाना वा चलाना । बिलोना । रिढ़कना । जैसे,—दही मथना, समुद्र मथना इत्यादि । उ०—(क) का भा जोग कहानी कथें । निकसै घीव न बिनु दधि मथें ।—जायसी । (ख) दत्तात्रेय मर्म नहिं जाना मिथ्या स्वाद भुलाना । सलिला मथि कै घृत को काढेउ ताहि समाधि समाना ।—कबीर । (ग) मुदिता मथइ बिचार मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ।—तुलसी । (घ) ज्ञान कथा को मथि मन देखो ऊधो बहु धौपी । टरति घरी छिन एक न अँखिया श्याम रूप रोपी ।—सूर ।
क्रि० स०—डालना ।—देना ।—लेना ।
(२) चलाकर मिलाना । गति देकर एक में मिलाना । उ०—मथि मृग मलय कपूर सबन के तिलक किये । कर मणि माला पहिराए सबन विचित्र ठए ।—सूर । (३) न्यस्त व्यस्त करना । नष्ट करना । ध्वंस करना । उ०—(क) सेन सहित तब मान मथि बन उजारि पुर जारि । कस रे सठ हनुमान कपि गयेउ जो तव सुत मारि ।—तुलसी । (ख) अघ वक शकट प्रलंब हनि मारेउ गज चाणूर । धनुष भंजि दृढ़ दौरि पुनि कंस मथे मदमूर ।—केशव । (४) घूम घूमकर पता लगाना । बार बार श्रमपूर्वक ढूँढ़ना । पता लगाना । जैसे—तुम्हारे लिये सारा शहर मथ डाला गया, पर कहीं तुम्हारा पता न लगा । (५) बार बार किसी क्रिया का करना । किसी कार्य्य को बहुत अधिक बार करना ।
संज्ञा पुं० मथानी । रई । उ०—आजु गई हौं नंदभवन में कहा करौं दधि चैनु री । बहु अंग चतुरंग छल मों कोटिक दुहियतु धेनु री । घूमि रहे जित तित दधि मथना सुनत मेघ ध्वनि लाजै री । बरनौं कहा सदन की सोभा बैकुंठहु ते राजै री ।—सूर ।

मथनियाँ*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मथानी] वह मटका जिसमें दही मथा जाता है । उ०—दही दहेंड़ी ढिग धरी भरी मथनियाँ बारि । कर फेरति उलटी रई नई बिलोवनिहारि ।—बिहारी ।

मथनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मथना] (१) वह मटका जिसमें दही मथा जाता है । मथनियाँ । उ०—(क) दूध दही के भोजन चाटे नेकहु लाज न आई । माखन चोरि फोरि मथनी को पीवत छाछ पराई ।—सूर । (ख) डारे कहूँ मथनि बिसारे कहूँ घी को घड़ा बिकल बगारे कहूँ माखन मठा मही । (२) दे० "मथानी" । (३) मथने की क्रिया ।

मथवाह-संज्ञा पुं० [हिं० माथा + वाह (प्रत्य०)] हाथी के सिर पर बैठकर उसे हाँकनेवाला पुरुष । महावत । उ०—दिष्टि तरारि हीयरे आगे । जनु मथवाह रहै सिर लागै ।—जायसी ।

मथानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मथना] काठ का बना हुआ एक प्रकार का दंड जिससे दही से मथकर मक्खन निकाला जाता है । इसके दो भाग होते हैं—एक खोरिया वा सिरा और दूसरा डंडी । खोरिया प्रायः गोल, चिप[illegible] और एक ओर सम तथा

दूसरी ओर उन्नतोदर होती है। इसके किनारे पर कटाव होता है और जिस ओर समतल रहता है, उधर बीच में डेढ़ दो हाथ लंबी डंडी जड़ी रहती है। मथते समय खुरिया दही के भीतर डालकर डंडी को खंभे की चूल में लपेटकर रस्सी से केवल हाथों से बट बटकर घुमाते हैं जिससे दही क्षुब्ध हो जाता है और थोड़ा सा पानी डालने पर और मथने से नैनू वा मक्खन मट्ठे के ऊपर उतरा आता है, जिसे मथानी से समेटकर अलग इकट्ठा करते हैं। रई। बिलोनी। महनी। खैलर। उ०—को अस साज देइ मोहिं आनी। बासुकि दाम सुमेरु मथानी।—जायसी।

पर्य्या०—मंथान। मंथ। वैशाख। मथा। मंथन। तक्राद्। भक्राद्।

मुहा०—मथानी पड़ना या बहना = खलबली मचना। उ०—गढ़ ग्वालियर महँ वही मथानी। औ कंधार मथा भै पानी।—जायसी।

मथित-वि० [सं०] (१) मथा हुआ। (२) घोलकर भली भाँति मिलाया हुआ। आलोड़ित।

मथी-वि० [सं० मथिन्] [स्त्री० मथिनी] मथनेवाला।
संज्ञा पुं० मथानी।

मथुरा-संज्ञा स्त्री० [सं० मधुपुर = मधुरा] पुराणानुसार सात पुरियों में से एक पुरी का नाम। यह ब्रज में यमुना के दाहिने किनारे पर है। रामायण (उत्तर कांड) के अनुसार इसे मधु नामक दैत्य ने बसाया था जिसके पुत्र बाणासुर को पराजित कर शत्रुघ्न ने इसको विजय किया था। पाली भाषा के ग्रंथों में इसे मथुरा लिखा है। महाभारत काल में यहाँ शूरसेन वंशियों का राज्य था और इसी वंश की एक शाखा में भगवान् श्रीकृष्णचंद्र का यहाँ जन्म हुआ था। शूरसेन वंशियों के राज्य के अनंतर अशोक के समय में उनके आचार्य्य उपगुप्त ने इसे बौद्ध धर्म का केंद्र बनाया था। यह जैनों का भी तीर्थस्थान है। उनके उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ का यह जन्म स्थान है। मौर्य्य साम्राज्य के अनंतर यह स्थान अनेक यूनानी, पारसी और शक क्षत्रपों के अधिकार में रहा। महमूद गजनवी ने सन् १०१७ में आक्रमण कर इस नगर को न्यस्त व्यस्त कर डाला था। अन्य मुसलमान बादशाहों ने भी इस पर समय समय पर आक्रमण कर इसे तहस नहस किया था। यहाँ हिंदुओं के अनेक मंदिर हैं और अनेक कृष्णोपासक वैष्णव संप्रदाय के आचार्यों का यह केंद्र है। ·णानुसार यह मोक्षदायिनी पुरी है।

मथुरिया-वि० [हिं० मथुरा + इया (प्रत्य०)] मथुरा से संबंध रखनेवाला। मथुरा का। जैसे—मथुरिया पंडे। उ०—जो पै अलि अंत इहै करिबैहो। तो अतुलित अहीर अबलन को हठिन हिये हरिबैहो। जो प्रपंच परिणाम प्रेम फिरि अनुचित आचारिबैहो। तौ मथुरही महा महिमा लहि सकल ढरनि ढरिबैहो।—तुलसी।

मथौरा-संज्ञा पुं० [हिं० मथना] एक प्रकार का भद्दा रंदा जिससे बढ़ई लकड़ी को खरादने के पहले छीलकर सीधा करते हैं। उ०—झाड़ दुसाखे झाम बसूल बरमा रु हथौरा। टाँकी नहनी घनी अरा आरी सु मथौरा।—सूदन।

मथौरी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० माथा + औरी (प्रत्य०)] एक आभूषण का नाम जिसे स्त्रियाँ सिर में पहनती हैं। यह अर्द्ध चंद्राकार होता है जिसमें कई लटकन लगे रहते हैं। यह जंजीर वा धागे से बाँधा जाता है। चंद्रिका। चंदक।

मथ्थ†-संज्ञा पुं० दे० "माथा" उ०—भटक्कैं पटक्कैं कटक्कैं सुमथ्थं। सटक्कैं चलावैं अटक्कैं न तथ्थं।—सूदन।

मदंग-संज्ञा पुं० [सं० मृदंग] एक प्रकार का बाँस जो बरमा, आसाम, छोटा नागपुर आदि में होता है। यह खोखला और मोटा होता है। इससे चटाई, घड़नई आदि बनाई जाती है और फलटे चीरकर मकान छाए जाते हैं। इसके पोर में लोग चावल पकाते और चीजें भरकर रखते हैं।

मदंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] विकृत धैवत की चार श्रुतियों में से दूसरी श्रुति का नाम।

मदंध*-वि० दे० "मदांध"।

मद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हर्ष। आनंद। (२) वह गंधयुक्त द्राव जो मतवाले हाथियों की कनपटियों से बहता है। दान। (३) वीर्य्य। (४) कस्तूरी। (५) मद्य। (६) चित्त का वह उद्वेग वा उमंग जो मादक पदार्थ के सेवन से होती है। मतवालापन। नशा। (७) उन्मत्तता। पागलपन। विक्षिप्तता। उ०—सत्यवती मछोदरी नारी। गंगातट ठाढ़ी सुकुमारी। पाराशर ऋषि तहँ चलि आए। विवश होइ तिनके महँ धाए।—सूर। (८) गर्व। अहंकार घमंड। (९) अज्ञान। मतिविभ्रम। प्रमाद। (१०) एक रोग का नाम। उन्माद नामक रोग। (११) एक दानव का नाम। (१२) कामदेव। मदन।

मुहा०—मद पर आना = (१) उमंग पर आना। (२) कामोन्मत्त होना। गरमाना। (३) युवा होना।

वि० मत्त। उ०—मद गजराज द्वार पर ठाढ़ो हरि कहेउ नेक बचाय। उन नहिं मान्यो संमुख आयो पकरेउ पूँछ फिराय।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लम्बी लकीर जिसके नीचे लेखा लिखा जाता है। खाता। (२) कार्य्य वा कार्य्यालय का विभाग। सीगा। सरिश्ता। (३) खाता। जैसे—इस मद में सौ रुपए खर्च हुए हैं। (४) शीर्षक। अधिकार। (५) ऊँची लहर। ज्वार।

मदक-संज्ञा स्त्री० [हिं० मद + क (प्रत्य०)] एक प्रकार का मादक

पदार्थ जो अफीम के सत में बारीक कतरा हुआ पान पकाने से बनता है। पीनेवाले इसकी छोटी छोटी गोलियों को चिलम पर रखकर तमाखू की भाँति पीते हैं।

यौ०—मदकची या मदकबाज=मदक पीनेवाला।

मदकची-वि० [हिं० मदक + ची (प्रत्य०)] जो मदक पीता हो। मदक पीनेवाला।

मदकट-संज्ञा पुं० [सं०] साँड़।

मदकद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

मदकर-वि० [सं०] मदवर्द्धक। मदकारक। जिससे मद उत्पन्न हो। संज्ञा पुं० धतूरा।

मदकल-वि० [सं०] (१) मत्त। मतवाला। (२) बावला। पागल।

मदकी-वि० [हिं० मदक + ई (प्रत्य०)] मदक पीनेवाला। मदकची।

मदकृत्-वि० [सं०] उन्मादजनक। मादक।

मदकोहल-संज्ञा पुं० [सं०] साँड़।

मदखूला-संज्ञा स्त्री० [अ०] वह स्त्री जिसे कोई बिना विवाह किए ही रख ले वा घर में डाल ले। गृहीता। रखनी। सुरैतिन।

मदगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छितवन। (२) मद्य।

मदगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मदिरा। शराब। (२) अतसी। अलसी।

मदगमन-संज्ञा पुं० [सं०] महिष। भैंसा।

मदगल-वि० [सं० मदकल] मत्त। मस्त। उ०—साहिके सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा मदगल अफजलै पंजा बल पटक्यो।—भूषण।

मदघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पोय। पूतिका।

मदच्युत-वि० [सं०] गर्वनाशक।

मदजल-संज्ञा पुं० [सं०] मत्त हाथी के मस्तक का स्राव। हाथी का मद। दान।

मदद-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सहायता। सहारा। उ०—पहलवान सो बखाने बली। मदद मीर हमजा औ अली।—जायसी।

यौ०—मदद खर्च। मददगार।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

मुहा०—मदद पहुँचना = कुमक पहुँचना। सहायता मिलना।

(२) मजदूर और राज आदि जो किसी काम के ऊपर लगाए जाते हैं। साथ काम करनेवालों का समूह।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—मदद बाँटना=काम पर लगे हुए मजदूरों को मजदूरी बाँटना वा देना। दैनिक मजदूरी चुकाना।

मददखर्च-संज्ञा स्त्री० [अ० मदद + फा० खर्च] (१) वह धन जो किसी को सहायतार्थ दिया जाय। (२) वह धन जो किसी काम करने के लिये काम करनेवालों को अगाऊ दिया जाय। पेशगी।

मददगार-वि० [फ़ा०] सहायता देनेवाला। मदद करनेवाला। सहायक।

मदधार-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम।

मदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव (२) काम क्रीड़ा। (३) कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का आलिंगन जिसमें नायक अपना एक हाथ नायिका के गले में डालकर और दूसरा हाथ मध्यदेश में लगाकर उसका आलिंगन करता है। (४) मैनफल नामक वृक्ष और उसका फल। (५) धतूरा। (६) खैर। (७) मौलसिरी। (८) भ्रमर। (९) मोम। (१०) अखरोट का वृक्ष। (११) महादेव के चार प्रधान अवतारों में से तीसरे अवतार का नाम। (१२) मैना पक्षी। सारिका। (१३) ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जन्म से सप्तम गृह का नाम। (१४) एक प्रकार का गीत। (१५) प्रेम। (१६) रूपमाल छंद का दूसरा नाम। (१७) छप्पय के एक भेद का नाम। (१८) खंजन पक्षी।

मदनकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] सात्विक रोमांच।

मदनक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मदन वृक्ष। मैनफल। (२) दौना। (३) मोम। (४) खैर। (५) मौलसिरी। (६) धतूरा।

मदनगृह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) योनि। भग। (२) फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली में सप्तम स्थान। (३) मदन हर छंद का दूसार नाम।

मदनगोपाल-संज्ञा पुं० [हिं० मदन + गोपाल] श्रीकृष्णचंद्र का एक नाम। उ०—जसुदा मदनगोपाल सुवावै। देखि स्वपन गत त्रिभुवन कंप्यो ईश बिरंचि भ्रमावै।—सूर।

मदन चतुर्दशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र मास की शुक्ल चतुर्दशी का नाम। यह मदन महोत्सव के अंतर्गत है।

मदनताल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताल जिसमें पहले दो द्रुत और अंत में दीर्घ मात्रा होती है। (संगीत)

मदनत्रयोदशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र की शुक्ल त्रयोदशी का नाम। यह मदन महोत्सव के अंतर्गत है।

मदनदमन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

मदनदिवस-संज्ञा पुं० [सं०] मदनोत्सव का दिन।

मदनदोला-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र ताल के छः भेदों में से एक का नाम। (संगीत)

मदनद्वादशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ल द्वादशी का नाम। प्राचीन काल में इस दिन मदनोत्सव प्रारंभ होता था। पुराणों में इस दिन व्रत का विधान है।

मदननालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिस का विश्वास न हो। भ्रष्टा स्त्री। दुश्चरित्रा स्त्री।

मदनपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) विष्णु।

मदनपाठक-संज्ञा पुं० [सं०] कोकिला। कोयल।

मदनफल-संज्ञा पुं० [सं०] मैनफल। मयनी।

मदनबान-संज्ञा पुं० [हिं० मदन + बाण] एक प्रकार का बेला जिसकी कलियाँ लंबी तथा दल एकहरे और नुकीले होते हैं। यह वर्षा में फूलता है और इसकी गंध बहुत अच्छी पर तीव्र होती है।

मदनभवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) योनि। भग। (२) फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म-कुंडली में जन्म से सप्तम स्थान।

मदनमनोरमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] केशवदास के मतानुसार सवैया के एक भेद का नाम जिसे दुर्मिल भी कहते हैं।

मदनमनोहर-संज्ञा पुं० [सं०] दंडक के एक भेद का नाम जिसे मनहर भी कहते हैं।

मदनमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका वृत्ति का एक नाम।

मदनमस्त-संज्ञा पुं० [हिं० मदन + मस्त] (१) जंगली सूरन का सुखाया हुआ टुकड़ा जिसका प्रयोग औषध में होता है। (२) चंपे की जाति का एक प्रकार का फूल जिसकी गंध कटहल से मिलती जुलती पर बहुत उग्र तथा प्रिय होती है।

मदन महोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक उत्सव जो चैत्र शुक्ल द्वादशी से चतुर्दशी पर्य्यंत होता था। इस उत्सव में व्रत, कामदेव की पूजा, गीत-वाद्य और रात्रि जागरण आदि होते थे। इस उत्सव में स्त्री पुरुष दोनों सम्मिलित होते थे और उद्यान आदि में अमोद प्रमोद करते थे।

मदनमोदक-संज्ञा पुं० [सं०] केशव के मतानुसार सवैया छंद के एक भेद का नाम जिसे सुंदरी भी कहते हैं।

मदनमोहन-संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णचंद्र का एक नाम। उ०—जो मोहिं कृपा करी सोई जो हौं तो आयो माँगन। यशुमति सुत अपने पाइन जब खेलत आवै आँगन। जब तुम मदनमोहन करि टेरो इहि सुनि कै घर जाऊँ। हौं तो तेरो घर को ढाढ़ी सूर दास भट नाऊँ।—सूर।

मदनललिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णिक वृत्ति का नाम। इस वृत्ति के प्रति चरण में सोलह वर्ण होते हैं। पहले मगण फिर भगण, नगण, मगण, नगण और अंत में गुरु होता है। उ०—माँग्यो जी दान निज पति ह्वै दासी चरण की।

मदनलेख-संज्ञा पुं० [सं०] प्रेमी और प्रेमिका के पारस्परिक प्रेम-पत्र।

मदनशलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मैना। (२) कोकिला। कोयल।

मदनसदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भग। योनि। (२) फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म-कुंडली के सप्तम स्थान का नाम।

मदनसारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

मदनहर-संज्ञा पुं० दे० "मदनहरा"।

मदनहरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चालीस मात्राओं के एक छंद का नाम। छंद प्रभाकर में इसे मनहर लिखा है और दस, आठ, चौदह और आठ पर यति तथा आदि की दो मात्राओं का लघु और अंत की मात्रा का ह्रस्व होना लिखा है। उदा०—सँग सीय लक्ष्मण, श्री रघुनंदन, मातन के शुभ पाइय रे सब दुःख हरे। इसे मदनगृह भी कहते हैं। इसके यति और आदि की लघु मात्रा के नियम को कोई कोई कवि नहीं मानते। जैसे—सादल नजीब, महमूद आकृवत, जैता गूजर सहित देख जुद्ध पढ़े।—सूदन।

मदनांकुश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुरुष की इंद्रिय। लिंग। (२) नक्षखत।

मदनांतक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

मदनांध-वि० [सं०] कामांध।

मदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैना। सारिका।

मदनाग्रक-संज्ञा पुं० [सं०] कोदव। कोदों।

मदनायुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव का अस्त्र। (२) भग। (३) एक शस्त्र का नाम।

मदनारि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

मदनालय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भग। योनि। (२) फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म कुंडली में के सप्तम स्थान का नाम।

मदनावस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कामुकों की विरहावस्था। (२) काम-क्रीड़ा की दशा।

मदनास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मदनायुध। (२) एक अस्त्र का नाम।

मदनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुरा। वारुणी। (२) कस्तूरी (३) मेथी (४) अतिपुष्प नाम का फूल। (५) धाय का पेड़। धौ।

मदनीयहेतु-संज्ञा पुं० [सं०] धातकी। धाय का पेड़। धौ।

मदनेच्छाफल-संज्ञा पुं० [सं०] कलमी आम का पेड़। बद्दरसाल।

मदनोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] मदनमहोत्सव।

मदनोत्सवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की वेश्या। अप्सरा।

मदप्रयोग-संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों का मद बहना।

मदभंजिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतमूली।

मदयंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका।

मदयंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका।

मदयिलु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्य। शराब। (२) कामदेव। (३) कलवार। (४) मेघ।

मदर*-संज्ञा पुं० [सं० मंडल] मँडराना। घेरना। आक्रमण। उ०—व्रज पर मदर करत है कामं। कहियो पथिक जाइ श्याम सों राखहिं आइ आपनो धाम—सूर।

मदरसा-संज्ञा पुं० [अ०] पाठशाला। विद्यालय।

मदरास-संज्ञा पुं० भारतवर्ष के अंतर्गत एक प्रांत का नाम जो अपने प्रधान नगर के नाम से प्रख्यात है। यह

प्रदेश दक्षिण प्रांत में पूर्व समुद्र के किनारे उड़ीसा से कुमारी अन्तरीप तक फैला हुआ है। यहाँ द्रविड़ और तैलंग लोग रहते हैं। इस प्रांत की राजधानी समुद्र के किनारे है और उसका भी यही नाम है।

मदलेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णिक वृत्ति का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात सात वर्ण होते हैं, जिनमें पहले मगण फिर सगण और अंत में गुरु होता है। उ०—मोसी गोप किशोरी। पैहो ना हरि जोरी।

मदविक्षिप्त-वि० [सं०] मद से पागल। मदमत्त।
संज्ञा पुं० मतवाला हाथी।

मदशाक-संज्ञा पुं० [सं०] पोई। पोय।

मदसार-संज्ञा पुं० [सं०] शहतूत का पेड़।

मदहेतु-संज्ञा पुं० [सं०] धातकी। धाय या पेड़।

मदांतक-संज्ञा पुं० [सं०] मदात्यय नामक रोग।

मदांध-वि० [सं०] जिसे मस्ती, गर्व आदि के कारण भले बुरे का कुछ ज्ञान न हो। मदमत्त। मदोन्मत्त। मद से अंधा।

मदाख़िलत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बाँध। रोक। रुकावट।
(२) प्रवेश। अधिकार।
यौ०—मदाखिलत बेजा।

मदाख़िलत बेजा-संज्ञा स्त्री० [अ० मदाखिलत+फ़ा० बेजा] (१) किसी ऐसे स्थान में प्रवेश करना जहाँ वैसा करने का अधिकार प्राप्त न हो। अनधिकार प्रवेश। (२) किसी ऐसे कार्य्य में हस्तक्षेप करना जिसमें वैसा करने का अधिकार न हो। अनुचित हस्तक्षेप।

मदाढ्य-संज्ञा पुं० [सं०] ताल का वृक्ष। ताड़।

मदात्यय-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग का नाम जो लगातार अत्यंत मद्यपान करने से होता है। इस रोग में रोगी को चक्कर आता है, नींद नहीं आती, अरुचि होती है, प्यास लगती है, हाथ-पैर में जलन होती है और वे ढीले पड़ जाते हैं, तंद्रा आती है और अपच हो जाता है। कभी कभी ज्वर भी आता है और रोगी बहुत प्रलाप करता है।
पर्य्या०—मदांतक। मदव्याधि। मद।

मदाध-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

मदार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हस्ती। हाथी। (२) धूर्त। चालबाज। (३) शूकर। सूअर। (४) एक गंध द्रव्य का नाम। कामुक।
संज्ञा पुं० [सं० मंदार] आक।
यौ०—मदारगदा।
संज्ञा पुं० दे० "मदारी"।

मदारगदा-संज्ञा पुं० [हिं० मदार+गदा ?] धूप में सुखाया हुआ मदार का दूध जो प्रायः औषध आदि में डाला जाता है।

मदारिया-संज्ञा पुं० दे० "मदारी"।

मदारी-संज्ञा पुं० [अ० मदार] (१) एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो बंदर, भालू आदि नचाते और लाग के तमाशे दिखाते हैं। ये लोग शाह मदार के अनुयायी होते हैं। मदारिया। कलंदर।
विशेष—शाह मदार का जन्म १०५० ईसवी में एक यहूदी के के घर हुआ था और यह स्वयं इस्लाम धर्म में दीक्षित हुए थे। यह फरुखाबाद में रहते थे और सुलतान शरकी के समय में कानपुर आए थे। उस समय कानपुर में 'मकनदेव' नामक जिन्न रहता था। शाह मदार उस जिन्न को वहाँ से निकालकर वहाँ रहने लगे। इसी से उस स्थान का नाम मकनपुर पड़ा। शाह मदार के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह चार सौ वर्ष जीते रहे और सन् १४३३ में मरे थे। शाह मदार की समाधि मकनपुर में सुलतान इब्राहीम ने बनवाई थी। मुसलमान इन्हें जिंदा शाह कहते हैं और अब तक जीवित मानते हैं। शाह मदार का पूरा नाम बदीउद्दीन था।
(२) बाजीगर। तमाशा करनेवाला। (३) बंदर आदि नचानेवाला।

मदालसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार विश्वावसु गंधर्व की कन्या का नाम जिसे वज्रकेतु के पुत्र पातालकेतु दानव ने उठा ले जाकर पाताल में रखा था। राजा शत्रुजित् के पुत्र ऋतुध्वज यज्ञ-रथार्थ गालव जी के आश्रम में रहते थे। एक दिन शूकर रूपधारी पातालकेतु के अधिक उपद्रव करने पर इन्होंने उसका पीछा किया और उसे मारकर पाताल में गए। वहाँ उन्हें मदालसा मिली जिससे उन्होंने ने विवाह किया। थोड़े दिनों बाद जब ऋतुध्वज अपने पिता की आज्ञा से पृथिवी पर्यटन करने निकले, तब उन्हें पातालकेतु का भाई तालकेतु मिला जो मुनि का रूप धारण कर तप कर रहा था। तालकेतु ने ऋतुध्वज से कहा कि मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, पर दक्षिणा देने के लिये मेरे पास द्रव्य नहीं है। यदि आप अपना हार मुझे दें, तो मैं जल में प्रवेश कर वरुण से धन प्राप्त कर यज्ञ करूँ। राजकुमार ने उसके माँगने पर अपना हार उसे दे दिया और उसके आश्रम में बैठकर उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। तालकेतु हार पहनकर जलाशय में घुसा और दूसरे मार्ग से निकलकर उनके पिता के पास पहुँचकर उनसे कहा कि राजकुमार यज्ञ की रक्षा कर रहे थे। राक्षसों से घोर युद्ध हुआ, जिसमें राक्षसों ने राजकुमार को मार डाला। मैं यह समाचार देने के लिये आया हूँ। जब ऋतुध्वज् के मारे जाने का समाचार मदालसा को पहुँचा, तब उसने प्राण त्याग दिए। तालध्वज वहाँ से लौटा और उसी जलाशय से निकलकर ऋतुध्वज से बोला कि आपकी कृपा से मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया।

अब आप अपने घर जाइए। ऋतुध्वज जब अपने घर आया, तो मदालसा के शरीरपात का समाचार सुनकर अत्यंत दुःखित हुआ। निदान वह सदा चिंतातुर रहा करता थां। उसे शोकातुर देख उसके सखा नागराज अश्वतर के दो पुत्रों ने अपने पिता से प्रार्थना की कि आप तप करके मदालसा को फिर राजा को दे उनको दुःख से छुड़ावें। अश्वतर ने शिव की तपस्या कर उनके वरदान से 'मदालसा' तुल्य पुत्री प्राप्त की और राजकुमार ऋतुध्वज को अपने यहाँ निमंत्रित कर उसे प्रदान किया। यह मदालसा परम विदुषी और ब्रह्मवादिनी थी। यह अपने पुत्रों को ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश करती हुई खेलाया करती थी। इसके तीन पुत्र विक्रांत, सुबाहु और शत्रुमर्दन आबाल ब्रह्मचारी और विरक्त थे; और चौथा पुत्र अलर्क गद्दी पर बैठा, जिसे राजा ऋतुध्वज ने अपना उत्तराधिकारी बनाया और अंत को उसी पर राज्य-भार छोड़ सस्त्रीक वानप्रस्थाश्रम ग्रहण किया। मार्कंडेय-पुराण में इसकी कथा विस्तार से आई है।

मदालापी-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मदालापिनी] कोकिल।

मदाह्व-संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी।

मदि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पटेला। हेंगा।

मदिर-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल खैर।

मदिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भबके से खींच वा सड़ाकर बनाया हुआ प्रसिद्ध मादक रस। वह अर्क जिसके पीने से नशा हो। शराब। दारू। मद्य।

विशेष—मदिरा के प्रधान दो भेद हैं। एक वह जिसे आग पर चढ़ाकर भबके से खींचते हैं जिसे अभिस्रवित कहते हैं। दूसरा वह जिसमें सड़ाकर मादकता उत्पन्न की जाती है और जिसे पर्युषित कहते हैं। यह दोनों प्रकार की मदिराएँ उत्तेजक, दाहक, कषाय और मधुर होती हैं। वैदिक काल से ही मादक रसों के प्रयोग की प्रथा पाई जाती है। सोम का रस भी, जिसकी स्तुति प्रायः सभी संहिताओं में है, निचोड़कर कई दिन तक ग्राहों में रखा जाता था जिससे खमीर उठकर उसमें मादकता उत्पन्न हो जाती थी। यजुर्वेद में यवसुरा शब्द आया है, जिससे यह पता चलता है कि यजुर्वेद के काल में यव की मदिरा खींचकर बनाई जाती थी। स्मृतियों में सुरा के तीन भेदों—गौड़ी, पैष्टी और माध्वी—का निषेध देखा जाता है। वैद्यक में सुरा, वारुणी, शीधु, आसव, माध्वीक, गौड़ी, पैष्टी, माध्वी, हाला, कादंबरी आदि के नाम मिलते हैं। जटाधर ने मध्वीक, पानास, द्राक्ष, खर्ज्जूर, ताल, ऐक्षव, मैरेय, माक्षिक, टांक, मधूक, नारिकेलज, अन्नविकारोत्थ, इन बारह प्रकार की मदिराओं का उल्लेख किया है। इनमें खर्ज्जूर और ताड़ आदि पर्य्युषित और शेष अभिस्रवित हैं। इन दोनों के अतिरिक्त एक प्रकार की और मदिरा होती है, जिसे अरिष्ट कहते हैं। यह क्वाथ से बनाई जाती है। धान वा चावल की मदिरा को सुरा, यव की मदिरा को कोहल, गेहूँ की मदिरा को मधूलिका, मीठे रस की मदिरा को शीधु, गुड़ की मदिरा को गौड़ी और दाख की मदिरा को मध्वीक कहते हैं। धर्मशास्त्रों में गौड़ी, पैष्टी, और माध्वी को सुरा कहा गया है। वैद्यक ग्रंथों में भिन्न भिन्न प्रकार की मदिराओं के गुण लिखे हैं और उनका प्रयोग भिन्न भिन्न अवस्थाओं के लिये लाभकारी बतलाया गया है।

क्रि० प्र०—खींचना।—पीना।—पिलाना।

(२) वासुदेव की एक स्त्री का नाम। (३) बाइस अक्षरों के एक वर्णिक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण और अंत में एक गुरु होता है। इसे मालिनी, उमा और दिवा भी कहते हैं। उ०—तोरि शरासन शंकर के शुभ सीय स्वयंवर माँझ बरी।—केशव।

मदिराक्ष-वि० [सं०] [मदिराक्षी] जिसकी आँखें मद भरी हों। मस्त आँखोंवाला। मत्तलोचन।

मदी-संज्ञा स्त्री० दे० "मदि"।

मदीना-संज्ञा पुं० [अ०] अरब के एक नगर का नाम। यहाँ मुसलमानी मत के प्रवर्तक मुहम्मद साहब की समाधि है।

मदीय-वि० [सं०] [स्त्री० मदीया] मेरा।

मदीयून-संज्ञा पुं० [फा०] वह जो देनदार हो। कर्जदार। ऋणी।

मदीला-वि० [हिं० मद + ईला (प्रत्य०)] नशे से भरा हुआ। नशीला। उ०—गजन मदीले चढ़ि चले चटकीले हैं।—रघुराज।

मदुकल-संज्ञा पुं० [?] दोहे के एक भेद का नाम जिसमें तेरह गुरु और बाईस लघु मात्राएँ होती हैं। इसे गयंद भी कहते हैं। उ०—राम नाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरै जौ चाहसि उजियार।—तुलसी।

मदोत्कट-वि० [सं०] मद गर्वित। मदोद्धत।

संज्ञा पुं०—मत्त हाथी।

मदोदग्र-वि० [सं०] मत्त। मतवाला।

मदोद्धत-वि० [सं०] (१) मदोन्मत्त। मत्त। (२) घमंडी।

मदोन्मत्त-वि० [सं०] मद में भरा हुआ। मदांध।

मदोल्लापी-संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल।

मदोवै*-संज्ञा स्त्री० [सं० मंदोदरी] मंदोदरी। उ०—तुलसी मदोवै मीजि हाथ धुनि माथ कहै काहू कान कियो न मैं केतो कह्यो कालि है।—तुलसी।

मद्गु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का जल पक्षी जिसकी लंबाई पूँछ से चोंच तक ३२ से ३४ इंच तक होती है। इसके डैने कुछ पीलापन लिए होते हैं। पूँछ काली, चोंच पीली और मुँह, कनपटी और गले के नीचे का भाग सफेद तथा पैर काले होते हैं। यह भारतवर्ष के प्रायः सभी

भागों में, विशेषकर पहाड़ी और जंगली प्रदेशों में होता है। वैद्यक में इसका मांस शीतल, वायुनाशक, स्निग्ध और भेदक माना गया है। यह रक्त पित्त के विकारों को दूर करता है। इसे जलपाद और लमपुछार भी कहते हैं। (२) पेड़ पर रहनेवाला एक प्रकार का जंतु। (३) मद्गुरी मछली। मंगुर। (४) एक प्रकार का साँप। (५) एक प्रकार का युद्धपोत। (६) एक वर्णसंकर जाति का नाम। मनुस्मृति में इसकी उत्पत्ति ब्राह्मण पिता और बंदी जाति की माता से लिखी है और इसका काम वन्य पशुओं का मारना बताया गया है।

मद्गुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मँगुरी वा मंगुर नामक मछली। (२) प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति जिसका काम समुद्र में डूबकर मोती आदि निकालना था।

मद्गुरक-संज्ञा पुं० [सं०] मंगुर नामक मछली। मद्गुर।

मद्गुरसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मंगुर वा मद्गुर नामक मछली।

मद्दूसाही-संज्ञा पुं० [हिं० मधुसाह] एक प्रकार का पुराना पैसा जो ताँबे का चौकोर टुकड़ा होता है।

मद्धिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मदिरा जो द्राक्षा से बनाई जाती है। द्राक्ष।

मद्धिम*†-वि० [सं०] (१) मध्यम। अपेक्षाकृत कम अच्छा। (२) मंदा।

मद्धे-अव्य० [सं० मध्ये] (१) बीच में। में। उ०—गुरु संत समाज मद्धे भक्ति मुक्ति दृढ़ाइये।—कबीर। (२) विषय में। बाबत। संबंध में। उ०—परंतु अँगूठी मिलने के मद्धे इससे कुछ और पूछ ताछ होनी चाहिए।—लक्ष्मणसिंह। (३) लेखे में। बाबत। जैसे—आपको सौ रुपए इस मद्धे दिए जा चुके हैं।

मद्य-संज्ञा पुं० [सं०] मदिरा। शराब।

मद्यद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] माड़ नामक वृक्ष।

मद्यपंक-संज्ञा पुं० [सं०] खमीर जो मद्य खींचने के लिये उठाया जाय।

मद्यप-वि० [सं०] मद्य पीनेवाला। सुरापी। शराबी।

मद्यपान-संज्ञा पुं० [सं०] मद्य पीने की क्रिया। शराब पीना।

मद्यपाशन-संज्ञा पुं० [सं०] मद्य के साथ खाई जानेवाली चटपटी चीज़। गज़क। चाट।

मद्यपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] धातकी। धौ।

मद्यबीज-संज्ञा पुं० [सं०] शराब के लिये उठाया हुआ खमीर।

मद्यमंड-संज्ञा पुं० [सं०] वह फेन जो मद्य का खमीर उठने पर ऊपर आता है। मद्यफेन।

मद्यमोद-संज्ञा पुं० [सं०] वकुल। मौलसिरी।

मद्यवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] धातकी। धौ।

मद्यसंधान-संज्ञा पुं० [सं०] मद्य निकालने का व्यापार।

मद्रंकर-वि० [सं०] मंगल-कारक।

मद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का वैदिक नाम। यह देश कश्यप सागर के दक्षिणी किनारे पर पश्चिम की ओर था। ऐतरेय ब्राह्मण में इसे उत्तर कुरु लिखा है। (२) पुराणानुसार रावी और झेलम नदियों के बीच के देश का नाम। (३) हर्ष।

मद्रक-वि० [सं०] (१) मद्र देश का। मद्र देश संबंधी। (२) मद्र देश में उत्पन्न।

मद्रकार-वि० [सं०] मंगलकारक। शुभ।

मद्रसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] नकुल और सहदेव की माता, माद्री।

मद्रकुस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाणिनि के अनुसार एक देश का नाम।

मध*-संज्ञा पुं० दे० "मध्य"।

मधन-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो भैरव राग की पुत्र-वधू मानी जाती है।

मधि*-संज्ञा पुं० दे० "मध्य"।

अव्य० [सं० मध्य] में।

मधिम*-वि० दे० "मध्यम"।

मधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी। जल। (२) शहद। (३) मदिरा। शराब। (४) फूल का रस। मकरंद। (५) वसंत ऋतु। (६) चैत्र मास। (७) एक दैत्य जिसे विष्णु ने मारा था और जिसके कारण उनका 'मधुसूदन' नाम पड़ा। (८) दूध। (९) मिसरी। (१०) नवनीत। मक्खन। (११) घी। (१२) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दो लघु अक्षर होते हैं। (१३) शिव। महादेव। (१४) महुए का पेड़। (१५) अशोक का पेड़। (१६) मुलेठी। (१७) अमृत। सुधा। (१८) एक राग जो भैरव राग का पुत्र माना जाता है।

संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती का पेड़।

वि० [सं०] (१) मीठा। (२) स्वादिष्ट। उ०—चारौ भ्रात मिलि करत कलेऊ मधु मेवा पकवाना।—सूर।

मधुकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल। कोयल।

मधुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महुए का पेड़। (२) महुए का फूल। (३) मुलेठी। जेठी मधु।

मधुकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भौंरा। (२) कामी पुरुष। (३) भँगरा। घमरा।

मधुकरी-संज्ञा स्त्री० [सं० मधुकर] (१) गकरिया। भौंरिया। बाटी। (२) पके अन्न की भिक्षा। वह भिक्षा जिसमें केवल पका हुआ दाल, चावल, रोटी, तरकारी आदि ली जाती हो। (३) भ्रमरी। भौंरी।

मधुकर्कटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] संतरा। मीठा नीबू।

मधुकलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

मधुकार-संज्ञा पुं० [सं०] मधुमक्खी। शहद की मक्खी।

मधुकाश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] मोम ।

मधुकुंभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम ।

मधुकुल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार कुश द्वीप की एक नदी का नाम ।

मधुकैटभ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य जो दोनों भाई थे और जिन्हें विष्णु ने मारा था ।

मधुकोष-संज्ञा पुं० [सं०] शहद की मक्खी का छत्ता । मधुचक्र ।

मधुक्षीर-संज्ञा पुं० [सं०] खजूर का पेड़ ।

मधुगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अर्जुन का वृक्ष । (२) वकुल । मौलसिरी ।

मधुगुंजन-संज्ञा पुं० [सं०] सहँजन का वृक्ष ।

मधुग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] वाजपेय यज्ञ में का एक होम जो मधु से किया जाता है ।

मधुघोष-संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल । कोयल ।

मधुचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] शहद की मक्खी का छत्ता ।

मधुच्छंदा-संज्ञा पुं० [सं० मधुच्छंदस्] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम जो ऋग्वेद के अनेक मंत्रों के द्रष्टा थे ।

मधुच्छदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मोरशिखा नाम की बूटी ।

मधुज-संज्ञा पुं० [सं०] मोम ।

मधुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी ।

विशेष—पुराणानुसार पृथ्वी की उत्पत्ति मधु नामक राक्षस के मेद से हुई थी, इसी से उसका यह नाम पड़ा ।

मधुजीरक-संज्ञा पुं० [सं०] सौंफ ।

मधुजीवन-संज्ञा पुं० [सं०] बहेड़े का वृक्ष ।

मधुतृण-संज्ञा पुं० [सं०] ईख । ऊख ।

मधुत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] शहद, घी और चीनी इन तीनों का समूह ।

मधुत्व-संज्ञा पुं० [सं०] मधु वा मधुर होने का भाव । मिठास । मीठापन ।

मधुदीप-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

मधुदूत-संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ ।

मधुदूती-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष ।

मधुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] भौंरा ।

मधुद्रव-संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहँजन का वृक्ष ।

मधुद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] महुए का पेड़ ।

मधुधारी-संज्ञा पुं० [सं०] सोना मक्खी ।

मधुधूलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] खाँड़ । शक्कर ।

मधुर्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसे घृतमंडा और सुमंगला भी कहते हैं ।

मधुनेत्रा-संज्ञा पुं० [सं० मधुनेतृ] भ्रमर । भौंरा ।

मधुप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भौंरा । (२) शहद की मक्खी । वि० मधु पीनेवाला ।

मधुपटल-संज्ञा पुं० [सं०] शहद की मक्खी का छत्ता ।

मधुपति-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण ।

मधुपर्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दही, घी, जल, शहद और चीनी का समूह जो देवताओं को चढ़ाया जाता है और जिससे देवता बहुत संतुष्ट होते हैं । यह भी कहा गया है कि इसका दान करने से सुख और सौभाग्य की वृद्धि तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है । पूजा के सोलह उपचारों में से देवता या पूज्य के सामने मधुपर्क रखना भी एक उपचार है । (२) तंत्र के अनुसार घी, दही और मधु का समूह जिसका उपयोग तांत्रिक पूजन में होता है ।

मधुपर्क्य-वि० [सं०] मधुपर्क देने के योग्य । जिसके सामने मधुपर्क रक्खा जा सके ।

मधुपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुरुच । (२) गंभारी नामक वृक्ष । (३) नीली नामक पौधा ।

मधुपायी-संज्ञा पुं० [सं० मधुपायिन्] भौंरा ।

मधुपालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी नामक वृक्ष ।

मधुपिंग-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक मुनि का नाम ।

मधुपीलु-संज्ञा पुं० [सं०] महापीलु । अखरोट ।

मधुपुर-संज्ञा पुं० [सं०] मथुरा नगर का प्राचीन नाम ।

मधुपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मथुरा का प्राचीन नाम ।

मधुपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महुआ । (२) सिरिस का पेड़ । (३) अशोक वृक्ष । (४) मौलसिरी ।

मधुपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदंती । (२) धौ ।

मधुप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह रोग जिसमें पेशाब में शक्कर आती है । वि० दे० "मधुमेह" ।

मधुप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बलराम । (२) भुईंजामुन ।

मधुफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाख । (२) कँटाय या विकंकत नामक वृक्ष ।

मधुफलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मीठी खजूर ।

मधुवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्रजभूमि के एक बन का नाम । (२) सुग्रीव का बगीचा जिसमें अंगूर के फल बहुत होते थे ।

मधुबहुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वासंती लता । (२) सफेद जूही ।

मधुबिंबी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुँदरू ।

मधुबीज-संज्ञा पुं० [सं०] अनार ।

मधुभार-संज्ञा पुं० [सं०] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में आठ मात्राएँ होती हैं और अंत में जगण होता है । जैसे-प्रभु हौ सुदीन । तुम हौ प्रवीन । जग महँ महेश । हरिये कलेश ।

मधुमक्खी-संज्ञा स्त्री० [सं० मधुमक्षिका] एक प्रकार की प्रसिद्ध मक्खी जो फूलों का रस चूसकर शहद एकत्र करती है । मुमाखी ।

विशेष—दस हजार से पचास हजार तक मधुमक्खियाँ एक साथ एक घर बनाकर रहती हैं, जिसे छत्ता कहते हैं। इस छत्ते में मक्खियों के लिये अलग अलग बहुत से छोटे छोटे घर बने होते हैं। प्रत्येक छत्ते में तीन प्रकार की मधुमक्खियाँ होती हैं। एक तो मादा मक्खी होती है जो रानी कहलाती है। इसका काम केवल गर्भ धारण करके अंडे देना होता है। यह एक दिन में प्रायः दो हजार अंडे देती है। प्रत्येक छत्ते में ऐसी एक ही मक्खी होती है। साधारण मक्खियों की अपेक्षा यह कुछ बड़ी भी होती है। दूसरी जाति नर मक्खियों की होती है, जिनका काम रानी को गर्भ धारण कराना होता है। और तीसरे वर्ग में वे साधारण मक्खियाँ होती हैं जो फलों का रस पी पीकर आती हैं और उन्हें शहद या मधु के रूप में छत्ते में जमा करती हैं। जब नर मक्खियाँ गर्भ-धारण का काम करा चुकती हैं, तब उन्हें तीसरे वर्ग की साधारण मक्खियाँ मार डालती हैं। इसके अतिरिक्त छत्ता बनाने और नवजात मक्खियों के पालन पोषण का काम भी इसी तीसरे वर्ग की मक्खियाँ करती हैं। मादा और काम करनेवाली मक्खियों का डंक जहरीला होता है जिससे वे अपने शत्रु को मारती हैं। जब एक छत्ता बहुत भर जाता है, तब रानी मक्खी की आज्ञा से काम करनेवाली मक्खियाँ किसी दूसरी जगह जाकर नया छत्ता बनाती हैं। शहद में से जो मैल निकलती है, उसी को मोम कहते हैं। बहुत प्राचीन काल से प्रायः सभी देशों में लोग शहद और मोम के लिये इनका पालन करते आए हैं।

मधुमक्षिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शहद की मक्खी। मधुमक्खी।

मधुमत-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम जो काश्मीर के पास था।

मधुमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और एक गुरु होता है। (२) एक प्राचीन नदी का नाम। (३) तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार की नायिका जिसकी उपासना और सिद्धि से मनुष्य जहाँ चाहे, वहाँ आ जा सकता है। (४) पतंजलि के अनुसार समाधि की वह अवस्था जो अभ्यास और वैराग्य के कारण रजः और तम के बिलकुल दूर हो जाने और सत्गुण का पूरा प्रकाश होने पर प्राप्त होती है। (५) गंगा का एक नाम। (६) मधु दैत्य की कन्या का नाम जो इक्ष्वाकु के पुत्र हर्य्यश्व को ब्याही थी। (७) पुराणानुसार नर्म्मदा की एक शाखा का नाम।

मधुमथन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

मधुमल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] मालती।

मधुमस्तक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पकवान जो मैदे को घी में भूनकर और ऊपर से शहद में लपेटकर बनाया जाता है। वैद्यक के अनुसार यह बलकारक और भारी होता है।

मधुमाखी-संज्ञा स्त्री० दे० "मधुमक्खी"।

मधुमात-संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो भैरव राग का सहचर माना जाता है।

मधुमात सारंग-संज्ञा पुं० [सं०] सारंग राग का एक भेद जिसके गाने का समय दिन में १७ दंड से २० दंड तक माना जाता है। यह संकर राग है और सारंग तथा मधुमात के योग से बनता है।

मधुमाधव-संज्ञा पुं० [सं०] मालश्री, कल्याण और मल्लार से मेल से बना हुआ एक संकर राग।

मधुमाधवसारंग-संज्ञा पुं० [सं०] ओड़व जाति का एक संकर राग जिसमें धैवत और गांधार वर्जित हैं।

मधुमाधवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक रागिनी जो भैरव राग की सहचरी मानी जाती है। हनुमत के मत से इसका स्वरग्राम इस प्रकार है:—म प ध नि सा रे ग म अथवा म प नि सा ग म। (२) वासंती लता। (३) एक प्रकार की शराब।

मधुमाध्वीक-संज्ञा पुं० [सं०] मद्य। शराब।

मधुमारक-संज्ञा पुं० [सं०] भौंरा।

मधुमालती-संज्ञा स्त्री० [सं०] मालती नाम की लता जिसके फूल पीले होते हैं। वि० दे० "मालती"।

मधुमूल-संज्ञा पुं० [सं०] रतालू।

मधुमेह-संज्ञा पुं० [सं०] किसी प्रकार के प्रमेह का बढ़ा हुआ रूप जिसमें पेशाब बहुत अधिक और मधु का सा मीठा तथा गाढ़ा आता है। यह रोग प्रायः असाध्य माना जाता है और इससे रोगी की प्रायः मृत्यु ही जाती है। वि० दे० "प्रमेह"।

मधुमेही-संज्ञा पुं० [सं० मधुमेहिन्] जिसे मधु मेह रोग हो।

मधुयष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुलेठी। जेठी मद। (२) ऊख। ईख।

मधुयष्टिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुलेठी।

मधुयष्टी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुलेठी।

मधुर-वि० [सं०] (१) जिसका स्वाद मधु के समान हो। मीठा। (२) जो सुनने में भला जान पड़े। जैसे—मधुर वचन। (३) सुंदर। मनोरंजक। उ०—सोइ जानकी-पति मधुर मूरति मोदमय मंगल मई।—तुलसी। (४) सुस्त। मट्ठर (पशु)। (५) मंदगामी। धीरे चलनेवाला। (६) जो किसी प्रकार क्लेशप्रद न हो। हलका। उ०—मधुर मधुर गरजत घन घोरा।—तुलसी। (७) शान्त।

संज्ञा पुं० (१) मीठा रस। (२) जीवक वृक्ष। (३) लाल ऊख। (४) गुड़। (५) धान। (६) स्कंद के एक सैनिक

का नाम। (७) लोहा। (८) विष। जहर। (९) काकोली। (१०) जंगली बेर। (११) बादाम का पेड़। (१२) महुआ। (१३) मटर।

मधुरई*-संज्ञा स्त्री० [हिं० मधुर + ई (प्रत्य०)] (१) मधुर होने का भाव। मधुरता। (२) मिठास। मीठापन। (३) सुकुमारता। कोमलता।

मधुरकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे कजली कहते हैं।

मधुरक-संज्ञा पुं० [सं०] जीवक वृक्ष।

मधुरकर्कटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मीठा नीबू।

मधुरजंबीर-संज्ञा पुं० [सं०] मीठा जमीरी नीबू।

मधुरज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] धीमा और सदा बना रहनेवाला ज्वर जो वैद्यक के अनुसार अधिक घी आदि खाने अथवा पसीना रुकने के कारण होता है। इसमें मुँह लाल हो जाता है, तालू और जीभ सूख जाती है, नींद नहीं आती, प्यास बहुत लगती और कै मालूम होती है।

मधुरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मधुर होने का भाव। (२) मिठास। (३) सौंदर्य। सुंदरता। मनोहरता। (४) सुकुमारता। कोमलता।

मधुरत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] शहद, घी और चीनी इन तीनों का समूह।

मधुत्रिफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाख या किशमिश, गंभारी और खजूर इन तीनों का समूह।

मधुरत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मधुर होने का भाव। मधुरता। (२) मीठापन। मिठास। (३) सुंदरता। मनोहरता।

मधुरत्वच-संज्ञा पुं० [सं०] धौ का पेड़।

मधुरफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेर का वृक्ष। (२) तरबूज।

मधुरफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मीठा नीबू।

मधुरबिंबी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुँदरू।

मधुरस-संज्ञा पुं० [सं०] ईख। ऊख।

मधुरसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूर्वा। (२) दाख। (३) गंभारी। (४) दुधिया। (५) शतपुष्पी। (६) प्रसारिणी लता।

मधु-रसिक-संज्ञा पुं० [सं०] भौंरा।

मधुरस्रवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर।

मधुरस्वर-संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व।

मधुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मदरास प्रांत का एक प्राचीन नगर जो अब मदुरा या मदूरा कहलाता है। (२) मथुरा नगर। (३) शतपुष्पी। (४) मीठा नीबू। (५) मेदा। (६) मुलेठी। (७) काकोली। (८) सतावर। (९) महामेदा। (१०) पालक का साग। (११) सेम। (१२) केले का वृक्ष। (१३) मसूर। (१४) मीठी खजूर। (१५) सौंफ।

मधुराई*-संज्ञा स्त्री० [हिं० मधुर + आई (प्रत्य०)] (१) मधुरता। (२) मिठास। मीठापन। (३) कोमलता। (४) सुंदरता।

मधुराकर-संज्ञा पुं० [सं०] ईख। ऊख।

मधुराज-संज्ञा पुं० [सं०] भौंरा। उ०—छूटि रही अलक झलक मधुराज राजी तापै छिति तैसीये विराजै पर मोर की।—रघुनाथ।

मधुराना*†-क्रि० अ० [हिं० मधुर + आना (प्रत्य०)] (१) किसी वस्तु में मीठा रस आ जाना। मीठा होना। उ०—व्यंग ढंग तजि बानी ह्रू कछु कछु मधुरानी।—व्यास। (२) सुंदरता से भर जाना। सुंदर हो जाना। उ०—आगे कौन हवाल जबै अँग अँग मधुरैहैं।—व्यास।

मधुराम्लक-संज्ञा पुं० [सं०] अमड़ा।

मधुराम्लरस-संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी का पेड़।

मधुरालापा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैना पक्षी।

मधुरालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी मछली।

मधुरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंफ।

मधुरिपु-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

मधुरिमा-संज्ञा स्त्री० [सं० मधुरिमन्] (१) मिठास। मीठापन। (२) सुंदरता। सौंदर्य।
वि० जो बहुत अधिक मीठा हो।

मधुरी*-संज्ञा स्त्री० [सं० माधुर्य] (१) सौंदर्य। सुंदरता। उ०—ता दिन देख परी सब की छवि कौन मिली इनकी मधुरी में।—रघुराज। (२) बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता था।

मधुरीछ-संज्ञा पुं० [हिं० मधु + रीछ] दक्षिणी अमेरिका का एक जंगली जंतु जो ऊँचाई में बिल्ली या कुत्ते के बराबर और रूप में रीछ के समान होता है। यह जंतु शहद के छत्तों से शहद चूसने का बड़ा प्रेमी होता है। इसी से इसे लोग मधुरीछ कहते हैं।

मधुरोदक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से अंतिम समुद्र जो मीठे जल का है और जो पुष्कर द्वीप के चारों ओर है।

मधुल-संज्ञा पुं० [सं०] मदिरा।

मधुलग्न-संज्ञा पुं० [सं०] लाल शोभांजन।

मधुलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे शूली भी कहते हैं।

मधुलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की शराब जो मधुली नामक गेहूँ से बनाई जाती है। (२) राई। (३) कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम। (४) फूलों का पराग।

मधुली-संज्ञा पुं० [सं० मधुलिका] भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार का गेहूँ।

मधुलोलुप-संज्ञा पुं० [सं०] भौंरा।

मधुवटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन स्थान का नाम।

मधुवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मथुरा के पास यमुना के किनारे का एक वन जहाँ शत्रुघ्न ने लवण नामक दैत्य को मारकर मधुपुरी स्थापित की थी। (२) किष्किन्धा के पास का सुग्रीव का वन जिसमें सीता का समाचार लेकर लौटने पर हनुमान ने मधु-पान किया था। (३) वह वन या कुंज जिसमें प्रेमी और प्रेमिका आकर मिलते हों। (४) कोयल।

मधुवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

मधुवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुलेठी। (२) करेला।

मधुवामन संज्ञा पुं० [सं०] भौंरा। उ०—मधुप मधुव्रत मधु-रसिक मधुवामन बग ओर।—नंददास।

मधुवार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्य पीने का दिन। (२) मद्य पीने की रीति। (३) मद्य। मदिरा।

मधुवाही-संज्ञा पुं० [सं० मधुवाहिन्] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नद का नाम।

मधुवीज-संज्ञा पुं० [सं०] अनार।

मधुव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] भौंरा।

मधु-शर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शहद से बनाई हुई चीनी जो वैद्यक के अनुसार बलकारक और वृष्य होती है।

पर्य्या०—माध्वी। सिता। मधुजा। क्षौद्रजा। क्षौद्रशर्करा।

(२) सेम। लोबिया।

मधुशाक-संज्ञा पुं० [सं०] महुए का वृक्ष।

मधुशिग्रु-संज्ञा पुं० [सं०] शोभांजन। सहिंजन।

मधुशिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम। लोबिया।

मधुशिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

मधुशेष-संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

मधुश्रम-संज्ञा पुं० [सं० मधुस्रवा] सजीवन मूरि। सजीवन बूटी। (नंददास)

मधुश्रेणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा।

मधुश्वासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती नामक वृक्ष।

मधुष्ठील-संज्ञा पुं० [सं०] महुए का वृक्ष।

मधुसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोम। (२) दाख।

मधुसख-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मधुसहाय-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मधुसारथि-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मधुसिक्थक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोम। (२) एक प्रकार का स्थावर विष।

मधुसुक्त-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रस जो पिप्पली मूल को एक बर्तन में बंद करके तीन दिन तक धूप में रखने से तैयार होता है।

मधुसुहृद्-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मधुसूदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मधु नामक दैत्य को मारनेवाले, श्रीकृष्ण। (२) भौंरा।

मधुसूदनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पालक का साग।

मधुस्कंद-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

मधुस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] मधुमक्खी का छत्ता।

मधुस्पंदी-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसमें तार लगा रहता था।

मधुस्यंद-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

मधुस्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महुए का वृक्ष। (२) पिंड-खजूर का वृक्ष।

मधुस्रवा-संज्ञा पुं० [सं० मधुस्रवस्] महुए का वृक्ष।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सजीवन बूटी। (२) मुलेठी। (३) मूर्वा। (४) हंसपदी नाम की लता।

मधुस्राव-संज्ञा पुं० [सं०] महुए का वृक्ष।

मधुस्वर-संज्ञा पुं० [सं०] कोयल।

मधुहंता-संज्ञा पुं० [सं० मधुहंतृ] मधु दैत्य को मारनेवाले, विष्णु।

मधुहेतु-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मधूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महुए का पेड़। (२) महुए का फूल। उ०—पहिराई नल के गले नव मधूक की माल।—गुमान। (३) मुलेठी।

मधूकपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अमड़ा।

मधूकरी-संज्ञा स्त्री० दे० "मधुकरी"।

मधूक शर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महुए के फल या फूल से निकाली हुई चीनी।

मधूख-संज्ञा पुं० दे० "मधूक"।

मधूच्छिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

मधूत्थ-संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

मधूत्थित-संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

मधूत्पन्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] शहद से बनाई हुई चीनी।

मधूत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वसंतोत्सव। (२) चैत्र की पूर्णिमा।

मधूल-संज्ञा पुं० [सं०] जल-महुआ।

मधूलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल-महुआ। (२) मद्य। शराब।

मधूलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूर्वा। (२) मुलेठी। (३) एक प्रकार का मोटा अन्न। (४) छोटे दाने का गेहूँ। (५) छोटे दाने के गेहूँ से बनी हुई शराब। (६) एक प्रकार की घास। (७) एक प्रकार की मक्खी जिसके काटने से सूजन और जलन होती है। (वैद्यक)

मधूली-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आम का पेड़। (२) जल में उत्पन्न होनेवाली मुलेठी। (३) मध्य देश का गेहूँ।

मधूवक-संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

मध्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ के बीच का भाग।

दरमियानी हिस्सा । (२) कमर । कटि । (३) संगीत में एक सप्तक जिसके स्वरों का उच्चारण वक्ष स्थल से, कंठ के अंदर के स्थानों से किया जाता है। यह साधारणतः बीच का सप्तक माना जाता है । (४) नृत्य में वह गति जो न बहुत तेज हो और न बहुत मंद । (५) दस अरब की संख्या । (६) विश्राम । (७) सुश्रुत के अनुसार १६ वर्ष से ७० वर्ष तक की अवस्था । (८) अंतर । भेद । फरक । (९) पश्चिम दिशा ।

वि० (१) उपयुक्त । ठीक । (२) अधम । नीच । (३) मध्यम । बीच का ।

मध्य कुरु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश जो उत्तर कुरु और दक्षिण कुरु के मध्य में था । वि० दे० "कुरु" ।

मध्यखंड-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार पृथ्वी का वह भाग जो उत्तर क्रांतिवृत्त और दक्षिण क्रांतिवृत्त के मध्य में पड़ता है ।

मध्यगंध-संज्ञा पुं० [सं०] आम का वृक्ष ।

मध्यगत-वि० [सं०] मध्यम । बीच का ।

मध्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मध्य का भाव वा धर्म्म ।

मध्यतापिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम ।

मध्य देश-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन भौगोलिक विभाग के अनुसार भारतवर्ष का वह प्रदेश जो हिमालय के दक्षिण, विन्ध्य पर्वत के उत्तर, कुरुक्षेत्र के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम में है । यह प्रदेश किसी समय आर्य्यों का प्रधान निवास-स्थान था और बहुत पवित्र माना जाता था । मध्यम ।

मध्यदेह-संज्ञा पुं० [सं०] उदर । पेट ।

मध्यपदलोपी-संज्ञा पुं० दे० "मध्यम-पद-लोपी" ।

मध्यपात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष में एक प्रकार का पात । (२) जान-पहचान । परिचय ।

मध्यपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] जल-बेत ।

मध्यम-वि० [सं०] जो दो विपरीत सीमाओं के बीच में हो । जो गुण, विस्तार, मान आदि के विचार से न बहुत बड़ा हो, न बहुत छोटा । मध्य का । बीच का ।

संज्ञा पुं० (१) संगीत के सात स्वरों में से चौथा स्वर जिसका मूल स्थान नासिका, अंतः स्थान कंठ और शरीर में उत्पत्ति स्थान वक्षस्थल माना जाता है । कहते हैं कि यह मयूर का स्वर है, इसके अधिकारी देवता महादेव, आकृति विष्णु की, संतान दीपक राग, वर्ण नील, जाति शूद्र, ऋतु ग्रीष्म, वार बुध और छंद बृहती है और इसका अधिकार कुश द्वीप में है । संक्षेप में इसे "म" कहते या लिखते हैं । यह साधारण और तीव्र दो प्रकार का होता है । इसको स्वर (षड्ज) बनाने से सप्तक इस प्रकार होता है:— मध्यम स्वर, पंचम ऋषभ, धैवत गान्धार, कोमल निषाद मध्यम, स्वर (षड्ज) पंचम, ऋषभ धैवत, गान्धार निषाद । तीव्र मध्यम को स्वर (षड्ज) बनाने से सप्तक इस प्रकार होता है:—तीव्र मध्यम स्वर, कोमल धैवत ऋषभ, कोमल निषाद गान्धार, निषाद मध्यम, कोमल ऋषभ पंचम, कोमल गान्धार धैवत, मध्यम निषाद । (२) वह उपपति जो नायिका के क्रोध दिखलाने पर अपना अनुराग न प्रकट करे और उसकी चेष्टाओं से उसके मन का भाव जाने । (३) साहित्य में तीन प्रकार के नायकों में से एक । (४) एक प्रकार का मृग । (५) एक राग का नाम । (६) मध्य देश ।

मध्यमता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मध्यम होने का भाव ।

मध्यमपदलोपी-संज्ञा पुं० [सं० मध्यमपदलोपिन्] व्याकरण में वह समास जिसमें पहले पद से दूसरे पद का संबंध बतलानेवाला शब्द लुप्त या समास से अध्याहृत रहता है । लुप्त पद समास ।

विशेष—कुछ कर्म्मधारय और कुछ बहुव्रीहि समास मध्यमपदलोपी हुआ करते हैं । जैसे—पर्णशाला (पर्णनिर्मित शाला), जेब-घड़ी (जेब में रहनेवाली घड़ी), मृगनयनी (मृग के समान नयनोंवाली) ।

मध्यम पुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण के अनुसार तीन पुरुषों में से वह पुरुष जिससे बात की जाय । वह व्यक्ति जिसके प्रति कुछ कहा जाय ।

मध्यमलोक-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी ।

मध्यमसंग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] मिताक्षरा के अनुसार स्त्री को अपने अधिकार में लाने का वह प्रकार जिसमें पुरुष उसे वस्त्र-आभूषण आदि भेजकर अपने पर अनुरक्त करता है ।

मध्यम साहस-संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार पाँच सौ पण तक का अर्थ-दंड या जुरमाना ।

मध्यमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाँच उँगलियों में से बीच की उँगली । (२) वह नायिका जो अपने प्रियतम के प्रेम वा दोष के अनुसार उसका आदर-मान वा अपमान करे । (३) रजस्वला स्त्री । (४) कनियारी । (५) छोटा जामुन । (६) काकोली ।

मध्यमागम-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के चार प्रकार के आगमों में से एक प्रकार का आगम ।

मध्यमात्रेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

मध्यमान-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताल जिसमें ८ ह्रस्व अथवा ४ दीर्घ मात्राएँ होती हैं और ३ आघात और १ खाली होता है । इसके तबले के बोल ये हैं:—धा धिन ताक् धिन, धा धिन ताक् धिन, धा तिन ताक् तिन, ता धिन ताक् धिन । धा ।

मध्यमाहरण-संज्ञा पुं० [सं०] बीज गणित की वह क्रिया जिसके अनुसार कोई आयत्त मान निकाला जाता है ।

मध्यमिक-वि० [सं०] बीच का । मध्यम ।

मध्यमिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] रजस्वला स्त्री ।

मध्यमीय-वि० दे० "मध्यम" ।

मध्ययव-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक परिमाण जो ६ पीली सरसों के बराबर होता था ।

मध्यरेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष और भूगोल शास्त्र में वह रेखा जिसकी कल्पना देशांतर निकालने के लिये की जाती है । यह रेखा उत्तर-दक्षिण मानी जाती है और उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों को काटती हुई एक वृत्त बनाती है ।

मध्यलोक-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी ।

मध्यवर्त्ती-वि० [सं०] जो मध्य में हो । बीच का ।

मध्यविवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार सूर्य्य या चंद्र ग्रहण के मोक्ष का एक प्रकार जिसमें सूर्य्य या चंद्रमा का मध्य भाग पहले प्रकाशित होता है । कहते हैं कि इस प्रकार के मोक्ष से अन्न तो यथेष्ट होता है, पर वृष्टि अधिक नहीं होती ।

मध्यसूत्र-संज्ञा पुं० दे० "मध्यरेखा" ।

मध्यस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो वादियों के झगड़े को निपटानेवाला । बीच में पड़कर विवाद मिटानेवाला । (२) जो दोनों पक्षों में से किसी पक्ष में न हो । उदासीन । तटस्थ । उ०—शत्रु मित्र मध्यस्थ तीन ये मन कीन्हे बरियाईं ।—तुलसी । (३) वह जो अपनी हानि न करता हुआ दूसरों का उपकार करता हो ।

मध्यस्थता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मध्यस्थ होने का भाव या धर्म्म ।

मध्यस्थल-संज्ञा पुं० [सं०] कमर ।

मध्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काव्य शास्त्रानुसार वह नायिका जिसमें लज्जा और काम समान हों । (२) एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तीन अक्षर होते हैं । इसके आठ भेद हैं । (३) बीच की उँगली ।

मध्यान-संज्ञा पुं० दे० "मध्याह्न" ।

मध्यान्ह-संज्ञा पुं० दे० "मध्याह्न" ।

मध्यारिक-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता ।

मध्याहारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ललित विस्तर के अनुसार ६४ प्रकार की लिपियों में से एक प्रकार की लिपि ।

मध्याह्न-संज्ञा पुं० [सं०] दिन का मध्य भाग । ठीक दोपहर का समय ।

मध्याह्नोत्तर-संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा पहर (दिन का) । दोपहर के बाद का समय ।

मध्ये-क्रि० वि० [सं० मध्य] बाबत । बारे में । संबंध में । मद्धे । वि० दे० "मद्धे" ।

मध्येज्योतिः-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच पाद का एक वैदिक छंद जिसके पहले और दूसरे चरण में आठ आठ वर्ण तथा तीसरे में ग्यारह, और पुनः चौथे और पाँचवें में आठ आठ वर्ण होते हैं ।

मध्व-संज्ञा पुं० दे० "मधु" ।

मध्वक-संज्ञा पुं० [सं०] शहद की मक्खी ।

मध्वरिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का अरिष्ट जो संग्रहणी रोग में उपकारी माना जाता है ।

मध्वल-संज्ञा पुं० [सं०] बार बार और बहुत शराब पीना ।

मध्वाचार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य्य और माध्व या मध्वाचारि नामक संप्रदाय के प्रवर्त्तक जो बारहवीं शताब्दी में हुए थे । ये वायु के अवतार माने जाते थे । पहले इनका नाम वासुदेवाचार्य्य था । इन्होंने अच्युत प्रेक्षाचार्य्य या श्रद्धानंद नामक एक महात्मा से दीक्षा ली थी और दीक्षा लेते ही विरक्त हो गए थे । कहते हैं कि ये अपना गीता भाष्य तैयार करके बदरिकाश्रम गए थे और वहाँ इन्होंने उसे वासुदेव के अर्पण किया था । वासुदेव से इन्हें तीन शालिग्राम मिले थे जो इन्होंने तीन भिन्न भिन्न मठों में स्थापित किए थे । इन्होंने बहुत से ग्रन्थ रचे और अनेक भाष्य लिखे थे । इनके सिद्धांत के अनुसार सबसे पहले केवल नारायण थे; और उन्हीं से समस्त जगत् तथा देवताओं की उत्पत्ति हुई । ये जीव और ईश्वर दोनों की पृथक् पृथक् सत्ता मानते थे । इनके दर्शन का नाम पूर्णप्रज्ञ दर्शन है और इनके अनुयायी मध्वाचारी या माध्व कहलाते हैं ।

मध्वाधार-संज्ञा पुं० [सं०] मधुमक्खी का छत्ता ।

मध्वालु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के पौधे की जड़ जो खाई जाती है । यह स्वाद में मीठी होती है । वैद्यक में इसे भारी, शीतल, रक्त-पित्त-नाशक और वीर्य्यवर्द्धक माना है ।

मध्वावास-संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ ।

मध्वासव-संज्ञा पुं० [सं०] महुए की शराब । माध्वीक ।

मध्वासवनिक-संज्ञा पुं० [सं०] शराब बनाकर बेचनेवाला । कलाल । कलवार ।

मध्विजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा । मद्य । शराब ।

मध्वृच-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेद की एक ऋचा ।

मनः-संज्ञा पुं० [सं० मनस्] मन ।

मनःक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] मन का उद्वेग ।

मनःपति-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

मनःपर्य्याप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] मन से संकल्प विकल्प वा बोध प्राप्त करने की शक्ति ।

मनःपर्य्याय-संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह ज्ञान जिससे चिंतित अर्थ का साक्षात् होता है । यह ज्ञान ईर्ष्या और

अंतराय नामक ज्ञानावरणों के दूर होने पर निर्वाण या मुक्ति की प्राप्ति के पूर्व की अवस्था में प्राप्त होता है। इसमें जीवों को मन रूपी द्रव्य के पर्यायों का साक्षात् ज्ञान होता है।

मनःप्रसाद-संज्ञा पुं० [सं०] मन की प्रसन्नता।

मनःप्रीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] मन की प्रसन्नता।

मनःशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें मन और मनोविकारों का वर्णन हो। मनोविज्ञान।

मनःशिल-संज्ञा पुं० [सं०] मैनसिल।

मनःशिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल।

मन-संज्ञा पुं० [सं० मनस्] (१) प्राणियों में वह शक्ति वा कारण जिससे उनमें वेदना, संकल्प, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, बोध और विचार आदि होते हैं। अंतःकरण। चित्त।

विशेष—वैशेषिक दर्शन में मन एक अप्रत्यक्ष द्रव्य माना गया है। संख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और संस्कार इसके गुण बतलाए गए हैं और इसे अणु रूप माना गया है। इसका धर्म संकल्प-विकल्प करना बतलाया गया है तथा इसे उभयात्मक लिखा है; अर्थात् उसमें ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय दोनों के धर्म हैं। योगशास्त्र में इसे चित्त कहा है। बौद्ध आदि इसे छठी इंद्रिय मानते हैं। वि० दे० "चित्त"।

(२) अंतःकरण की चार वृत्तियों में से एक जिससे संकल्प-विकल्प होता है।

मुहा०—**किसी से मन अटकना वा उलझना** = प्रीति होना। प्रेम होना। **मन आना वा मन में आना** = समझ पड़ना। जँचना। उ०—(क) मंगल मूरति कंचन पत्र की मैन रची मन आवत नीटि है।—दास। (ख) और दीन बहु रतन पखाना। सोन रूप जो मनहि न आना।—जायसी। **मन का खराब होना** = (१) मन फिरना। (२) नाराज होना। अप्रसन्न होना। (३) रोगी होना। बीमार होना। **मन टूटना** = साहस छूटना। हताश होना। उ०—फूटो निज कर्म नहिं लूटो सुख जानकी को टूटो न धनुष टूट गए मन सबके—हनुमन्नाटक। **मन बिगड़ना** = (१) मन का हट जाना। मन का उदासीन हो जाना। (२) मतली आना। कै मालूम होना। (३) उन्मत्त होना। पागल होना। **मन बढ़ना** = साहस बढ़ना। उत्साह बढ़ना। प्रोत्साहित होना। उ०—(क) सुनि मन धीरज भयल हो रमैया राम। मन बढ़ि रहल लजाय हो रमैया राम—कबीर। (ख) आपस के नित के बैर से शत्रुओं का मन बढ़ा।—शिवप्रसाद। **किसी का मन बूझना** = किसी के मन की थाह लेना। उ०—तुम्हारा मन बूझने के लिये ही मैंने यह बातें कहीं।—हरिऔध। **मन का बूझना वा मानना** = मन में शांति होना। मन में धैर्य्य आना। **मन मानना** = मन में शांति होना। संतोष होना। जैसे—हमारा मन नहीं मानता; हम उन्हें देखने अवश्य जायँगे। **मन का मारा** = खिन्न हृदय। दुखी चित्तवाला। **मन का मैला** = मन का खोटा। कपटी। घाती। **मन हरा होना** = मन प्रसन्न होना। चित्त प्रसन्न रहना। **मन की मन में रहना** = इच्छा पूरी न होना। जैसे,—मन की मन में ही रह गई; और वे चले गए। **मन के लड्डू खाना** = ऐसी बात को सोचकर प्रसन्न होना, जिसका होना असंभव वा दुःसाध्य हो। व्यर्थ की आशा पर प्रसन्न होना। उ०—विरह से पागल प्रेमी लोग मन के लड्डू से भूख बुझा लेते हैं।—हरिश्चंद्र। **मन खोलना** = दुराव छोड़ना। निष्कपट होना। शुद्ध-हृदय होना। **मन चलना** = इच्छा होना। प्रवृत्ति होना। जैसे—बीमारी में किसी चीज़ पर मन नहीं चलता। **किसी का मन टटोलना वा मन को टटोलना** = किसी के मन की थाह लेना। किसी की इच्छा को जानना। जैसे—आओ, कुछ आमोद प्रमोद की बातें करके उसका मन टटोलें। **मन डोलना** = (१) मन का चलायमान होना। मन का चंचल होना। (२) लालच उत्पन्न होना। लोभ आना। **मन डोलाना** = (१) मन में चंचलता उत्पन्न करना। मन चलायमान करना। उ०—भोजन करत गह्यो कर रुकमिनि सोई देहु जो मन न डोलावै। सूरदास प्रभु जब निधिदाता जापर कृपा सोई जन पावै।—सूर। (२) लालच उत्पन्न करना। लोभ दिलाना। **अपना मन डोलाना** = लालच करना। **मन देना** = (१) जी लगाना। मन लगाना। उ०—(क) एक बार जो मन देइ सेवा। सेवहि फल प्रसन्न होइ देवा।—जायसी। (ख) रघुपति पुरी जनमु तव भयऊ। पुनि तैं मन सेवा मम दयऊ।—तुलसी। (२) ध्यान देना। **किसी को मन देना** = किसी पर आसक्त होना। मोहित होना। **किसी पर मन धरना** = ध्यान देना। मन लगाना। उ०—(क) त्रास भयो अपराध आप लखि स्तुति करत खरे। सूरदास स्वामी मनमोहन तामे मन न धरे।—सूर (ख) जोई भक्ति भाजन मन धरे। सोई हरि सों मिलि अनुसरे।—लल्लू। **मन तोड़ना वा हारना** = भग्नोत्साह होना। साहस छोड़ना। उ०—अंग बिनु है सबै नहीं एको फबै सुनत देखत जबै कहन लोरे। कहँ रसना सुनत श्रवन देखत नयन सूर सब भेद गुनि मनहि तोरे।—सूर। **किसी से मन फट जाना या फिर जाना** = घृणा होना। नफरत होना। **मन फिराना** = दे० "मन फेरना"। **मनफेरना** = चित्त को हटाना। मन को किसी ओर से अलग करना। प्रवृत्ति बदलना। उ०—फिरि फिरि फेरि फेरि फेर्‍यो मैं हरी को मन फेरै फिरी पुनि भाग की भली घरी।—केशव। **मन बढ़ाना** = साहस दिलाना। उत्साह बढ़ाना। प्रोत्साहित

करना । उ०—दियो शिरपाव नृपराउ ने महर को आप पहरावनी सब दिखाए । अतिहि सुख पाइ कै लियौ सिर नाइ कै हरषि नँदराइ कै मन बढ़ाए ।—सूर । **मन में बसना**=मन में खुभना । पसंद आना । अच्छा लगना । रुचना । भाना । जैसे,—उनकी सूरत तो मेरे मन में बस गई है । उ०—गुर के भेला जिव डरे काया छीजनहार । कुमति कमाई मन बसे लागु जुवा की लार ।—कबीर । **मन बहलाना**=खिन्न वा दुःखी चित्त को किसी काम में लगाकर आनंदित करना । दुःख छोड़कर आनंद से समय काटना । चित्त प्रसन्न करना । जी बहलाना । उ०—ना किसान अब समाचार तहँ आप सुनै हैं। ना नाऊ की बातें सब को मन बहलैहैं ।—श्रीधर पाठक । **मन भरना**=(१) प्रतीति होना । निश्चय या विश्वास होना । (२) संतोष होना । तुष्टि होना । तृप्ति होना । उ०—यह बीसों फूल पर गया, पर इसका मन न भरा ।—अयोध्या । **मन भर जाना**=(१) अघा जाना । तृप्ति होना । (२) अधिक प्रवृत्ति न रह जाना । **मन भाना**=भला लगाना । पसंद होना । रुचना । उ०—(क) बामिन को बामदेव कामिनि को कामदेव रण जयथंभ रामदेव मन ये जू ।—केशव । (ख) भाँति अनेक बिहंगम सुंदर फूलैं फलैं तरु ते मन भावैं ।—प्रताप । (ग) हरिहर ब्रह्मा के मन भाई । विवि अक्षर लै युगुति बनाई ।—कबीर । (घ) कहेहु नीक मोरेहु मन भावा । यह अनुचित नहिं नेवत पठावा ।—तुलसी । **मन भारी करना**=दुःखी होना । उदास होना । **मन मानना**=(१) संतोष होना । तसल्ली होना । उ०—(क) मधुकर कहि कैसे मन मानै । जिनके एक अनन्य व्रत सूझै क्यों दूजो उर आनै ।—सूर । (ख) राजा भा निश्चै मन माना । बाँधा रतन छोड़ि कै आना ।—जायसी । (२) निश्चय होना । प्रतीति होना । उ०—(क) कै बिनु सपथ न अस मन माना । सपथ बोलु बाचा परमाना ।—जायसी । (३) अच्छा लगना । रुचना । पंसद आना । भाना । उ०—सप्त प्रबंध सुभग सोपाना । ज्ञान नयन निरखत मन माना ।—तुलसी । (४) स्नेह होना । अनुराग होना । उ०—सखी री श्याम सों मन मान्यो । नीके करि चित कमल नैन सों घालि एक ठों सान्यो ।—सूर । **किसी से मन मिलना**=(१) प्रेम होना । अनुराग होना । (२) मित्रता होना । दोस्ती होना । **मन में आना**=(१) मन में किसी भाव का उत्पन्न होना । उ०—तासों उन कटु बचन सुनाये । पै ताके मन कछू न आये—सूर । (२) समझ पड़ना । ध्यान में आना । उ०—यह तनु क्यों ही दियौ न जावे । और देत कछु मन नहिं भावे ।—सूर । (३) अच्छा जान पड़ना । भला लगना । **मन में आनना**=दे० "मन में लाना" । **मन में जमना वा बैठना**=(१) ठीक जँचना । उचित वा युक्तियुक्त प्रतीत होना । (२) विचार में आना । ध्यान में आना । **मन में ठानना**=निश्चय करना । दृढ़ संकल्प करना । **मन में धरना**=दे० "मन में रखना"। **मन में भरना**=हृदयंगम करना । **मन में जमाना** । **मन में रखना**=(१) गुप्त रखना । प्रकट न करना । जैसे—अभी यह बात मन ही में रखना; किसी से कहना मत । (२) स्मरण रखना । जैसे—हमारी सब बातें मन में रखना, भूल न जाना । **मन में लाना**=विचार करना । सोचना । ध्यान देना । उ०—कहै पद्माकर झकोर झिल्ली शोरन को मोरन को महत न कोऊ मन ल्यावतो।—पद्माकर। **मन मोहना वा मन को मोहना**=किसी के मन को अपनी ओर आकृष्ट करना । लुभाना । अनुरक्त करना । उ०—जग जदपि दिगंबर पुष्पवती नर निरखि निरखि मन मोहै ।—केशव । **मन मिलना**=दो मनुष्यों की प्रकृति या प्रवृत्तियों का अनुकूल अथवा एक समान होना । जैसे—मन मिले का मेला । नहीं तो सबसे भला अकेला । **मन मारना**=(१) खिन्न चित्त होना । उदास होना । उ०—(क) भूसुत शत्रु थान किन हेरत लखत मोहिं मन मारैं । मुनि रिपु पुत्र-बधू किन वैरिन मोकों देत सवारैं ।—सूर । (ख) मौन गहौं मन मारे रहौं निज पीतम की कहौं कौन कहानी ।—प्रताप । (२) इच्छा को दबाना । मन को वश में करना । उ०—मन नहिं मार मना करी सका न पाँच प्रहारि । सील साँच सरधा नहीं अजहूँ इंद्रि उघारि ।—कबीर । **मन मारे हुए वा मन मारे**=दुःखी । उदास । खिन्न चित्त । उ०—(क) कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे । नाथ साथ धनु हाथ हमारे ।—तुलसी । (ख) प्रिया वियोग फिरत मारे मन परे सिंधु तट आनि । ता सुंदरि हित मोहिं पठायो सकौं न हौं पहिचानि ।—सूर । (ग) भवन ही मन मारि बैठी सहज सखी इक आई । देखि तनु अति विरह ब्याकुल कहति बचन बनाई ।—सूर । (घ) उर धरि धीरज गयउ दुआरे । पूछहिं सकल देखि मन मारे ।—तुलसी । **मन मैला करना**=मन में खिन्न होना । अप्रसन्न या असंतुष्ट होना । उ०—माइ मिले मन का करिहौ मुँह ही के मिले ते किये मन मैले ।—केशव । **किसी से मन मोटा होना**=किसी से अनवन होना । **किसी का मन मोटा होना**=विराग होना । उदासीन होना । **मन मोड़ना**=प्रवृत्ति या विचार को दूसरी ओर लगाना । उ०—विधाता ने हमारा तुम्हारा वियोग कर दिया; मुझे अब मन मोड़ लेना पड़ा ।—तोताराम । **किसी का मन रखना**=किसी की इच्छा पूर्ण करना । किसी के मन में आई हुई बात पूरी करना । उ०—यहाँ के राजाओं से सारे बादशाह दबते थे और इनका वे लोग सब तरह मन रखते थे ।

मन लगना = (१) जी लगना। तबीयत लगना। (२) चित्त विनोद होना। उ०—बिरहागि ह्वै दुगुनी जगै। मन बाग देखत ना लगै।—गुमान। **मन लगाना** = (१) चित्त लगाना। मनोयोग देना। (२) चित्त विनोद करना। मन की उदासी मिटाना। (३) प्रेम करना। अनुराग करना। **मन लाना*** = (१) मन लगाना। जी लगाना। उ०—(क) गगन मँडल माँ भा उजियारा उलटा फेर लगाया। कहै कबीर जन भये विवेकी जिन यंत्री मन लाया।—कबीर। (ख) छमिहहिं सज्जन मोर ढिठाई। सुनिहहिं बाल-बचन मन लाई।—तुलसी। (ग) किये जो परम तरव मन लावा। घूमि मात सुनि और न भावा।—जायसी। (१) प्रेम करना। आसक्त होना। उ०-पवन साँस तोसों मन लाई। जोवै मारग दृष्टि बिछाई।—जायसी। **मन से उतरना** = (१) मन में आदर-भाव न रह जाना। तिरस्कृत होना। घृणित ठहरना। (२) याद न रहना। विस्मृत होना। **मन से उतारना** = (१) मन में पहले का सा आदर भाव न रखना। तिरस्कार करना। घृणा करना। (२) चित्त से उतारना। विस्मृत करना। भुलाना। **मन हरना** = मुग्ध करना। मोहित करना। मोह लेना। अपने ऊपर अनुरक्त करना। उ०—(क) चेटक लाइ हरहिं मन जब लगि हो गरि फेंट। साठ नाट उठि भागहिं ना पहिचान न भेंट।—जायसी। (ख) वह देखो युवति वृंद में ठाढ़ी नील बसन तनु गोरी। सूरदास मेरो मन वाकी चितवन देखि हरेउ री।—सूर। (ग) कानन लसत बिजुरिया मन हरि लीन। तिन पर परै बिजुरिया जिन रचि दीन।—रहीम। (घ) स्वप्न रूप भाषण सुधि करि करि। गयो दुहुन के यहि विधि मन हरि।—शं० दि०। **किसी का मन हाथ में लेना वा करना** = वशीभूत करना। अपने वश में करना। **मन ही मन** = हृदय में। चुपचाप। विना कुछ कहे हुए। भीतर ही भीतर। उ०—(क) ललिता मुख चितवत मुसुकाने। आप हँसी पिय मुख अवलोकत दुहुनि मनहिं मन जाने।—सूर। (ख) प्रथम केलि तिय कलह की, कथा न कछु कहि जाय। अतनु ताप तनुही सहै, मन ही मन अकुलाय।—पद्माकर।

(३) इच्छा। इरादा। विचार।

मुहा०—**मन करना** = इच्छा करना। चाहना। उ०—मन न मनावन को करै देत रुठाय रुठाय। कौतुक लाग्यौ पिय प्रिया खिजहु रिझावति जाय।—बिहारी। **मनमाना** = अपने मन के अनुसार। यथेच्छ। **मन होना** = इच्छा होना। उ०—उमगत अनुराग सभा के सराहे भाग देखि दसा जनक की कहिबे को मनु भयो।—तुलसी।

*संज्ञा पुं० [सं० मणि] (१) मणि। बहुमूल्य पत्थर। (२) चालिस सेर का एक मान या तौल।

मनई‡-संज्ञा पुं० [सं० मानव] मनुष्य। आदमी। उ०—बरसे नीर झराझर मनई उबार न पाये।—गि० दा०।

मनकना-क्रि० अ० [अनु०] (१) हिलना डोलना। चेष्टा करना। हाथ पैर चलाना। उ०—आए दरबार बिललाने छरीदार देखि जापता करनहारे नेकहु न मन के।—भूषण। (२) तर्क वितर्क करना। चीं चपड़ करना।

मनकरा*-वि० [हिं० मणि + कर (प्रत्य०)] चमकदार। प्रकाशमान। उ०—दुइज ललाट अधिक मनकरा। शंकर देखि माथ भुइँधरा।—जायसी।

मनका-संज्ञा पुं० [सं० मणिक वा मणिका] (१) पत्थर, लकड़ी आदि का बेधा हुआ गोल खंड वा दाना जिसे पिरोकर माला या सुमिरनी आदि बनाई जाती है। गुरिया। उ०—माला फेरत जग मुआ गया न मन का फेर। कर का मनका छाँड़ि के मन का मनका फेर।—कबीर। (२) माला या सुमिरनी। (क्व०)

संज्ञा पुं० [सं० मन्यका = गले की नस] गरदन के पीछे की हड्डी जो रीढ़ के बिलकुल ऊपर होती है।

मुहा०—**मनका ढलना या ढलकना** = मरने के समय गरदन टेढ़ी हो जाना। मृत्यु के समय गरदन का एक ओर झुक जाना। (यह अवस्था ठीक मरने के समय होती है; और इसके उपरान्त मनुष्य नहीं बचता।)

मनकामना-संज्ञा स्त्री० [हिं० मन + कामना] मनोरथ। अभिलाषा। इच्छा। उ०—सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहि मनकामना तुम्हारी।—तुलसी।

मनकूला-वि० स्त्री० [अ०] स्थिर या स्थावर का उलटा। चर।

यौ०—जायदाद मनकूला = चर संपति। गैर मनकूला = स्थिर। स्थायी। स्थावर।

मनकूहा-वि० स्त्री० [अ०] जिसके साथ निकाह हुआ हो। विवाहिता। पाणिगृहीता। जैसे,—मनकूहा औरत।

मनगढ़ंत-वि० [हिं० मन + गढ़ना] जिसकी वास्तविक सत्ता न हो, केवल कल्पना कर ली गई हो। कपोल-कल्पित। जैसे,—आपकी सब बातें मनगढ़ंत ही हुआ करती हैं।

संज्ञा स्त्री० कोरी कल्पना। कपोल-कल्पना। जैसे,—यह सब आपकी मनगढ़ंत है।

मनचला-वि० [हिं० मन + चलना] (१) धीर। निडर। जैसे,—मनचला सिपाही। (२) साहसी। हिम्मतवाला। (३) रसिक।

मनचाहता-वि० [हिं० मन + चाहना] [स्त्री० मनचाहती] (१) जिसे मन चाहे। प्रिय। (२) मन के अनुकूल। यथेच्छ।

मनचाहा-वि० [हिं० मन + चाहना] [स्त्री० मनचाही] इच्छित। अभिलषित।

मनचीता-वि० [हिं० मन + चेतना] [स्त्री० मनचीती] मनचाहा। मनभाया। मन में सोचा हुआ। उ०—(क) घर घर

बिसरेउ बढ़ेउ उछाह। मनचीते हरि पायो नाह।—सूर। (ख) मेरे मन को दुख परिहरौ। मनचीतो कारज सब करौ।—लल्लू। (ग) पूरो जदपि भयो नहीं मनचीत्यो रति नाहँ।—लक्ष्मणसिंह।

मनजात-संज्ञा पुं० [हिं० मन + सं० जात] कामदेव। उ०—मनजात किरात निपात किए। मृग लोग कुभोग सरे न हिये।—तुलसी।

मनतोरवा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

मनन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विचार। चिंतन। सोचना। (२) भली भाँति अध्ययन करना। (३) वेदांत शास्त्रानुसार सुने हुए वाक्यों पर बार बार विचार करना और प्रश्नोत्तर वा शंका समाधान द्वारा उसका निश्चय करना।

मननशील-वि० [सं० मनन + शील] जो किसी विषय पर बहुत अच्छी तरह विचार करता हो। विचारशील। विचारवान्।

मननाना-क्रि० अ० [मन् मन् से अनु०] गुंजारना। गूँजना। उ०—मननात भौंर भूषण अमोल झननात झबा झुलनि सरसे।—गुमान।

मनवांछित-वि० दे० "मनोवांछित"। उ०—जागी महरि पुत्र मुँख देखेउ आनँद तूर बजाई। कंचन कलस हेम द्विज पूजा चंदन भवन लिपाई। दिन दसहीं ते बरसे कुसुमनि फूलनि गोकुल छाई। नंद कहै इच्छा सब पूजी मनवांछित फल पाई।—सूर।

मनभाया-वि० [हिं० मन + भाना] [स्त्री० मनभाई] जो मन को भावे। जो अच्छा लगे। मनोनुकूल। उ०—(क) सूरदास प्रभु रसिक शिरोमणि कियो कान्ह ग्वालिनि मन भायो।—सूर। (ख) ख्याल मन भाय कहूँ करिके गोपाल घरै आये अति आलस मढेई बड़े तरके।—पद्माकर। (ग) करत सुहाय सुहाय मनभाय वर पाय सबै करि चतुराई अधिकाय अधिकात है।—प्रताप। (घ) आतुर ह्वै पिय केलि करी सुभरी निज अंक करी मन भाई।

मनभावता-वि० [हिं० मन + भाना] [स्त्री० मनभावती] (१) जो मन को भला लगता हो। (२) प्रिय। प्यारा। उ०—रूपवंत जस दरपन धन तू जाकर कंत। चाही जैस मनोहर मिला सो मनभावंत।—जायसी। (ख) कहि पठई मनभावती पिय आवन की बात। फूली आँगन में फिरै आँगन अंग समात।—बिहारी। (ग) मोहिं तुम्हें न उन्हें न इन्हैं, मनभावती सो न मनावन ऐहै।—पद्माकर।

मनभावन-वि० [हिं० मन + भाना] (१) मन को अच्छा लगनेवाला। उ०—चरण धोइ चरणोदक लीनो माँगि देउँ मनभावन। तीन पैंड़ वसुधा हौं चाहौं परणकुटी को छावन।—सूर (२) प्रिय। प्यारा। उ०—(क) भले सुदिन भये पूत अमर अजरावन रे। जुग जुग जीवहु कान्ह सबही मनभावन रे।—सूर। (ख) केशवदास सुंदर भवन ब्रजसुंदरी के मानो मनभावने के भावते भवन हैं।—केशव। (ग) शंख भेरि निशान बाजहिं नचहिं शुद्ध सुहावनी। भाट बोलैं विरद नारी बचन कहैं मनभावनी।—सूर।

मनमत*†-वि० दे० "मैमंत"।

मनमति-वि० [हिं० मन + मति] अपने मन का काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी। उ०—भाई, ये मनमति होना अच्छा नहीं; किसी की बात भी मान लेना चाहिए।—श्रद्धाराम।

मनमथ-संज्ञा पुं० दे० "मन्मथ"।

मनमानता-वि० [हिं० मन + मानना] मनमाना। मनचाहा। मनोवांछित। उ०—सब ग्वालों ने प्रसन्न हो निधड़क फूल तोड़ मनमानती झोलियाँ भर लीं।—लल्लू।

मनमाना-वि० [हिं० मन + मानना] [स्त्री० मनमानी] (१) जिसे मन चाहे। जो मन को अच्छा लगे। उ०—तुलसी विदेह की सनेह की दसा सुमिरि, मेरे मन माने राउ निपट सयाने हैं।—तुलसी। (२) मन के अनुकूल। मनोनीत। पसंद। उ०—पालने आन्यो, सबहि अति मन मान्यो, नीको सो दिन धराइ, सखिन मंगल गवाइ, रंगमहल में पौढ्यौ है कन्हैया।—सूर। (३) यथेच्छ। इच्छानुकूल। मनचाहा। जैसे,—आप किसी की बात तो मानते ही नहीं। हमेशा मनमाना करते हैं।

मनमुखी†-वि० [हिं० मन + मुख्य] मनमाना काम करनेवाला। स्वेच्छाचारी। उ०—गुरु द्रोही औ मनमुखी नारी पुरुष विचार। ते नर चौरासी भ्रमहिं जब लगि शशि दिन कार।—कबीर।

मनमुटाव-संज्ञा स्त्री० [हिं० मन + मोटा] मन में भेद पड़ना। मन मोटा होना। वैमनस्य होना।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

मनमोदक-संज्ञा पुं० [हिं० मन + मोदक] अपनी प्रसन्नता के लिये बनाई हुई असंभव या कल्पित बात। मन का लड्डू। उ०—वृथा मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकन्हि कि भूख बुताई।—तुलसी।

मनमोहन-वि० [हिं० मन + मोहन] [स्त्री० मनमोहनी] (१) मन को मोहनेवाला। मन को लुभानेवाला। चित्ताकर्षक। मुग्ध कारक। उ०—रूप जगत मनमोहन जेहि पद्मावति नाउँ। कोटि दरब तुहि देहौं आनि करेसि इक ठाउँ।—जायसी। (२) प्रिय। प्यारा।

संज्ञा पुं० (१) श्रीकृष्णचंद्र का एक नाम। उ०—मनमोहन खेलत चौगान। द्वारावती कोट कंचन में रच्यो रुचिर मैदान।—सूर। (२) एक मात्रिक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चौदह मात्राएँ होती हैं, जिनमें से अंतिम तीन मात्राओं का लघु होना आवश्यक है। उ०—तुमहि

निहोरे खुले करम। तुमही भजे पावही धरम। (३) एक प्रकार का सदाबहार वृक्ष जो बरमा, जावा आदि देशों में होता है। यह सीधा और ऊँचा होता है। इसकी लकड़ी साफ होती है और इस पर रंग खूब खिलता है। इसके फूल बहुत सुगंधित होते हैं जिनसे इतर निकाला जाता है। इस इतर को इलंग कहते हैं और यूरोप में इसकी बहुत खपत होती है। इसे अब लोग बंगाल में भी बागों में लगाते हैं। यह बीजों से उगता है।

मनमौजी-वि० [हिं० मन+मौज] मन की मौज के अनुसार काम करनेवाला। मनमाना काम करनेवाला।

मनरंज*-वि० [हिं० मन+रंजना] मनोरंजन करनेवाला। मनोरंजक। उ०—तुमसों कीजै मान क्यों बहु नाहक मन रंज। बात कहत यों बाल कै भरि आये दग कंज।—मतिराम।

मनरंजन-वि० [हिं० मन+रंजना] मनोरंजन करनेवाला। मन को प्रसन्न करनेवाला। मनोरंजक। उ०—(क) भृंगी री भज चरण कमल पद जहँ नहिं निशि को त्रास। जहँ बिधु भानु समान प्रभा नख सो वारिज सुख-रास। जिहिं किंजल्क भक्ति नव लक्षण काम ज्ञान रस एक। निगम सनक शुक नारद शारद मुनि जन भृंग अनेक। शिव बिरंचि खंजन मनरंजन छिन छिन करत प्रवेश। अखिल कोश तहँ बसत सुकृत जन परगट श्याम दिनेश। सुनि मधुकरी भरम तजि निर्भय राजिव वर की आस। सूरज प्रेम सिंधु में प्रफुलित तहँ चलि करे निवास।—सूर। (ख) थिरकत सहज सुभाव सों चलत चपल गत सैन। मनरंजन रिझवार के खंजन तेरे नैन।—रसनिधि।

संज्ञा पुं० दे० "मनोरंजन"।

मन लाडू*-संज्ञा पुं० दे० "मनमोदक"। उ० - धर्म अर्थ कामना सुनावत सब सुख मुक्ति समेति। काकी भूख गई मन लाडू सो देखहु चित चेत।—सूर।

मनवाँ-संज्ञा पुं० [देश०] नरमा। देव कपास। रामकपास।

मनवाना-क्रि० स० [हिं० मानना का प्रेर०] मानने का प्रेरणार्थक रूप। मानने के लिये प्रेरणा करना। किसी को मानने में प्रवृत्त करना। उ०—भावत ही की सखी सों भट्ट मम भावते भावती को मनवायो।—रघुनाथ।

क्रि० स० [हिं० मनाना] मनाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को मनाने में प्रवृत्त करना।

मनशा-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) इच्छा। विचार। इरादा। (२) तात्पर्य्य। मतलब। अर्थ।

मनसना*-क्रि० स० [हिं० मानस, सं० मनस्यन] (१) इच्छा करना। विचार करना। इरादा करना। उ०—(क) भँवर जो मनसा मानं सर लीन्ह कमल रस आय। घुन हियाव न कै सका झूर काठ तस खाय।—जायसी। (ख) पवन बाँध अपसरहिं अकासा। मनसहि जहाँ जाहिं तहँ बासा।—जायसी (ग) याही ते शूल रही शिशुपालहि। सुमिरि पछताति सदा वह मान भंग के कालहि। दुलहिनि कहति दौरि दीजहु द्विज पाती नँद के लालहि। वर सुबरात बुलाइ बड़े हित मनसि मनोहर बालहि।—सूर। (२) संकल्प करना। दृढ़ निश्चय या विचार करना। उ०—जोई चाहै सोई लेइ मने नहिं कीजै यह शिव के चढ़ाइबे को मनस्यो कमल है।—रघुनाथ। (३) हाथ में जल लेकर संकल्प का मंत्र पढ़कर कोई चीज दान करना।

मनसब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पद। स्थान। उ०—पक्का मतो करि मलिच्छ मनसब छोड़ि मक्का के मिसि उतरत दरियाव हैं।—भूषण।

यौ०—मनसबदार।

(२) कर्म। काम। (३) अधिकार। (४) वृत्ति।

मनसबदार-संज्ञा पुं० [फा०] वह जो किसी मनसब पर हो। उच्चपदस्थ पुरुष। ओहदेदार। उ०—मंसन की कहा है मतंगनि के माँगिबे को मनसबदारनि के मन ललकत हैं।—मतिराम।

मनसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम। पुराणानुसार यह जरत्कारु मुनि की पत्नी और आस्तीक की माता थी तथा कश्यप की पुत्री और वासुकी की बहिन थी।

संज्ञा स्त्री० [सं० मानस वा अ० मनशा] (१) कामना। इच्छा। उ०—(क) तन सराय मन पाहरू मनसा उतरी आय। कोउ काहू को है नहीं सब देखे ठोंक बजाय।—कबीर। (ख) छिन न रहै नँदलाल इहाँ बिनु जो कोउ कोटि सिखावै। सूरदास ज्यों मन ते मनसा अनत कहूँ नहिं जावै।—सूर। (२) संकल्प। अध्यवसाय। इरादा। उ०—(क) देव नदी कहँ जोजन जानि किए मनसा कुलकोटि उघारे।—तुलसी। (ख) मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही।—तुलसी। (३) अभिलाषा। मनोरथ। उ०—(क) मनसा को दाता कहै श्रुति प्रभु प्रवीन को।—तुलसी। (ख) कहा कमी जाको राम धनी। मनसा नाथ मनोरथ पूरण सुख-निधान जाको मौज घनी।—सूर। (४) मन। उ०—(क) विफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के।—तुलसी। (५) बुद्धि। उ०—युगल कमल सों मिलत कमल युग युगल कमल ले संग। पाँच कमल मधि युगल कमल लखि मनसा भई अपंग।—सूर। (६) अभिप्राय। तात्पर्य्य। प्रयोजन। उ०—प्रभु मनसहिं लवलीन मनु चलत बाजि छबि पाव। भूपित उड़गन तड़ित घन जनु वर बरहिं नचाव।—तुलसी।

वि० (१) मन से उत्पन्न। (२) मन का। उ०—धर्म

विचारत मन में होई। मनसा पाप न लागत कोई।—सूर।
क्रि० वि० मन से। मन के द्वारा। उ०—मनसा वाचा कर्मणा हम सों छाँड़हु नेहु। राजा को विपदा परी तुम तिनकी सुधि लेहु।—केशव।
संज्ञा पुं० दे० "मसी"।

मनसाना–क्रि० अ० [हिं० मनसा] उमंग में आना। तरंग में आना।
क्रि० स० [हिं० मनसना का प्रेर०] मनसने का काम दूसरे से कराना। संकल्प का मंत्र आदि पढ़कर या पढ़ाकर दूसरे से दान आदि कराना।

मनसा पंचमी–संज्ञा स्त्री० [सं०] आषाढ़ की कृष्ण पंचमी। इस दिन मनसा देवी का उत्सव होता है।

मनसायन†–वि० [हिं० मानुस = मनुष्य + आयन (प्रत्य०)] (१) वह स्थान जहाँ मन-बहलाव के लिये कुछ लोग हों।
मुहा०—मनसायन करना या रखना = बात चीत आदि के द्वारा इस प्रकार किसी का मन बहलाना जिसमें उसे अकेले होने का कष्ट न जान पड़े।
(२) मनोरम स्थान। गुलजार।

मनसिज–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मनसूख–वि० [अ०] (१) जो अप्रामाणिक ठहरा दिया गया हो। अतिवर्तित। जैसे—डिगरी मनसूख कराना। (२) परित्यक्त। त्यागा हुआ। जैसे—हमने वहाँ जाने का इरादा मनसूख कर दिया।

मनसूखी–संज्ञा स्त्री० [अ०] मनसूख होने का भाव या क्रिया।

मनसूबा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) युक्ति। आयोजन। ढंग। उ०—(क) अब कीजै कैसा मनसूबा। हैं हैरान सींगरे सूबा।—लाल। (ख) लंक की विशालता लै उरज उतंग भये रंग कवि दूलह है तेरे मनसूबे को।—दूलह।
क्रि० प्र०—करना।—ठानना।—होना।
मुहा०—मनसूबा बाँधना = युक्ति निकालना। ढंग सोचना। उ०—उसने पक्का मनसूबा बाँधा था कि यदि लड़ाई हो तो आप धनुष बान लेके हाथी पर फौज के साथ जावे।—शिवप्रसाद।
(२) इरादा। विचार। उ०—शकटार अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला लेने की इच्छा से अपने प्राण नहीं त्याग किये।—हरिश्चंद्र।

मनसूर–संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रसिद्ध मुसलमान साधु जो सूफी मत का आचार्य्य माना जाता है। यह नवीं शताब्दी में बैजानगर में हुसेन हल्लाज के घर उत्पन्न हुआ था। यह "अनलहक" अर्थात् "अहं ब्रह्मास्मि" कहा करता था। बगदाद के खलीफा मकतदिर ने इसे इस्लाम धर्म का विरोधी समझकर सन् ९१९ ईस्वी में सूली पर चढ़ा दिया और इसके शव को भस्म करा दिया था।

मनसेधू†–संज्ञा पुं० [सं० मनुष्य] पुरुष। आदमी।

मनस्क–संज्ञा पुं० [सं०] मन का अल्पार्थक रूप। इसका प्रयोग समस्त पदों में देखा जाता है। जैसे—अन्य मनस्क।

मनस्कांत–वि० [सं०] (१) मनोनीत। मन के अनुकूल। (२) प्रिय। प्यारा।
संज्ञा पुं० मन की अभिलाषा। मनोरथ।

मनस्काम–संज्ञा पुं० [सं०] मन की अभिलाषा। मनोरथ।

मनस्ताप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनःपीड़ा। आंतरिक दुःख। (२) अनुताप। पश्चात्ताप। पछतावा।

मनस्ताल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरताल। (२) दुर्गा देवी के सिंह का नाम।

मनस्तोका–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गाजी का एक नाम।

मनस्विनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मृकंडु ऋषि की पत्नी का नाम। (२) प्रजापति की एक स्त्री का नाम जिससे सोम की उत्पत्ति हुई थी।

मनस्वी–वि० [सं० मनस्विन्] [स्त्री० मनस्विनी] (१) श्रेष्ठ मन से संपन्न। बुद्धिमान्। उच्च विचारवाला। (२) मनमौजी। स्वेच्छाचारी।
संज्ञा पुं० शरभ।

मनहंस–संज्ञा पुं० [हिं० मन + हंस] पंद्रह अक्षरों के एक वर्णिक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सगण, फिर दो जगण, फिर भगण और अंत में रगण होता है (स ज ज भ र) इसे मानसहंस भी कहते हैं। उ०—बिरहीन को पलखात हौ यहि नाम सों। यहि ते पलाश प्रसिद्ध हौ गति वाम सों। कछु फूल लागत लाल हैं तेहि हेतु सों। इमि देखि के पुहुमी पुरंदर चेत सों।

मनहर–वि० [हिं० मन + हरना वा सं० मनोहर] मन हरनेवाला। मनोहर।
संज्ञा पुं० घनाक्षरी छंद का एक नाम। दे० "घनाक्षरी"।

मनहरण–संज्ञा पुं० [हिं० मन + हरण] (१) मन हरने की क्रिया वा भाव। (२) पंद्रह अक्षरों का एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में पाँच सगण होते हैं। इसे नलिनी और भ्रमरावली भी कहते हैं। उ०—दुर्जन की हानि विरधापनोई करै पर गुण लोप होत इक मोतिन को हारही।
वि० मनोहर। सुंदर।

मनहरन*–संज्ञा पुं० दे० "मनहरण"।
वि० [स्त्री० मनहरनी] मन हरनेवाला। उ०—जदपि पुराने बक तऊ सरवर निपट कुचाल। नये भये तु कहा भये ये मनहरन मराल।—बिहारी।

मनहार–वि० दे० "मनोहारी"।

मनहारि–वि० दे० "मनोहारी।

मनहुँ*–अव्य० हिं० मानना या मानों] मानों। जैसे। यथा।

उ०—(क) चाहहु सुनइ राम गुन गूढ़ा। कीन्हहुँ प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा।—तुलसी। (ख) पंडित अति सिगरी पुरी मनहुँ गिरा गति गूढ़। सिंहनि युत जनु चंडिका मोहत मूढ़ अमूढ़।—केशव।

मनहूस-वि० [अ०] (१) अशुभ। बुरा। जैसे—उँगलियाँ तोड़ना बहुत मनहूस है। (२) अप्रिय-दर्शन। जो देखने में बेरौनक जान पड़े। जैसे—वाह, क्या मनहूस सूरत है! (३) सुस्त। आलसी। निकम्मा।

मना-वि० [अ०] (१) जिसके संबंध में निषेध हो। निषिद्ध। वर्जित। जैसे—मनुजी के धर्मशास्त्र में पासा खेलना मना है। (२) जो कुछ करने से रोका गया हो। वारण किया हुआ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल विधेय रूप में होता है। जैसे—"यह काम मना है"। यह नहीं कहते—"मना काम न करना चाहिए।"

(३) अनुचित। नामुनासिब।

मनाई-संज्ञा स्त्री० दे० "मनाही"।

मनाक्-वि० [सं०] (१) अल्प। थोड़ा। मंद।

मनाक, मनाग-वि० [सं० मनाक्] अल्प। थोड़ा। ज़रा सा। उ०—(क) टूटत पिनाक के मनाक बाम राम से ते नाक बिनु भये भृगुनायक पलक में।—तुलसी। (ख) दाहिनो दियो पिनाकु सहमि भयो मनाकु महाव्याल विकल त्रिलोकि जनु जरी है।—तुलसी। (ग) अस्थि मात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा।—तुलसी।

मनाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी।

मनादी-संज्ञा स्त्री० दे० "मुनादी"।

मनाना-क्रि० स० [हिं० मानना का प्रे०] (१) दूसरे को मानने पर उद्यत करना। यह कहलवाना कि हाँ कोई बात ऐसी ही है। स्वीकार कराना। सकरवाना। (२) जो अप्रसन्न हो, उसे संतुष्ट या अनुकूल करना। रूठे हुए को प्रसन्न करना। राज़ी करना। जैसे—वह रूठा था; हमने मना लिया। उ०—(क) सो सुकृति सुचि मंत सुसंत सुसील सयान सिरोमनि स्वै। सुर तीरथ ताहि मनावन आवत पावन होत है तात न छ्वै।—तुलसी। (ख) मोहिं तुम्हैं न उन्हैं न इन्हैं मनभावती सो न मनावन आइहै।—पद्माकर। (३) अप्रसन्न को प्रसन्न करने के लिये अनुनय विनय करना। रूठे हुए को प्रसन्न करने के लिये मीठी मीठी बातें करना। मनुहार करना। उ०—(क) जैसे आव तैसे साधि सौंहनि मनाई लाई तुम इक मेरी बात एती बिसरैयो ना।—पद्माकर। (ख) केतो मनावै पाउँ परि केतो मनावै रोइ। हिंदू पूजै देवता तुरुक न काहुक होइ।—कबीर। (ग) लाज किये जो पिय नहिं पाऊँ। तजों लाज कर जोरि मनाऊँ।—जायसी। (४) देवता आदि से किसी काम के होने के लिये प्रार्थना करना। उ०—(क) यह कहि कहि देवता मनावति। भोग समग्री धरति उठावति।—सूर। (ख) सुकृति सुमिरि मनाइ पितर सुर सीस ईस पद नाइ कै। रघुवर कर धनुभंग चहत सब अपनो सो हित चित लाइ कै।—तुलसी। (५) प्रार्थना करना। स्तुति करना। (क) तुम सब सिद्ध मनावहु होइ गणेश सिध लेहु। चेला को न चलावै मिलै गुरु जेहि भेउ।—जायसी। (ख) ताके युग पद कमल मनाऊँ। जासु कृपा निरमल मति पाऊँ।—तुलसी। (ग) करी प्रतिज्ञा कहेउ भीष्म मुख पुनि पुनि देव मनाऊँ। जो तुम्हरे कर शर न गहाऊँ गंगा-सुत न कहाऊँ।—सूर।

मनार-संज्ञा पुं० दे० "मीनार"।

मनाल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चकोर जो शिमले की ओर होता है। इसके सुंदर परों के लिये इसका शिकार किया जाता है।

मनावन†-संज्ञा पुं० [हिं० मनाना] (१) मनाने की क्रिया। (२) रूठे हुए को प्रसन्न करने का काम। (३) मनाने का भाव।

मनावी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मनु की स्त्री का नाम।

मनाही-संज्ञा स्त्री० [हिं० मना] न करने की आज्ञा। रोक। अवरोध। निषेध। उ०—मुकर्रर तादाद से जियादा जमीन, गाय-बैल-बकरी रखने की मनाही थी।—शिवप्रसाद।

मनि-संज्ञा स्त्री० दे० "मणि"।

मनिका†-संज्ञा स्त्री० [सं० मणि] माला में पिरोया हुआ दाना। गुरिया। दाना। उ०—माला फेरत युग गया गया न मन का फेर। कर का मनिका छोड़िकै मन का मनिका फेर।—कबीर।

मनित-वि० [सं०] जात। उत्पन्न।

मनिधर*-संज्ञा पुं० दे० "मणिधर"।

मनिया-संज्ञा स्त्री० [सं० माणिक्य, हिं० मनिका] (१) गुरिया। मनिका। दाना जो माला में पिरोया हो। (२) कंठी। गुरिया। माला। उ०—हौं करि रही कंठ में मनियाँ निर्गुन कहा रसहि ते काज। सूरदास सरगुन मिलि मोहन रोम रोम सुख साज।—सूर।

मनियार†*-वि० [हिं० मणि + आर प्र०] (१) देदीप्यमान। उज्वल। चमकीला। (२) दर्शनीय। शोभायुक्त। स्वच्छ। रौनकदार। सुहावना। उ०—बन कुसुमित गिरगन मनियारा। स्रवहिं सकल सरितामृत धारा।—तुलसी।

मनिहार-संज्ञा पुं० [हिं० मणिकार प्रा० मनियार] [स्त्री० मनिहारिन] चूड़ी बनानेवाला। चुड़िहारा।

मनी*-संज्ञा स्त्री० [हिं० मान = अभिमान] अहंकार। उ०—(क) हो ये भलो ऐसेही अजहुँ गये राम सरन परिहरि मनी। भुजा उठाइ साखि संकर करि कसम खाइ तुलसी भनी।—तुलसी। (ख) मति समान जाके मनी नैकि न आवत पास।

रसनिधि भावक करत है ताही मन में बास।—रसनिधि।

* संज्ञा स्त्री० (१) दे० "मणि"। (२) वीर्य्य।

मनी आर्डर-संज्ञा पुं० [अं०] रुपए की हुंडी जो किसी के रुपया चुकाने पर एक डाकखाने से दूसरे डाकखाने में इसलिये भेजी जाती है कि वह वहाँ के किसी मनुष्य को हुंडी में लिखी रक़म चुका दे। एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपया प्रायः लोग इसी प्रकार डाकखाने की मारफ़त भेजा करते हैं।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—भेजना।

मनीक-संज्ञा पुं० [सं०] आँजन।

मनीरा†-संज्ञा स्त्री० [देश०] मोरनी।

मनीषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धि। अक़्ल। (२) स्तुति। प्रशंसा।

मनीषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धि। मनीषा।

मनीषित-वि० [सं०] मनोभिलषित। वांछित।

मनीषिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धिमत्ता। बुद्धिमानी।

मनीषि-वि० [सं०] (१) पंडित। ज्ञानी। (२) बुद्धिमान्। मेधावी। अक़्लमंद।

मनु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा के पुत्र जो मनुष्यों के मूल पुरुष माने जाते हैं।

विशेष—वेदों में मनु को यज्ञों का आदि प्रवर्तक लिखा है। ऋग्वेद में कण्व और अत्रि को यज्ञ-प्रवर्तन में मनु का सहायक लिखा है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि मनु एक बार जलाशय में हाथ धोते थे; उसी समय उनके हाथ में एक छोटी सी मछली आई। उसने मनु से अपनी रक्षा की प्रार्थना की और कहा कि आप मेरी रक्षा कीजिए; मैं आपकी भी रक्षा करूँगी। उसने मनु से एक आनेवाली बाढ़ की बात कही और उन्हें एक नाव बनाने के लिये कहा। मनु ने उस मछली की रक्षा की; पर वह मछली थोड़े ही दिनों में बहुत बड़ी हो गई। जब बाढ़ आई, तब मनु अपनी नाव पर बैठकर पानी पर चले और अपनी नाव उस मछली की आड़ में बाँध दी। मछली उत्तर को चली और हिमालय पर्वत की चोटी पर उनकी नाव उसने पहुँचा दी। वहाँ मनु ने अपनी नाव बाँध दी। उस बड़े ओघ से अकेले मनु ही बचे थे। उन्हीं से फिर मनुष्य जाति की वृद्धि हुई। ऐतरेय ब्राह्मण में मनु के अपने पुत्रों में अपनी संपत्ति का विभाग करने का वर्णन मिलता है। उसमें यह भी लिखा है कि उन्होंने नाभानेदिष्ठ को अपनी संपत्ति का भागी नहीं बनाया था। निघंटु में 'मनु' शब्द का पाठ द्युस्थान देव-गणों में है और वाजसनेय संहिता में मनु को प्रजापति लिखा है। पुराणों और सूर्य्य सिद्धांत आदि ज्योतिष के ग्रंथों के अनुसार एक कल्प में चौदह मनुओं का अधिकार होता है और उनके अधिकार-काल को मन्वंतर कहते हैं। चौदह मनुओं के नाम ये हैं:— (१) स्वायम्भू। (२) स्वारोचिष। (३) उत्तम। (४) तामस। (५) रैवत। (६) चाक्षुष। (७) वैवस्वत। (८) सावर्णि। (९) दक्ष सावर्णि। (१०) ब्रह्म सावर्णि। (११) धर्म सावर्णि। (१२) रुद्र सावर्णि। (१३) देव सावर्णि और (१४) इंद्र सावर्णि। वर्तमान मन्वंतर वैवस्वत मनु का है। मनुस्मृति में मनु को विराट का पुत्र लिखा है और मनु से दस प्रजापतियों की उत्पत्ति लिखी है। (२) विष्णु। (३) अंतःकरण। मन। (४) जैनियों के अनुसार एक जिन का नाम। (५) कृष्णाश्व के एक पुत्र का नाम। (६) मंत्र। (७) वैवस्वत मनु। (८) अग्नि। (९) एक रुद्र का नाम। (१०) १४ की संख्या। (११) ब्रह्मा।

संज्ञा स्त्री० (१) मनु की स्त्री। मनावी। (२) बनमेथी का साग। पृक्का।

अव्य० [हिं० मानना] मानों। जैसे। उ०—(क) रतन जड़ित कंकण बाजू बंद नगन मुद्रिका सोहै। डार डार मनु मदन विटप तरु विकच देखि मन मोहै।—सूर। (ख) मोर मुकुट की चंद्रिकन यों राजत नँदनंद। मनु ससि सेखर की अकस किये सिखा सत चंद।—बिहारी।

मनुआँ†*-संज्ञा पुं० [हिं० मन] मन। उ०—(क) मनुआँ चाह देख और भोगू। पंथ भुलाइ विनासै जोगू।—जायसी। (ख) चंचल मनुआँ दुहुँ दिसि धावत अचल जाहि ठहरानो। कहु नानक यहि विधि को जो नर मुक्ति ताहि तुम मानो।—तेगबहादुर।

संज्ञा पुं० [हिं० मानव] मनुष्य। उ०—खाय पकाय लुटाय ले ऐ मनुआँ मेहवान। लेना होय सो लेइ ले यही गोइ मैदान।—कबीर।

संज्ञा पुं० [देश०] देव कपास। नरमा। मनवाँ।

मनुग-संज्ञा पुं० [सं०] प्रियव्रत के पौत्र और द्युतिमान् के पुत्र का नाम।

मनुज-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मनुजा, मनुजी] मनुष्य। आदमी।

मनुजात-वि० [सं०] मनु से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० मनुष्य। आदमी।

मनुजाद-वि० [सं०] नर-भक्षक। मनुष्यों को खानेवाला।

संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

मनुजाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

मनुज्येष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तलवार। (२) लाठी।

मनुयुग-संज्ञा पुं० [सं०] मन्वंतर।

मनुश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

मनुष*-संज्ञा पुं० [सं० मनुष्य] (१) मनुष्य। आदमी। उ०—कह्यो तिन तुम्हैं हम मनुष जानत नहीं जगतपितु जगत हित देह धार्‍यो। करोगे काज जो कियो ना कोउ नृपति किए जस जाय हम दोष सारो।—सूर। (२) पति।

खाविंद। उ०—माप मोर मनुष है अति सुजान। धंधा कूटि कूटि करै बिहान—कबीर।

मनुषी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री।

मनुष्य-संज्ञा पुं० [सं०] जरायुज जाति का एक स्तनपायी प्राणी जो अपने मस्तिष्क या बुद्धि बल की अधिकता के कारण सब प्राणियों में श्रेष्ठ है। आदमी। नर।

विशेष—मनुष्य महाभूत कहा गया है। प्राचीन ग्रंथों में सृष्टि के आदि में प्रायः सब जीव जंतुओं की उत्पत्ति एक साथ बताई गई है। पर आधुनिक प्राणि-विज्ञान के अनुसार मूल अणुजीवों से क्रमशः उन्नति प्राप्त करते हुए एक के पीछे दूसरे उन्नत जीव होते गए हैं। जैसे बिना रीढ़वाले जीवों से रीढ़वाले अंडज जीव हुए। फिर उन्हीं से जरायुज हुए। जरायुजों में सब के पीछे किंपुरुष वर्ग के बंदर या बनमानुस हुए। वनमानुसों से होते होते अंत में मनुष्य हुए। वैज्ञानिकों ने मनुष्य को पाँच प्रधान जातियों में बाँटा है—(१) काकेशी, जिसके अंतर्गत आर्य्य और असुर (सामी) हैं। (२) मंगोल (चीन, जापान आदि के पीले लोग)। (३) हब्शी। (४) अमेरिकन। और (५) मलाया।

पर्य्या०—मानुप। मनुज। मानव। नर। द्विपद।

मनुष्यकार-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषकार। उद्योग। प्रयत्न।

मनुष्यगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह कर्म जिसके करने से मनुष्य बार बार मरकर मनुष्य ही का जन्म पाता है। ऐसे कर्म पर-स्त्रीगमन, मांस-भक्षण, चोरी आदि बतलाए गए हैं।

मनुष्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मनुष्य का भाव। आदमीपन। (२) दया भाव। चित्त की कोमलता। शील। (३) सभ्यता, शिष्टता। व्यवहार ज्ञान। तमीज़। आदमीयत।

मनुष्यत्व-संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यता। आदमीयत।

मनुष्यधर्मा-संज्ञा पुं० [सं० मनुष्यधर्मन्] कुबेर।

मनुष्ययज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि का आदर सम्मान। अतिथियज्ञ। नृयज्ञ।

मनुष्यरथ-संज्ञा पुं० [सं०] वह रथ जिसे मनुष्य खींचते हैं। नर-रथ।

मनुष्यराशि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या राशि।

मनुष्यलोक-संज्ञा पुं० [सं०] मर्त्यलोक। भू लोक।

मनुसाई *†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मनुस + आई] (१) पुरुषार्थ। पराक्रम। बहादुरी। उ०—(क) साखा मृग के बड़ मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई।—तुलसी। (ख) जो अस करउँ न तदपि बड़ाई। मुयेहि बधे कछु नहिं मनुसाई।—तुलसी। (२) मनुष्यता। आदमीयत।

मनुस्मृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म शास्त्र के एक प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम जो मनु-प्रणीत है। कहा जाता है कि पहले मनुस्मृति में एक लाख श्लोक थे। फिर उसका संक्षेप बारह हजार श्लोकों में किया गया और अंत को उसका संक्षेप चार हजार श्लोकों में किया गया। आज कल की मनुस्मृति में ढाई हजार से कुछ ही अधिक श्लोक मिलते हैं। यह भृगु-प्रोक्त कहलाती है और इसमें बारह अध्याय हैं। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति, संस्कार, नित्य और नैमित्तिक कर्म, आश्रम धर्म, राजधर्म, वर्णधर्म, प्रायश्चित्त आदि विषयों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त एक नारद प्रोक्त मनु संहिता का भी पता चलता है; पर वह पूरी नहीं मिलती। मानव धर्मशास्त्र।

मनुहार-संज्ञा स्त्री० [हिं० मान + हरना] (१) वह विनती जो किसी का मान छुड़ाने वा क्रोध शांत करके उसे प्रसन्न करने के लिये की जाती है। मनौआ। खुशामद। उ०—(क) मारौ मनुहरन भरी गारिउ भरी मिठाहिं। वाको अति अनखाहटौ मुसुकाहट बिनु नाहिं।—बिहारी। (ख) तुम न बिहारी नेकु मानो मनुहारी हम पायँ परि हारी अरु करि हारी नहियाँ।—तोष।

मुहा०—किसी की मनुहार करना = विनती करना। खुशामद करना। मनाना। उ०—(क) तुम्हरे हेतु हरि लियो अवतार। अब तुम जाइ करो मनुहार।—सूर। (ख) दुसह रोष मूरति भृगुपति अति नृपति निकर पयकारी। क्यों सौंपेउ सारंग हारि हिय करिहै बहु मनुहारी।—तुलसी। (ग) कहत रुद्र मन माहिं विचारि। अब हरि की कीजै मनुहारि।—लल्लू। (घ) जो मेरो कृत मानहु मोहन करि लाओ मनुहारि। सूर रसिक तबही पै बदिहौं मुरली सकी न सँभारि।—सूर। (२) विनय। प्रार्थना। उ०—(क) तापसी करि कहा पठवति नृपनि को मनुहारि। बहुरि तेहि विधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि।—तुलसी। (ख) सबै करति मनुहारि ऊधो कहियो हो जैसे गोकुल आवैं।—सूर। (३) सत्कार। आदर। उ०—सौं हैं किये हू न सौं हैं करे मनुहार करेहू न सूध निहारे।—केशव।

मनुहारना *†-क्रि० स० [हिं० मान + हरना] (१) मनाना। खुशामद करना। उ०—(क) पूजा करेउ बहुत मनुहारी। बोले मीठे बचन बिचारी।—सबलसिंह। (ख) कै पटुता परवीन तिया मनुहरि बाल कहै मन माने।—प्रताप। (२) विनय करना। प्रार्थना करना। उ०—निग्रहानुग्रह जो करै अरु देइ आशिष गारि। सो सबै सिर मानि लीजै सर्वथा मनुहारि।—केशव। (३) सत्कार करना। आदर करना। उ०—सुरभी ऐन कुंभ सम धारै। नंदिनि धेनु सरिस मनुहारै।—मन्नालाल। (४) खुशामद करना।

मनूरी-संज्ञा स्त्री० [अ० मुनौवर] एक प्रकार की बुकनी जो मुरादाबादी कलई के बर्तनों को उजला करने में काम आती

है। यह धातुओं को गलाने की पुरानी घरियों को कूटकर बनाई जाती है।

मने†-वि० दे० "मना"। (क) जानि नाम अजान लीन्हे नरक जमपुर मने।—तुलसी। (ख) शिव सुपूजन माँह मने करे मनहु सो अपकीरति सों भरे।—गुमान।

मनेजर-संज्ञा पुं० [अं०] किसी कार्य्यालय आदि का वह प्रधान अधिकारी जिसका काम सब प्रकार की व्यवस्था और देख रेख करना हो। प्रबंधकर्त्ता।

मनो†-अव्य० [हिं० मानना] मानो। जैसे। उ०—(क) मनो सर्व स्त्रीन में कामवामा। हनूमान ऐसी लखी रामरामा।—केशव। (ख) मकराकृत गोपाल के कुंडल सोहत कान। धस्यो मनो हिय घर समर ड्योढ़ी लसत निसान।—बिहारी।

मनोकामना-संज्ञा स्त्री० [हिं० मन+कामना] इच्छा। अभिलाषा।

मनोगत-वि० [सं०] जो मन में हो। मन में आया हुआ। दिली।

मनोगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मन की गति। चित्त-वृत्ति। (२) इच्छा। आंतरिक अभीष्ट। ख़ाहिश। उ०—किंतु विधिना की यही मनोगति थी।—दुर्गेशनंदिनी।

मनोगवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इच्छा। अभिलाषा।

मनोगुप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल।

मनोगुप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन शास्त्रानुसार मन को अशुभ प्रवृत्ति से हटाने की क्रिया वा भाव।

मनोज-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। मदन।

मनोजव-वि० [सं०] (१) मन के समान वेगवान्। अत्यंत वेगवान् (२) पितृतुल्य।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) अनिल वा वायु के एक पुत्र का नाम जो उसकी शिवा नाम की पत्नी से उत्पन्न हुआ था। (३) रुद्र के एक पुत्र का नाम। (४) एक तीर्थ का नाम। (५) छठे मन्वंतर में होनेवाले इंद्र का नाम।

मनोजवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कलिहारी। करियारी। (२) मार्कंडेय पुराणानुसार अग्नि की एक जिह्वा का नाम। (३) स्कंद की माता का नाम। (४) क्रौंच द्वीप की एक नदी का नाम।

मनोजवी-वि० [सं० मनोजविन्] मनोजव। अति वेगवान्। बहुत तेज चलनेवाला।

मनोजवृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामवृद्धि नामक क्षुप। इसे कर्णाट में कामज कहते हैं।

मनोज्ञ-वि० [सं०] मनोहर। सुंदर।

संज्ञा पुं० (१) कुंद नामक फूल।

मनोज्ञता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरता। मनोहरता। खूबसूरती।

मनोज्ञा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कलौंजी। मँगरैला। (२) जा-विती। (३) मदिरा। शराब। (४) बाँझ ककोड़ा। आवर्तकी।

मनोदंड-संज्ञा पुं० [सं०] मन की वृत्तियों का निरोध। चित्त को चंचलता से रोककर एकाग्र करना। मन का निग्रह।

मनोदाही-वि० [सं० मनोदाहिन्] [स्त्री० मनोदाहिनी] मन को जलानेवाला। हृदयदाही।

मनोदुष्ट-वि० [सं०] जिसका मन दूषित हो। जो मन ही से पापी हो। जिसका अंतःकरण कलुषित हो। दुष्ट या खराब हृदयवाला।

मनोदेवता-संज्ञा पुं० [सं०] अंतरात्मा। विवेक।

मनोध्यान-संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

मनोनिग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] चित्त की वृत्तियों का निरोध। मन का निग्रह। मन को वश में रखना। मनोगुप्ति।

मनोनीत-वि० [सं०] (१) जो मन के अनुकूल हो। पसंद। (२) चुना हुआ।

मनोभय-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मनोभिराम-वि० [सं०] मनोज्ञ। सुंदर।

मनोभू-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। मदन।

मनोभूत-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। उ०—मनोभूत कोटिप्रभा श्री शरीरम्।—तुलसी।

मनोमथन-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामदेव।

मनोमय-वि० [सं०] मनोरूप। मानसिक।

मनोमयकोश-संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत शास्त्रानुसार पाँच कोशों में से तीसरा कोश। मन, अहंकार और कर्मेंद्रियाँ इस कोश के अंतर्भूत मानी जाती हैं। इसे बौद्ध दर्शन में संज्ञा स्कंध कहते हैं।

मनोयोग-संज्ञा पुं० [सं०] मन को एकाग्र करके किसी एक पदार्थ पर लगाना। चित्त की वृत्ति का निरोध करके एकाग्र करना और उसे एक पदार्थ पर लगाना।

मनोयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

मनोरंजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० मनोरंजक, मनोरंजनीय] (१) मन को प्रसन्न करने की क्रिया वा भाव। मनः संप्रसादन। मनोविनोद। दिल बहलाव। (१) एक बँगला मिठाई का नाम।

मनोरथ-संज्ञा पुं० [सं०] अभिलाषा। वांछा। इच्छा।

मनोरथतृतीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्रत का नाम जो चैत्र शुक्ल तृतीया को होता है।

मनोरथद्वादशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्रत का नाम जो चैत्र शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन पड़ता है।

मनोरन-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास।

मनोरम-वि० [सं०] [स्त्री० मनोरमा] मनोज्ञ। मनोहर। सुंदर।

संज्ञा पुं० सखी छंद के एक भेद का नाम। इसके प्रत्येक चरण में चौदह मात्राएँ होती हैं और ५, ४ और ५ पर विराम होता है। इसका मात्राक्रम २+३+२+२+३+२ है और तीसरी और दूसरी मात्रा सदा लघु होती है। उ०—जानकी नाथै, भजो रे। और सब धंधा तजो रे। सार है जग में जु येही। को प्रभू सों जन सनेही।

मनोरमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोरोचन। (२) सात सरस्वतियों में से चौथी का नाम। (३) बौद्ध धर्मानुसार बुद्ध की एक शक्ति का नाम। (४) छंदोमंजरी के अनुसार एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दस वर्ण होते हैं जिनमें पहला, दूसरा, तीसरा, सातवाँ और नवाँ वर्ण लघु और शेष गुरु होते हैं। (५) महाकवि चंद्रशेखर के अनुसार आर्य्या के ५७ भेदों में एक जिनमें १२ गुरु और ३३ लघु वर्ण होते हैं। (५) दस अक्षर के एक वर्णिक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नगण, रगण और अंत में गुरु होता है। उ०—लहत मुक्ति पाप हो छमा। (७) केशव के मतानुसार चौदह अक्षरों का एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक पाद में ४ सगण और अंत में दो लघु होते हैं। उ०—यह शासन पठये नृप कानन। (८) केशव के मतानुसार दोधक छंद का एक नाम जिसके प्रत्येक चरण में ४ भगण और दो गुरु होते हैं। (९) सूदन के मतानुसार दस अक्षरों के एक वर्णिक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में तीन तगण और एक गुरु होता है। उ०—बीते कछु द्योस ही में जहाँ। (१०) मार्कंडेय पुराणानुसार इंदीवर नामक एक गंधर्व की स्त्री का नाम।

मनोरा-संज्ञा पुं० [सं० मनोहर] दीवार पर गोबर से बनाए हुए चित्र जो कार्तिक के महीने में दिवाली के पीछे बनाए जाते हैं। स्त्रियाँ और लड़कियाँ इन्हें रंग बिरंग के फूल पत्तों से सजाती हैं, प्रति दिन सायंकाल को पूजती हैं और दीपक जलाकर गीत गाती जाती हैं। झिंझिया। लोढ़िया। उ०—जेहि घर पिय सो मनोरा पूजा। मोकहँ बिरह, सवति दुःख दूजा।—जायसी।

यौ०—मनोरा झूमक = एक प्रकार का गीत जिसे स्त्रियाँ फागुन में गाती हैं और जिसके अंत में यह पद आता है। उ०—(क) कहूँ मनोरा झूमक होई। कर औ फूल लिये सब कोई।—जायसी। (ख) गोकुल सकल ग्वालिनी हो घर खेलैं फाग, मनोरा झूमक रे। तिन में श्रीराधा लाड़िली हो जिनको अधिक सुहाग, मनोरा झूमक रे।—सूर

मनोराज-संज्ञा पुं० [सं० मनोराज्य] मानसिक कल्पना। मन की कल्पना। उ०—राग को न साज न बिराग, जोग जाग जिय, काया नहिं छोड़े देत ठाठिबो कुठाट को। मनोराज करत अकाज भयो आजु लागि, चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को।—तुलसी।

मनोरिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० मनोहर] एक प्रकार की सिकड़ी का जंजीर जिसकी कड़ियों पर चिकनी चपटी दाल जड़ी रहती है और जिसमें घुँघरुओं के गुच्छे लगातार बंदनवार की तरह लटकते हैं। यह जंजीर स्त्रियों की साड़ी वा ओढ़नी के किनारे पर उस जगह टाँकी जाती है जो ओढ़ते समय ठीक सिर पर पड़ता है। घूँघट काढ़ने पर यह जंजीर मुँह और सिर के चारों ओर आ जाती है।

मनोवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुराणनुसार मेरु पर्वत पर के एक नगर का नाम। (२) चित्रांगद विद्याधर की कन्या का नाम।

मनोवांछा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इच्छा। अभिलाषा। ख्वाहिश।

मनोवांछित-वि० [सं०] इच्छित। मन माँगा। यथेच्छ। जैसे:—इससे आपको मनोवांछित फल मिलेगा।

मनोविकार-संज्ञा पुं० [सं०] मन की वह अवस्था जिसमें किसी प्रकार का सुखद या दुःखद भाव, विचार या विकार उत्पन्न होता है। जैसे राग, द्वेष, क्रोध, दया आदि चित्तवृत्तियाँ। चित्त का विकार।

विशेष—मनोविकार किसी प्रकार के भाव या विचार के कारण होता है और उसके साथ मन का लक्ष किसी पदार्थ या बात की ओर होता है। जैसे—किसी को दुःखी देखकर दया अथवा अत्याचारी का अत्याचार देखकर क्रोध का उत्पन्न होना। जिस समय कोई मनोविकार उत्पन्न होता है, उस समय कुछ शारीरिक विक्रियाएँ भी होती हैं; जैसे:—रोमांच, स्वेद, कंप आदि। पर ये विक्रियाएँ साधारणतः इतनी सूक्ष्म होती हैं कि दूसरों को दिखाई नहीं देतीं। हाँ, यदि मनोविकार बहुत तीव्र रूप में हो, तो उसके कारण होनेवाली शारीरिक विक्रियाएँ अवश्य ही बहुत स्पष्ट होती हैं और बहुधा मनुष्य की आकृति से ही उसके मनोविकारों का स्वरूप प्रकट हो आता है।

क्रि० प्र०—उठना।

मनोविज्ञान-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें चित्त की वृत्तियों का विवेचन होता है। वह विज्ञान जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि मनुष्य के चित्त में कौन सी वृत्ति कब, क्यों और किस प्रकार उत्पन्न होती है। चित्त की वृत्तियों की मीमांसा करनेवाला शास्त्र।

मनोवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्त की वृत्ति। मनोविकार। वि० दे० "मनोविकार"।

मनोवेग-संज्ञा पुं० [सं०] मन का विकार। मनोविकार।

मनोव्यापार-संज्ञा पुं० [सं०] मन की क्रिया। संकल्प विकल्प। विचार।

मनोसर*-संज्ञा पुं० [सं० मन] मन की वृत्ति। मनोविकार। उ०—सर्व मनोसर जाय मरि जो देखै तस चार। पहले सो दुःख बरनि कै बरनौं वहक सिंगार।

मनोहर-वि० [सं०] [संज्ञा मनोहरता] (१) मन हरनेवाला। चित्त को आकर्षित करनेवाला। (२) सुंदर। मनोज्ञ।

संज्ञा पुं० (१) छप्पय छंद के एक भेद का नाम जिसमें १३ गुरु, १२६ लघु, १४९ वर्ण और १५२ मात्राएँ अथवा १३ गुरु, १२२ लघु, १३५ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं। (२) एक संकर राग का नाम जो गौरी, मारवा और त्रिवण के मिलने से बना है। (३) कुंद पुष्प। (४) सुवर्ण। सोना।

मनोहरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मनोहर होने का भाव। सुंदरता।

मनोहरताई*-संज्ञा स्त्री० [सं० मनोहरता] सुंदरता। मनोहरता। उ०—(क) मंगल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई।—तुलसी। (ख) किलकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहरतैया। मनि खंभनि प्रतिबिंब झलक छवि छलकिहै भरि अँगनैया।—तुलसी।

मनोहरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जाती पुष्प। (२) स्वर्णजुही। सोनजुही। (३) त्रिशिर की माता का नाम। (४) एक अप्सरा का नाम।

मनोहरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मनोहर] कान में पहनने की एक प्रकार की छोटी बाली।

मनोहारी-वि० [सं० मनोहारिन्] [स्त्री० मनोहारिणी] मनोहर। चित्ताकर्षक। सुंदर।

मनोह्लादी-वि० [सं० मनोह्लादिन्] [स्त्री० मनोह्लादिनी] (१) मन को प्रसन्न करनेवाला। दिल खुश करनेवाला। (२) मनोहर। सुंदर।

मनोह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला। मैनसिल।

मनौती*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मानना + औती (प्रत्य०)] (१) असंतुष्ट को संतुष्ट करना। मनाना। मनुहार। उ०—कभी गालियाँ देता था कभी धमकाता था, कभी इनाम का लालच दिखलाता था, कभी मनौती करता था; पर कोठरी का दरवाजा किसी ने न खोला।—शिवप्रसाद। (२) किसी देवता की विशेष रूप से पूजा करने की प्रतिज्ञा वा संकल्प। मानता। मन्नत।

क्रि० प्र०—उतारना।—करना।—चढ़ाना।—मानना।

मन्नत-संज्ञा स्त्री० [हिं० मानना] किसी देवता की पूजा करने की वह प्रतिज्ञा जो किसी कामना विशेष की पूर्ति के लिये की जाती है। मानता। मनौती। उ०—(बाबर ने) मन्नत मानी कि अगर साँगा पर फतह पाऊँ, फिर कभी शराब न पीऊँ और डाढ़ी बढ़ने दूँ।—शिवप्रसाद।

मुहा०—मन्नत उतारना या बढ़ाना = पूजा की प्रतिज्ञा पूरी करना। मन्नत मानना = यह प्रतिज्ञा करना कि अमुक कार्य्य के हो जाने पर अमुक पूजा की जायगी।

मन्मथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। (२) कपित्थ। कैथ। (३) काम-चिंता। (४) साठ संवत्सरों में से उनतीसवें संवत्सर का नाम।

मन्मथकर-संज्ञा पुं० [सं०] कुमार के एक अनुचर का नाम।

मन्मथलेख-संज्ञा पुं० [सं०] प्रेमपत्र।

मन्मथानंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आम जिसे महाराज-चूत भी कहते हैं।

मन्मथालय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आम का पेड़। (२) कामियों के मनोरथ पूर्ण होने की जगह। प्रेमी और प्रेमिका के मिलने का स्थान। विहारस्थल।

मन्मथी-वि० [सं० मन्मथिन्] कामी। कामुक।

मन्ना-संज्ञा पुं० [देश०] शहद की तरह का एक प्रकार का मीठा निर्यास जो बाँस आदि कुछ विशेष वृक्षों में से निकलता है और जिसका व्यवहार ओषधि के रूप में होता है।

मन्यका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गले पर की एक शिरा या नस जो पीछे की ओर होती है। मन्या।

मन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] गले की एक शिरा या नस। मन्यका।

मन्यास्तंभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग का नाम जिसमें गले पर की मन्या शिरा कड़ी हो जाती है और गरदन इधर उधर नहीं घूम सकती।

मन्यु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तोत्र। (२) कर्म। (३) शोक। (४) याग। (५) कोप। क्रोध। (६) दीनता। (७) अहंकार। (८) शिव। (९) अग्नि। (१०) भागवत के अनुसार वितथ राजा के पुत्र का नाम।

मन्युदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रोध का अभिमानी देवता। (२) एक ऋषि का नाम।

मन्युपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भेकपर्णी। मंडूकपर्णी।

मन्वंतर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इकहत्तर चतुर्युगी का काल। ब्रह्मा के एक दिन का चौदहवाँ भाग। वि० दे० "मनु"। (२) दुर्भिक्ष। अकाल।

मन्वंतरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का उत्सव जो आषाढ़ शुक्ल दशमी, श्रावण कृष्ण अष्टमी और भाद्र शुक्ल तृतीया को होता था।

मनवाद्य-संज्ञा पुं० [सं०] धान्य।

मन्होला†-संज्ञा पुं० [देश०] तमाल।

मम-सर्व० [सं० अहं का षष्ठी एकवचन रूप] मेरा वा मेरी। उ०—(क) साईं यों मति जानियो प्रीति घटै मम चित्त। मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ जीवत सुमिरूँ नित्त।—कबीर। (ख) नील सरोरुह श्याम, तरुन अरुन वारिज नयन। करहु सो मम उर धाम सदा क्षीर-सागर सयन।—तुलसी। (ग)

महाराज तुम तो हौ साध । मम कन्या ते भयो अपराध । —सूर ।

ममकार-संज्ञा पुं० [सं०] किसी की निजी संपत्ति । अपनी कमाई हुई संपत्ति ।

ममता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) 'यह मेरा है' इस प्रकार का भाव । किसी पदार्थ को अपना समझने का भाव । ममत्व । अपनापन । (२) स्नेह । प्रेम । (३) वह स्नेह जो माता का पुत्र के साथ होता है । (४) मोह । लोभ । (५) गर्व । अभिमान ।

ममतायुक्त-वि० [सं०] (१) अभिमानी । (२) कृपण । (३) जिसमें ममता हो ।

ममत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ममता । अपनापन । (२) स्नेह । (३) गर्व । अभिमान ।

ममरी-संज्ञा स्त्री० [सं० बरबरी] बनतुलसी । बबई ।

ममिया-वि० [हिं० मामा + इया (प्रत्य०)] जो संबंध में मामा के स्थान पर पड़ता हो । मामा के स्थान का । जैसे— ममिया ससुर, ममिया सास । (इसका प्रयोग संबंधसूचक शब्दों के साथ होता है ।)

ममियाउरा†-संज्ञा पुं० दे० "ममियौरा" ।

ममियौरा†-संज्ञा पुं० [हिं० मामा + औरा (प्रत्य०)] मामा का घर । ममाना ।

ममीरा-संज्ञा पुं० [अ० मामीरान] हलदी की जाति के एक पौधे की जड़ जिसकी कई जातियाँ होती हैं । यह आँख के रोगों की अपूर्व ओषधि मानी जाती है । यह पौधा समशीतोष्ण प्रदेशों में होता है । आसाम के पूर्व के देशों के पहाड़ी स्थानों में भी यह बहुत होता है । कुछ दूसरे पौधों की जड़ें भी, जो इससे मिलती जुलती होती हैं, ममीरे के नाम से बिकती हैं और उन्हें नकली ममीरा कहते हैं ।

मयंक-संज्ञा पुं० [सं० मृगांक] चंद्रमा । उ०—सरद-मयंक बदन छवि सींवाँ । चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवाँ ।—तुलसी ।

मयंद-संज्ञा पुं० [सं० मृगेंद्र] (१) सिंह । उ०—मानि यों बैठो नरिंद अरिंदहि मानो मयंद गयंद पछाऱ्यो ।—भूषण । (२) राम की सेना के एक बानर अधिनायक का नाम । उ०—द्विविद मयंद नील नल अंगदादि विकटासि । दधि-मुख केहरि कुमुद जव जामवंत बलरासि ।

मयंदी-संज्ञा स्त्री० [देश०] लोहे की छोटी सामी जो गाड़ी में चक्के की नाभि के दोनों ओर उस छेद के मुँह पर खोदकर बैठाई जाती है, जिसमें धुरे का सिरा रहता है । सामी ।

मय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँट । (२) अश्वतर । खच्चर । (३) घोड़ा । (४) सुख । (५) एक देश का नाम । (६) पुराणा-नुसार एक प्रसिद्ध दानव का नाम जो बड़ा शिल्पी था । इसे असुरों और दैत्यों का शिल्पी कहते हैं । वाल्मीकीय रामायण उत्तर कांड में मय को दिति का पुत्र 'दैत्य' लिखा है । मायावी और दुंदुभि को उसका पुत्र और मंदोदरी को उसकी कन्या लिखा है । (७) अमेरिका देश के मेक्सिको नामक देश के प्राचीन अधिवासी जो किसी समय में बहुत अधिक उन्नत और सभ्य थे और जिनकी सभ्यता भारतवासियों की सभ्यता से बहुत कुछ मिलती जुलती है ।

प्रत्य० [सं०] [स्त्री० मयी] तद्धित का एक प्रत्यय जो तद्रूप, विकार और प्राचुर्य्य अर्थ में शब्दों के साथ लगाया जाता है । जैसे आनंदमय । उ०—(१) तद्रूप—सिया राममय सब जग जानी । करौं प्रणाम जोरि जुग पानी ।—तुलसी । (२) विकार-अमिय मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भव रुज परिवारू ।—तुलसी । (३) प्राचुर्य्य—मुद मंगल मय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथराजू ।—तुलसी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "मै" ।

अव्य० दे० "मै" ।

मयगल-संज्ञा पुं० [सं० मंदकल, प्रा० मयगल] मत्त हाथी । मद-मस्त हाथी ।

मयन-संज्ञा पुं० [सं० मदन] कामदेव । उ०—कुंद इंदु सम देह, उमारमन करुना अयन । जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन ।—तुलसी ।

मयना-संज्ञा स्त्री० दे० "मैना ।"

मयमंत, मयमत्त-वि० [सं० मदमत्त] मस्त । मदमत्त । उ० (क) महाराज दसरथ पुनि सोवत । हा रघुपति लछिमन वैदेही सुमिरि सुमिरि गुण रोवत । त्रिया चरित मयमंत न सूझत उठि पखाल मुख धोवत । महा विपरीत रीत कछु औरै बार बार मुख जोवत ।—सूर । (ख) जोबन अस मयमंत न कोई । नवै हस्ति जो आँकुस होई ।—जायसी ।

मयष्ट, मयष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] वनमूँग ।

मयस्सर-वि० [अ०] (१) मिलता या मिला हुआ । प्राप्त । उपलब्ध । सुलभ । उ०—सैयद महमूद ने यह कहकर पंडितजी को प्रसन्न किया कि आपके इस धूलि-धूसर जूते की धूलि ही के प्रसाद से यह कालीन मुझे मयस्सर हुआ है ।—द्विवेदी ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—मयस्सर आना = मिलना । प्राप्त होना ।

मया-संज्ञा स्त्री० [सं०] चिकित्सा ।

* संज्ञा स्त्री० [सं० माया] (१) माया । भ्रमजाल । इंद्र जाल । (२) जगत । संसार । (३) जीव और शरीर का संबंध । जीवन । उ०—तुम जिय मैं तन जौ लहि मया । कहे जो जीव करै सो कया ।—जायसी । (४) प्रेम-पाश । प्रेम-बंधन । मोह । उ०—(क) बहुत मया सुनि राजा फूला । चला साथ पहुँचावै भूला—जायसी । (ख) का रानी

का चेरी कोई। जेहि कहँ मया करे भल सोई।—जायसी। (ग) मृगया यहे शूर तर बड़ी। बंदी मुखनि चाप सो पड़ी। जो केहू चितवे यह दया। बात कहे तो बड़िए मया।— केशव। (५) दया। अनुकंपा। छोह। उ०—(क) तहाँ चकोर कोकिला तेहि तन मया पईठ। नयनन रकत भरा यहि तुम पुनि कीन्ही डीठ।—जायसी। (ख) कहि धौरी बन बेलि कहूँ तुम देखी है नँद-नंदन। बूझो हौं मालती कहूँ तैं पाए हैं तनु चंदन।.........कहि धौ मृगी मया करि हमसों कहियौं मधुप मराल। सूरदास प्रभु के तुम संगी हौ कहँ परम दयाल।—सूर।

मयार-वि० [सं० माया, हिं० मया] [स्त्री० मयारी] दयालु। कृपालु। उ०—(क) रोवत बूड़ उठा संसारू। महादेव तब भयो मयारू।—जायसी। (ख) झारी भरी मुख धोइबे को आपनी बिसारी सारी सवारी अति देखत मयारि है।—रघुनाथ।

मयारी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) वह डंडा वा धरन जिस पर हिंडोले की रस्सी लटकाई जाती है। उ०—सुनि विनय श्रीपति विहँसि बोले विश्वकर्मा श्रुति धारि। खचि खंभ कंचन के रचि पचि राजति मरुवा मयारि। पटुली लगे नग नाग बहु रँग वनी डाँड़ी चारि। भँवरा भवै भजि केलि भूले नगर नागर नारि।—सूर। (२) छाजन की वह धरन जिस पर बहुआ के आधार पर बँडेर रहती है।

मयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँटनी।
प्रत्य० स्त्री० दे० "मय"।

मयु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किन्नर। (२) मृग।

मयुराज-संज्ञा पुं० [सं०] कुवेर।

मयुष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] बनमूँग।

मयुष्ठक-संज्ञा पुं० [सं०] बनमूँग।

मयूक-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर।

मयूख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरण। रश्मि। (२) दीप्ति। प्रकाश। (३) ज्वाला। (४) शोभा। (५) कील। (६) पर्वत।

मयूखादित्य-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य के एक भेद का नाम।

मयूखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल के एक अस्त्र का नाम।

मयूर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मयूरी] (१) मोर। (२) मयूर शिखा नामक क्षुप। (३) एक असुर का नाम। (४) मार्कंडेय पुराणानुसार सुमेरु पर्वत के उत्तर के एक पर्वत का नाम।

मयूरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपामार्ग। चिचड़ा। (२) तूतिया। (३) मोर। (४) मयूरशिखा नामक क्षुप।

मयूरकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद का एक नाम।

मयूरगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौबीस अक्षरों की एक वृत्ति का नाम जिसके प्रत्येक चरण में आदि में पाँच यगण, फिर मगण, यगण और अंत में भगण होता है। (य य य य य म य भ)।

मयूरग्रीवक-संज्ञा पुं० [सं०] तूतिया।

मयूरचटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

मयूरचूड़-संज्ञा पुं० [सं०] थुनेर।

मयूरचूड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मयूरशिखा नामक क्षुप।

मयूरजंघ-संज्ञा पुं० [सं०] सोनापाढ़ा। श्योनाक।

मयूरनृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नाच जिसमें थिरकन अधिक होती है।

मयूरपदक-संज्ञा पुं० [सं०] नखाघात। नखक्षत।

मयूररथ-संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय। स्कंद।

मयूरविदला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मोइया। अंबष्ठा।

मयूरशिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मोरशिखा नामक क्षुप।

मयूरसारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तेरह अक्षरों के एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक पद में रगण, जगण फिर रगण और अंत में गुरु होता है।

मयूरसारी-वि० [सं० मयूरसारिन्] गर्वित।

मयूरस्थल-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

मयूरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अंबष्ठा। मोइया। (२) एक प्रकार का विषैला कीड़ा।

मयूरेश-संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

मयेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] मय दानव। वि० दे० "मय"।

मयोभय-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

मयोभू-वि० [सं०] यज्ञ के फल से उत्पन्न।

मरंद-संज्ञा पुं० [सं० मकरंद प्रा० मरंद] मकरंद।

मरंदकोश-संज्ञा पुं० [हिं० मरंद+कोश] (१) फूल का वह भाग जिसमें 'सुधा' वा रस रहता है। मकरंद-कोश। (२) मधु-मक्खियों का छत्ता।

मर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृत्यु। (२) संसार। जगत (३) पृथ्वी।
संज्ञा स्त्री० दे० "मुरा"।

मरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृत्यु। मरण। (२) वह रोग जिसमें थोड़े ही काल में अनेक मनुष्य ग्रस्त होकर मरते हैं। वह भीषण संक्रामक रोग जिससे बहुत से लोग मरें। मरी। (३) मार्कंडेय पुराणानुसार एक जाति का नाम।
संज्ञा स्त्री० [हिं० मरकना = दबाना] (१) दबाकर संकेत करना। संकेत। इशारा। उ०—अर ते टरत न बर परै दई मरक मनु मैन। होड़ा होड़ी बढ़ि चले चित चतुराई नैन।—बिहारी। (२) दे० "मड़क"।

मरकट-संज्ञा पुं० दे० "मर्कट"।

मरकत-संज्ञा पुं० [सं०] पन्ना।

मरकताल-संज्ञा पुं० [देश०] समुद्र की तरंगों की उतार की

सब से अंतिम अवस्था । भाटा की चरम अवस्था जो प्रायः अमावास्या और पूर्णिमा से दो चार दिन पहले होती है ।

मरकना-क्रि० अ० [अनु०] (१) दबकर मरमराना । दबाव के नीचे पड़कर टूटना । दबना । उ०—सुनत ही सौतिन करेजा करकन लाग्यो मरकन लाग्यो मान भवन मन हाग्यो सो ।—देव । (२) दे० "मुड़कना" ।

मरकहा†-वि० [हिं० मारना + हा प्रत्य०] [स्त्री० मरकही] सींग से मारनेवाला । जो सींग से बहुत मारता हो । (पशु)

मरकाना-क्रि० स० [हिं० मरकना] (१) दबाकर चूर करना । इतना दबाना कि मरमराहट का शब्द उत्पन्न हो । तोड़ना । (२) दे० "मुड़काना" ।

मरकूम-वि० [अ०] [स्त्री० मरकूमा] लिखित । लिखा हुआ ।

मरकोटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मिठाई ।

मरखंडा‡-वि० दे० "मरखन्ना" ।

मरखन्ना†-वि० [हिं० मारना + न्ना (प्रत्य०)] [स्त्री० मरखन्नी] सींग से मारनेवाला । मरकहा । (पशु)

मरखम-संज्ञा पुं० [हिं० मल्लखंभ] वह खूँटा जो कातरि में गाड़ा रहता है ।

मरगजा*†-वि० [हिं० मलना + गींजना] मला दला । मसला हुआ । गींजा हुआ । मलित दलित । उ०—(क) सब अरगज मरगज भा लोचन पीत सरोज। सत्य कहहु पद्मावत सखी परी सब खोज ।—जायसी । (ख) घर पठई प्यारी अंक भरि । कर अपने मुख परसि त्रिया के प्रेम सहित दोऊ भुज धरि धरि । सँग सुख लूटि हरष भई हिरदय चली भवन भामिनि गजगति ढरि । अंग मरगजी पटोरी राजति छबि निरखत ठाढ़े ठाढ़े हरि ।—सूर । (ग) तुम सौतिन देखत दई अपने हिय ते लाल । फिरत सबन में डहडही डहै मरगजी माल ।—बिहारी ।

संज्ञा पुं० दे० "मलगजा" ।

मरगी‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० मरना मि० फा० मर्ग] फैलनेवाला रोग । मरक । मरी ।

मरग़ोल, मरग़ोला-संज्ञा पुं० [अ०] गाने में ली जानेवाली गिटकिरी । स्वरः कंपन । (संगीत)

क्रि० प्र०—भरना ।—लेना ।

मरघट-संज्ञा पुं० [सं०] वह घाट वा स्थान जहाँ मुर्दे फूँके जाते हैं । मुरदों के जलाने की जगह । स्मशान घाट । मसान । उ०—(क) जा घर साधु न सेवइ पारब्रह्म पति नाहिं । ते घर मरघट सारिखा भूत बसे ता माहिं ।—कबीर । (ख) हरिश्चंद्र का पुत्र रोहित मर गया । उस मृतक को ले रानी मरघट गई ।—लल्लू ।

मुहा०—मरघट का भुतना = प्रेत ।

वि० (१) बहुत ही कुरूप और विकराल आकृति का । चेष्टाहीन । कुरूप । (२) जो सदा उदास रहता हो । मनहूस । रोना ।

मरचा-संज्ञा पुं० दे० "मिरचा" ।

मरचोबा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की तरकारी जिसका व्यवहार युरोप में अधिकता से होता है ।

मरज़-संज्ञा पुं० [अ० मर्ज] (१) रोग । बीमारी । उ०—(क) आली कछू को कछू उपचार करै पै न पाइ सकै मरजै री ।—पद्माकर । (ख) नेह तरजनि बिरहागि सरजनि सुनि मान मरजनि गरजनि बदरान की ।—श्रीपति । (२) बुरी लत । खराब आदत । कुटेव । जैसे—आपको तो बकने का मरज़ है । (इस अर्थ में इसका प्रयोग अनुचित बातों के लिये होता है ।)

मरजाद*-संज्ञा स्त्री० [सं० मर्य्यादा] (१) सीमा । हद । उ०—गुरू नाम है गम्य का शिष्य सीख ले सोय । बिनु पद ई मरजाद बिनु गुरू शिष्य नहिं होय । (ख) सुंदरता मरजाद भवानी । जाइ न कोटिन बदन बखानी ।—तुलसी । (२) प्रतिष्ठा । आदर । इज्जत । महत्व । उ०—(क) गुरु मरजाद न भक्तिपन नहिं पिय का अधिकार । कहै कबीर व्यभिचारिणी आठ पहर भरतार ।—कबीर । (ख) यह जो अंध बीस हू लोचन छल बल करत आनि मुख हेरी । आइ शृगाल सिंह बलि माँगत यह मरजाद जात प्रभु तेरी ।—सूर ।

क्रि० प्र०—खोना ।—जाना ।—रखना ।

(३) रीति । परिपाटी । नियम । विधि । उ०—संत संभु श्रीपति अपवादा । सुनिय जहाँ तहँ अस मरजादा ।—तुलसी ।

मरजादा-संज्ञा स्त्री० दे० "मर्यादा" या "मरजाद" ।

मरजिया-वि० [हिं० मरना + जीना] (१) मरकर जीनेवाला । जो मरने से बचा हो । उ०—(क) तस राजै रानी कंठ लाई । पिय मरजिया नारि जनु पाई ।—जायसी । (२) मृतप्राय । जो मरने के समीप हो । मरणासन्न । उ०—पद्मावति जो पावा पीऊ । जनु मरजिये परा तनु जीऊ ।—जायसी । (३) जो प्राण देने पर उतारू हो । मरनेवाला । उ०—अब यह कौन पानि मैं पीया । भै तन पाँख पतँग मरजीया ।—(४) अधमरा । उ०—जहँ अस परी समुंद नग दीया । तेहि किम जिया चहै मरजीया ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० जो पानी में डूबकर उसके भीतर से चीज़ों को निकालता है । समुद्र में डूबकर उसके भीतर से मोती आदि निकालनेवाला । जिवकिया । उ०—(क) जस मरजिया समुँद धँसि मारे हाथ आव तब सीप । ढूँढ़ि लेहु जो स्वर्ग दुआरे चढ़े सो सिंहल दीप ।—जायसी । (ख) कविता चेला बिधि गुरू सीप सेवाती बुंद । तेहि मानुष की आस का जो मरजिया समुंद ।—जायसी । (ग) तन समुद्र

मन मरजिया एक बार धँसि लेइ । की लाल लै नीकसे की लालच जिउ देइ ।—कबीर ।

मरज़ी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) इच्छा । कामना । चाह । उ०—(क) बरजी हमैं और सुनाइबे को कहि तोष लख्यो सिगरी मरजी ।—तोष । (ख) दरजी किते तिते धन गरजी । ज्योंतहि पट्टु पट जिमि नृप मरजी ।—गोपाल । (२) प्रसन्नता । खुशी । (३) आज्ञा । स्वीकृति । उ०—(क) वा बिधि साँवरे रावरे की न मिली मरजी न मजा न मजाखे ।—पद्माकर । (ख) इनकी सबकी मरजी करिकै अपने मन को समुझावने है ।—ठाकुर । (ग) मरज़ी जो उठी पिय की सुधि लै चपला चमकै न रहै बरजी ।

मरजीवा-संज्ञा पुं० दे० "मरजिया" । उ०—मोती उपजे सीप में सीप समुंदर माँहि । कोइ मरजिवा काढ़ेसी जीवन की गम नाहिं ।—कबीर ।

मरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मरने का भाव । मृत्यु । मौत । (२) वत्सनाभ । बछनाग ।

मरणधर्मा-वि० [सं० मरणधर्मन्] मरणशील । मरणस्वभाव । जो मरता हो ।

मरत*-संज्ञा पुं० [सं० मृत्यु] मरण । मृत्यु । मौत ।

मरतबा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पद । पदवी ।

क्रि० प्र०—पाना ।—बढ़ना ।—बढ़ाना ।—मिलना ।

(२) बार । दफ़ा । जैसे—मैं आपके घर कई मरतबा गया था ।

मरतबान-संज्ञा पुं० दे० "अमृतबान" ।

मरद*-संज्ञा पुं० दे० "मर्द" । उ०—अर्थ धर्म काम मोक्ष बसत विलोकनि में कासी करामात जोगी जागता मरद की । —तुलसी ।

मरदई‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० मर्द+ई (प्रत्य०)] (१) मनुष्यत्व । आदमीयत । (२) साहस । (३) वीरता । बहादुरी ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिखाना ।

मरदन*-संज्ञा पुं० दे० "मर्दन" ।

मरदना*-क्रि० स० [सं० मर्दन] (१) मसलना । मर्दन करना । मलना । उ०—(क) अति करहि उपद्रव नाथा । मर्दहिं मोहिं जानि अनाथा ।—तुलसी । (ख) मदन मरदि मद सदन शत्रु सुर लोक पठावत ।—गोपाल । (२) ध्वंस करना । चूर्ण करना । उ०—अमल कमल कुल कलित ललित गति बेलि सों बलित मधु माधवी को पानिये । मृग-मद मरदि कपूर धूरि चूरि पग केसरि को केशव विलास पहिचानिये ।—केशव । (३) माँड़ना । गूँधना । जैसे—आटा मरदन ।

मरदनिया‡-संज्ञा पुं० [हिं० मर्दना] वह भृत्य जो बड़े आदमियों के अंग में तेल आदि मला करता है । शरीर में तेल मलने-वाला सेवक । उ०—लिये तेल मरदनियाँ आये । उबटि सुगंध चुपरि अन्हवाये ।—लल्लू ।

मरदानगी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) वीरता । शूरता । शौर्य्य । (२) साहस ।

क्रि० प्र०—दिखाना ।

मरदाना-वि० [फ़ा०] (१) पुरुष संबंधी । पुरुषों का । जैसे—मरदानी बैठक । (२) पुरुषों का सा । जैसे—मरदाना भेस । (३) वीरोचित । जैसे—मरदाना काम ।

‡ क्रि० अ० [हिं० मरद] साहस करना । वीरता दिखाना ।

मरदूद-वि० [अ०] (१) तिरस्कृत । (२) लुच्चा । नीच ।

मरन-संज्ञा पुं० दे० "मरण" ।

मरना-क्रि० अ० [सं० मरण] (१) प्राणियों या वनस्पतियों के शरीर में ऐसा विकार होना जिससे उनकी सब शारीरिक क्रियाएँ बंद हो जायँ । मृत्यु को प्राप्त होना । उ०—(क) साईं यों मत जानियो प्रीति घटै मम चित्त । मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ जीवत सुमिरों नित्त ।—कबीर । (ख) कर गहि खड्ग तोर बध करिहौं सुनि मारिच डर मान्यो । रामचंद्र के हाथ मरूँगो परम पुरुष फल जान्यो ।—सूर । (ग) लघु आनन उत्तर देत बड़े लरिहैं मरिहैं करिहैं कछु साके ।—तुलसी । (घ) मरिबे को साहस कियो बढ़ी बिरह की पीर । दौ ति ह्वै समुहै ससी सरसिज सुरभि समीर ।—बिहारी ।

मुहा०—मरना जीना = शादी गमी । शुभाशुभ अवसर । सुख दुःख । मरने की छुट्टी न होना वा न मिलना = बिलकुल छुट्टी न मिलना । अवकाश का अभाव होना । दिन रात कार्य्य में फँसा होना ।

(२) बहुत अधिक कष्ट उठाना । बहुत दुःख सहना । पचना । उ०—(क) एक बार मरि मिलैं जो आये । दूसर बार मरै कित जाये ।—जायसी । (ख) तुलसी भरोसो न भवेस भोरानाथ को तो कोटिक कलेस करो मरो छार छानि सो ।—तुलसी । (ग) तुलसी तेहि सेवत कौन मरै, रज ते लघु को करै मेरु से भारे ।—तुलसी । (घ) कठिन दुहूँ विधि दीप को सुन हो मीत सुजान । सब निसि बिनु देखें जरै मरै लखै मुख भान ।—रसनिधि ।

मुहा०—किसी के लिये मरना = हैरान होना । कष्ट सहना । किसी पर मरना = लुब्ध होना । आसक्त होना । मर पचना = अत्यंत कष्ट सहना । किसी की बात पर मरना वा किसी बात के लिये मरना = दुःख सहना । मर मिटना = श्रम करते करते विनष्ट हो जाना । उ०—सबने मर मिटने की ठान ली थी ।—इन्शा । मरा जाना = (१) व्याकुल होना । व्यग्र होना । जैसे—सूद देते देते किसान मरे जाते हैं । (२) उत्सुक होना । उतावली करना ।

(३) मुरझाना । कुम्हलाना । सूखना । जैसे—पान का मरना,

फल का मरना । (४) मृतक के समान हो जाना । लज्जा, संकोच या घृणा आदि के कारण सिर न उठा सकना । उ०—(क) यहि लाज मरियत ताहि तुम सों भयो नातो नाथ जू । अब और मुख निरखै न ज्यों त्यों राखिये रघुनाथ जू ।—केशव । (ख) तब सुधि पदुमावति मन भई । सँवरि बिछोह मुरछि मरि गई ।—जायसी । (५) किसी पदार्थ का किसी विकार के कारण काम का न रह जाना । जैसे—आग का मरना, चूने का मरना, सुहागा मरना, धूल मरना ।

मुहा०—पानी मरना = (१) पानी का दीवार की नीव में धँसना । (२) किसी के सिर कोई कलंक आना । उ०—पुनि पुनि पानि वहीं ठाँ मरे । फेर न निकसे जो तहँ परे ।—जायसी ।

(६) खेल में किसी गोटी वा लड़के का खेल के नियमानुसार किसी कारण से खेल से अलग किया जाना । जैसे—गोटी का मरना, गोइयाँ का मरना इत्यादि । (७) किसी वेग का शांत होना । दबना । जैसे—भूख का मरना, प्यास का मरना, चुल्ल का मरना, पित्त का मरना इत्यादि । उ०—मुँह मोरे मोरे ना मरति रिसि केशवदास मारहु धौं कहे कमल सनाल सों ।—केशव । (८) डाह करना । जलना । (९) झनखना । पछताना । रोना । (१०) हारना । वशीभूत होना । पराजित होना । उ०—तू मन नाथ मार के स्वाँसा । जो पै मरहिं आप कर नासा । चारिहु लोक चार कहु बाता । गुप्त लाव मन जो सो राता ।—जायसी ।

मरनि*-संज्ञा स्त्री० दे "मरनी" ।

मरनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मरना] (१) मृत्यु । मौत । (२) दुःख । कष्ट । हैरानी । उ०—सुनि योगी की अम्मर करनी । न्योरी विरह बिथा की मरनी ।—जायसी । (३) वह शोक जो किसी के मरने पर उसके संबंधियों को होता है । (४) वह कृत्य जो किसी के मरने पर उसके संबंधी लोग करते हैं ।

यौ०—मरनी करनी = मृत्यु और मृतक की अंत्येष्टि क्रिया ।

मरबुली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कंद जो पहाड़ी प्रदेशों में उत्पन्न होता है । इसके टुकड़े गज गज भर के गड्ढे खोद कर बोए जाते हैं । बोवाई सदा हो सकती है; पर गर्मी के दिनों में इसमें पानी देने की आवश्यकता होती है । यह दो प्रकार की होती है—मीठी और तीक्ष्ण या गला काटनेवाली । दोनों से तीखुर बनाया जाता है । इसकी जड़ को आलू वा कंद भी कहते हैं । कंद को धोकर उसके लच्छे बनाते हैं । फिर लच्छे को दबाकर वा कुचलकर रस निकालते हैं जिसे सुखाकर सत्त बनता है जो तीखुर कहलाता है । रस निकाले हुए खोइए को भी सुखा और पीसकर कोका के नाम से बेचते हैं । इसकी खेती पहाड़ों में अधिकता से होती है ।

मरभुक्खा-वि० [हिं० मरना + भूखा] (१) भूख का मारा हुआ । भुक्खड़ । (२) कंगाल । दरिद्र ।

मरम-संज्ञा पुं० दे० "मर्म" ।

मरमती-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी कड़ी और बहुत टिकाऊ होती है और खेती के औजार और घर के सँगहे आदि बनाने के काम आती है । यह पेड़ छोटा होता है और भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों में मिलता है । यह बीजों से उत्पन्न होता है ।

मरमर-संज्ञा पुं० [यू०] एक प्रकार का दानेदार चिकना पत्थर जिस पर घोटने से अच्छी चमक आती है । इसमें चूने का अंश अधिक होता है और इसे जलाने से अच्छी कली निकलती है । यद्यपि संसार के भिन्न भिन्न प्रदेशों में अनेक रंगों के मरमर मिलते हैं, पर सफेद रंग के मरमर ही को लोग विशेष कर मरमर या संग मरमर कहते हैं । जो मरमर काला होता है, उसे संग मूसा कहते हैं । मरमर पत्थर की मूर्तियाँ, खिलौने, बरतन आदि बनाए जाते हैं और उसकी पटिया और ढोंके मकान बनाने में भी काम आते हैं । अच्छा मरमर इटली से आता है; पर भारतवर्ष में भी यह जोधपुर, जयपुर, कृष्णगढ़ और जबलपुर आदि स्थानों में मिलता है ।

मरमरा‡-संज्ञा पुं० [हिं० मल या अनु०] वह पानी जो थोड़ा खारा हो ।

संज्ञा पुं० [अनु०] एक पक्षी का नाम ।

वि० जो सहज में टूट जाय । ज़रा सा दबाने पर मर मर शब्द करके टूट जानेवाला ।

मरमराना-क्रि० अ० [अनु०] (१) मरमर शब्द करना । (२) अधिक दबाव पाकर पेड़ की शाखा व लकड़ी आदि का मरमर शब्द करके दबना । उ०—भयो भूरि भार धरा चलत जरा कुमार करत चिकार चार दिग्गज सहित सोग । गिरिधरदास भूमि मंडल मरमरात अति थबरात से परात हैं दिसन लोग । परम बिसेस भार सहि ना सकत सेस एक सिर ब्रह्म अंड सहस धरन जोग । लटकि लटकि सीस झटकि झटकि चित्त अटकि अटकि डारै पटकि पटकि भोग ।—गोपाल ।

मरम्मत-संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी वस्तु के टूटे फूटे अंगों को ठीक करने की क्रिया वा भाव । दुरुस्ती । जीर्णोद्धार । जैसे—मकान की मरम्मत, घड़ी की मरम्मत ।

मुहा०—मरम्मत करना = (१) टूटे फूटे अंशों को दुरुस्त करना वा सँवारना । (२) पीटना । ठोंकना । मारना ।

मरल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली । यह दो हाथ तक लंबी होती है और दलदलों या ऐसे तालाबों में पाई जाती है जिनमें घास फूस अधिक उगता है ।

मरखट†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मरना] वह माफी जमीन जो किसी के मारे जाने पर उसके लड़के-बालों को दी जाती है।

संज्ञा स्त्री० [देश०] पटुए की कच्ची छाल जो निकालकर सुखाई गई हो। सन का उलटा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० मलपट] वह लकीरें जो रामलीला आदि के पात्रों के गालों पर चंदन वा रंग आदि से बनाई जाती हैं।

मरवा-संज्ञा पुं० दे० "मरुआ"।

मरवाना-क्रि० स० [हिं० मारना का प्रेर०] (१) मारने का प्रेरणार्थक रूप। मारने के लिये प्रेरणा करना। (२) बध कराना।

संयो० क्रि०—डालना।

(३) दे० "मराना"।

मरसा-संज्ञा पुं० [सं० मारिष] एक प्रकार का साग जिसकी पत्तियाँ गोल, झुर्रीदार और कोमल होती हैं। इसके पेड़ तीन चार हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसके डंठलों और पत्तियों का साग पकाकर लोग खाते हैं। मरसा दो प्रकार का होता है। एक लाल और दूसरा सफेद। लाल मरसा खाने में अधिक स्वादिष्ट होता है। मरसा बरसात के दिनों में बोया जाता है और भादों कुआँर तक इसका साग खाने योग्य होता है। पूरी बाढ़ के पहुँचने पर इसके सिरे पर एक मंजरी निकलती है जो एक बालिश्त से एक हाथ तक लंबी होती है। उस समय इसके डंठल और पत्तियाँ भी कड़ी हो जाती हैं और देर तक पकाई जाने पर कठिनाई से गलती हैं। मंजरी में सफेद सफेद छोटे फूल लगते हैं और फूलों के मुरझा जाने पर बीज पड़ते हैं। बीज छोटे, गोल, चिपटे और चमकीले काले रंग के होते हैं। यह बीज ओषधि में काम आते हैं। वैद्यक में इसके स्वाद को मधुर, इसकी प्रकृति शीतल और गुण रक्त-पित्तनाशक, वात-कफ-वर्द्धक और विष्टंभकारक लिखा है; और लाल मरसे को हल्का, चरपरा और सारक बताया गया है।

मरसिया-संज्ञा पुं० [अ०] (१) शोकसूचक कविता जो किसी के मृत्यु के संबंध में बनाई जाती है। यह उर्दू भाषा में अनेक छंदों में लिखी जाती है। इसमें किसी के मरने की घटना और उसके गुणों का ऐसे प्रभावोत्पादक शब्दों में वर्णन किया जाता है जिससे सुननेवालों में शोक उत्पन्न हो। ऐसी कविता प्रायः मुहर्रम के दिनों में पढ़ी जाती है।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—लिखना।—सुनाना।

(२) सियापा। मरण-शोक। रोना-पीटना।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मरहट*†-संज्ञा पुं० [हिं० मरघट] मसान। मरघट। उ०—कबिरा मंदिर आपने नित उठि करता आलि। मरहट देखी डरपता चौड़े दीया जालि।—कबीर।

*†-संज्ञा स्त्री० [देश०] मोठ। उ०—मूँग माख मरहट की पहिती चनक कनक सम दारी जी।—रघुनाथ।

मरहटा-संज्ञा पुं० [सं० महाराष्ट्र] (१) महाराष्ट्र देश का रहनेवाला। मरहठा। (२) उनतीस मात्राओं के एक मात्रिक छंद का नाम जिसमें १०,८, और १२ पर विश्राम होता है तथा अंत में एक गुरु और लघु होता है। उ०—अति उच्च अगारनि बनी पगारनि जनु चिंता मणि नारि। बहुशत मख धूपनि धूपित अंगनि हरि की सी अनुहारि। चित्री बहु चित्रिनि परम विचित्रिनि केशवदास निहारि। जनु विश्वरूप को विमल आरसी रची विरंचि विचारि।—केशव।

मरहठा-संज्ञा पुं० [सं० महाराष्ट्र = प्रा० मरहट्ठ] [स्त्री० मरहठिन] महाराष्ट्र देश का रहनेवाला। महाराष्ट्र। वि० दे० "महाराष्ट्र"।

मरहठी-वि० [हिं० मरहठा] महाराष्ट्र वा महरठों से संबंध रखनेवाला। महरठों का। जैसे—मरहठी कपड़ा, मरहठी चाल।

संज्ञा स्त्री० वह भाषा जो महाराष्ट्र देश में बोली जाती है। मरहठों की बोली। दे० "मराठी"।

मरहम-संज्ञा पुं० [अ०] ओषधियों का वह गाढ़ा और चिकना लेप जो घाव पर उसे भरने के लिये अथवा पीड़ित स्थानों पर लगाया जाता है।

क्रि० प्र०—लगाना।

यौ०—मरहम पट्टी = (१) आघात की चिकित्सा। घाव पर मरहम और पट्टी लगाना। (२) किसी जीर्ण पदार्थ की थोड़ी बहुत मरम्मत।

मरहला-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह स्थान जहाँ यात्री रात के समय ठहर जाते हैं। टिकान। मनजिल। पड़ाव। (२) झोंपड़ी। (३) दर्जा। मरातिब।

मुहा०—मरहला तय करना = झमेला निबटाना। कठिन काम पूरा करना। मरहला पड़ना वा मचना = झमेला पड़ना। कठिनता उपस्थित होना। मरहला डालना = झगड़ा खड़ा करना।

मरहून-वि० [अ०] जो रेहन किया गया हो। गिरों रखा हुआ। (कच)

मरहूना-वि० [फा०] जो रेहन किया गया हो। जो गिरों रखा गया हो। जैसे जायदाद मरहूना। (कच०)

मरहूम-वि० [अ०] स्वर्गवासी। मृत।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग किसी आदरणीय मृत व्यक्ति की चर्चा करते हुए उसके नाम के अन्त में किया जाता है।

मरातिब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) दरजा। पद। (२) उत्तरोत्तर आनेवाली अवस्थाएँ।

मुहा०—मरातिब तै करना = किसी विषय के सारे झगड़ों का निबटेरा करना।

(३) पृष्ठ। तह। (४) मकान का खंड। तल्ला। उ०—अति उत्तंग सुंदर शशिशाला सात मरातिबवारे।—रघुराज। (५) ध्वजा। झंडा। उ०—जामवंत हनुमंत नल नील मरातिब साथ। छरी छबीली शोभिजै दिक्पालन के हाथ।—केशव।

यौ०—माही मरातिब = एक प्रकार की ध्वजा जो मुसलमान राजाओं की सवारी के आगे हाथियों पर चलती है। ये ध्वजाएँ संख्या वा प्रकार में सात होती हैं, जिन पर क्रमशः सूर्य्य, पंजा, तुला, नाग, मछली गोल तथा सूर्य्यमुखी के चिह्न होते हैं।

मराना-क्रि० स० [हिं० मारना का पेर०] (१) मारने के लिये प्रेरणा करना। मरवाना। उ०—(क) पिता तुम्हार राज कर भोगी। पूजै विप्र मरावै जोगी।—जायसी। (ख) पंच कहै सिव सती विवाही। पुनि अवडेरि मरायेन्हि ताही।—तुलसी। (२) किसी को अपने ऊपर आघात करने के लिये प्रेरणा करना वा करने देना। (३) गुदा भंजन कराना। (बाजारू)।

मराय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एकाहयज्ञ। (२) एक प्रकार का साम।

मरायल*†-वि० [हिं० मारना + आयल (प्रत्य०)] (१) जो किसी से कई बार मार खा चुका हो। पीटा हुआ। उ०—सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। कहि अस कोपि गगन पथ धायल।—तुलसी। (२) निःसत्व। सत्वहीन। जैसे मरायल अन्न, मरायल पौधा। (३) मरियल। निर्बल। निर्जीव। (४) घाटा। टोटा।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।

मरार-संज्ञा पुं० [सं०] खलिहान।

मराल-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मराली] (१) एक प्रकार का बत्तख जो हलकी ललाई लिये सफेद रंग का होता है। (२) घोड़ा। (३) हाथी। (४) कारंडव नामक पक्षी। (५) हंस। उ०—सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग-माल से।—तुलसी। (६) अनार की बाटिका। (७) काजल। (८) बादल। (९) दुष्ट। खल।

मरिंद*-संज्ञा पुं० (१) दे० "मलिंद"। (२) दे० "मरंद"

मरिखम-संज्ञा पुं० दे० "मलखंभ"।

मरिच-संज्ञा पुं० [सं०] मिरिच।

मरिचा-संज्ञा पुं० [सं० मरिच] बड़ी लाल मिरिच।

वि० दे० "मिरिच"।

मरिया†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मढ़ना] (१) वह रस्सी जो खाट में पायताने की ओर उंचन लगाकर ऊपर से एक पट्टी से दूसरी पट्टी तक बाने की तरह बाँधी जाती है। (२) नाव में वह तख्ता जो उसके पेंदे में गूढ़े के नीचे बेड़े बल में लगा रहता है। मढ़िया।

संज्ञा स्त्री० [हिं० मारना] लोहे को एक छोटी हथौड़ी जिससे धातुओं पर खुदाई का काम करने वाले कलम को ठोंकते हैं।

मरी-संज्ञा स्त्री० [सं० मारी] (१) वह रोग जो स्पर्श दोष से फैलता है और जिसमें एक साथ बहुत से लोग मरते हैं। मारी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० मारना] एक प्रकार का भूत। लोगों का विश्वास है कि यह किसी ऐसी दुष्ट स्वभाववाली स्त्री की प्रेतात्मा होती है जो किसी रोग, आघात अथवा किसी अन्य कारणवश पूर्णायु को न पहुँचकर अल्पायु में मरी हो। मरही।

संज्ञा स्त्री० [देश०] देशी सागूदाने का पेड़। यह भारतवर्ष में तथा लंका, सिंगापुर आदि द्वीपों में उत्पन्न होता है। यह पेड़ देखने में बहुत सुंदर मालूम होता है। इससे ताड़ी निकाली जाती है जिसे लोग पीते हैं और जिससे गुड़ भी बनाते हैं। इसकी कोमल बालों वा मंजरी की तरकारी बनाई जाती है। इसके पुराने स्कंध में के गूदे से सागूदाना निकलता है जो पानी में पकाकर खाया जाता है वा पीस कर जिसकी रोटियाँ बनाई जाती हैं; और रेशे से कूँची, ब्रुश, रस्सी और जाल बनाए जाते हैं। इसकी लकड़ी मज़बूत और टिकाऊ होती है। इसे भेरवा भी कहते हैं।

मरीचि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। पुराणों में इन्हें ब्रह्मा का मानसिक पुत्र लिखा है, एक प्रजापति माना है और सप्तर्षियों में गिनाया गया है। किसी किसी पुराण में इनकी स्त्री का नाम 'कला' और किसी किसी में 'संभूति' लिखा है। (२) एक मरुत् का नाम। (३) एक ऋषि का नाम जो भृगु के पुत्र और कश्यप के पिता थे। (४) दनु के एक पुत्र का नाम। (५) प्रियव्रत-वंशी एक राजा का नाम। (६) एक प्राचीन मान जो छः त्रसरेणु के बराबर होता है। (७) एक दैत्य का नाम।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किरण। उ०—(क) अति सुकुमारी वृषभान की दुलारी सो कैसे सहै प्यारी मरीचै मारतंड की।—सरलाबाई। (ख) कित्ति सुधा दिग वित्त पखारत चंद मरीचिन को करि कूचो।—मतिराम। (ग) रघुनाथ पिय बस करिबे को चली बाल मुख की मरीचि जल दिसि मदि कै लई।—रघुनाथ। (२) आभा। कांति। ज्योति। उ०—कीधौं मृगलोचन मरीचिका मरीचि किधौं रूप की चिरुर रुचि शुचि सों दुराई है।—केशव। (३) मरीचिका। मृगतृष्णा। उ०—बीच मरीचिनु केमृग लौं अब धावै न रे सुन काहू मरिंद के।—देव।

मरीचिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मृगतृष्णा। सिरोह। (२) किरण। उ०—(क) बारिज बरत बिन वारे वारि बारु बीच बीच बीचिका मरीचिका सी छहरी।—देव। (ख) चहचही सेज चहूँ चहक चमेलिन सों, बेलिन सों मंजु मंजु गुंजन मलिंद जाल। तैसेई मरीचिका दरीचिन के दीबे ही में, छपा की छबीली छबि छहरत तत्काल।—देव।

मरीचिगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) दक्ष सावर्णि मन्वंतर में होनेवाले एक प्रकार के देवताओं का गण।

मरीचिजल-संज्ञा पुं० [सं०] मृगतृष्णा।

मरीचितोय-संज्ञा पुं० [सं०] मृगतृष्णा।

मरीची-वि० [सं० मरीचिन्] [स्त्री० मरीचिनी] किरणयुक्त। जिसमें किरणें हों।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य्य। (२) चंद्रमा।

मरीज़-वि० [अ०] रोगी। रोग-ग्रस्त। बीमार।

मरीना-संज्ञा पुं० [स्पेनी० मेरिनो] एक प्रकार का बहुत मुलायम ऊनी पतला कपड़ा जो मेरीनो नामक भेड़ के ऊन से बनता है।

मरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह भूमि जहाँ जल न हो और केवल बलुआ मैदान हो। मरुस्थल। निर्जल स्थान। रेगिस्तान। मरुभूमि। (२) वह पर्व्वत जिसमें जल का अभाव हो। (३) मारवाड़ और उसके आस पास के देश का नाम। (४) मरुआ नामक पौधा। (५) एक सूर्य्यवंशी राजा का नाम (६) नरकासुर के एक सहचर असुर का नाम।

मरुआ-संज्ञा पुं० [सं० मरुव] बन-तुलसी वा बबरी की जाति के एक पौधे का नाम। यह पौधा बागों में लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ बबरी की पत्तियों से कुछ बड़ी, नुकीली, मोटी, नरम और चिकनी होती हैं जिनमें से उग्र गंध आती है। इसके दल देवताओं पर चढ़ाए जाते हैं। इसका पेड़ डेढ़ दो हाथ ऊँचा होता है और इसकी फुनगी पर कार्तिक अगहन में तुलसी की भाँति मंजरी निकलती है जिसमें नन्हें नन्हें सफेद फूल लगते हैं। फूलों के झड़ जाने पर बीजों से भरे हुए छोटे छोटे बीज-कोश निकल आते हैं जिनमें से पकने पर बहुत बीज निकलते हैं। ये बीज पानी में पड़ने पर ईसब गोल की तरह फूल जाते हैं। यह पौधा बीजों से उगता है; पर यदि इसकी कोमल टहनी वा फुनगी लगाई जाय तो वह भी लग जाती है। रंग के भेद से मरुआ दो प्रकार का होता है, काला और सफेद। काले मरुए का प्रयोग ओषधि रूप में नहीं होता और केवल फूल आदि के साथ देवताओं पर चढ़ाने के काम आता है। सफेद मरुआ ओषधियों में काम आता है। वैद्यक में यह चरपरा, कड़ुआ, रूखा और रुचिकर तथा तीखा, गरम, हलका, पित्तवर्द्धक, कफ और वात का नाशक, विष कृमि और कुष्ट-रोगनाशक माना गया है। नागबेल। नादबोई। उ०—अति व्याकुल भईं गोपिका ढूँढ़त गिरिधारी। बूझति हैं बन बोलि सों देखे बनवारी। बूझा मरुआ कुंद सौं कहे गोद पसारी। बकुल बहुल बट कदम पै ठाढ़ी व्रजनारी।—सूर।

पर्य्या०—मरुवक। मरुत्तक। फणिज्जक। प्रस्थपुष्प। समीरण। कुलसौरभ। गंधपत्र। खटपत्र।

संज्ञा पुं० [सं० मंड वा मेरु वा अनु०] (१) मकान की छाजन में सब से ऊपर की बल्ली जिस पर छाजन का ऊपरी सिरा रहता है। बँड़ेर। (२) जुलाहों के करघे में लकड़ी का वह टुकड़ा जो डेढ़ बालिश्त लंबा और आठ अंगुल मोटा होता है और छत की कड़ी में जड़ा होता है। (३) हिंडोले में वह ऊपर की लकड़ी जिसमें हिंडोला लटकाया जाता है वा हिंडोले को लटकाने की लकड़ी जड़ी वा लगाई जाती है। उ०—कंचन के खंभ मयारि मरुआ डाँड़ी खचित हीरा बिच लाल प्रवाल। रेसम बुनाई नवरतन लाई पालनो लटकन बहुत पिरोजा लाल।—सूर।

संज्ञा पुं० [हिं० माँड़] माँड़।

मरुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। (२) एक प्रकार का मृग।

मरुकच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रदेश का नाम। यह दक्षिण दिशा में है और हस्त, चित्रा और स्वाती नक्षत्रों के अधिकार में माना गया है।

मरुकांतार-संज्ञा पुं० [सं०] बालू वा रेत का मैदान। रेगिस्तान। मरुभूमि।

मरुकुच-संज्ञा पुं० दे० "मरुकुत्स"।

मरुकुत्स-संज्ञा पुं० [सं०] वाराही संहिता के अनुसार एक देश का नाम जो कूर्म विभाग के अनुसार पश्चिमोत्तर दिशा में है और जो उत्तराषाढ़ा, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रों के अधिकार में है।

मरुचीपट्टन-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार दक्षिण दिशा के एक देश का नाम जो हस्त, चित्रा और स्वाती के अधिकार में है।

मरुज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नख नामक सुगंधि द्रव्य। (२) बाँस का कल्ला।

मरुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रायण की जाति की एक लता जो मरुस्थल में होती है।

मरुजाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। केवाँच। कौंछ।

मरुटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका ललाट ऊँचा हो।

मरुत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवगण का नाम। वेदों में इन्हें रुद्र और वृश्नि का पुत्र लिखा है और इनकी संख्या ६० की तिगुनी मानी गई है; पर पुराणों में इन्हें कश्यप और दिति का पुत्र लिखा गया है जिसे उसके वैमात्रिक भाई

इंद्र ने गर्भ काटकर एक से उनचास टुकड़े कर डाले थे, जो उनचास 'मरुद्' हुए। वेदों में मरुद्गण का स्थान अंतरिक्ष लिखा है, उनके घोड़े का नाम पृषित बतलाया है तथा उन्हें इंद्र का सखा लिखा है। पुराणों में इन्हें वायु कोण का दिक्पाल माना गया है। (२) वायु। बात। हवा। (३) प्राण। (४) हिरण्य। सोना। (५) एक साध्य का नाम। (६) सौंदर्य। (७) बृहद्रथ राजा का एक नाम। (८) मरुआ। (९) ऋत्विक्। (१०) गठिवन। (११) असबर्ग। (१२) दे० "मरुत्त"।

मरुतवान*-संज्ञा पुं० दे० "मरुत्वान्"।

मरुत्कर-संज्ञा पुं० [सं०] राजमाष। उड़द।

मरुत्त-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक चक्रवर्ती राजा जो चंद्रवंशी महाराज करंधर के पुत्र अवीक्षित का पुत्र था। इसने अनेक बार बड़े बड़े यज्ञ किए थे जिनमें समस्त यज्ञपात्र सोने के बनवाए थे। इसके प्रभावती, सौवीरा, सुकेशी, केकयी, सैरंध्री, वसुमती और सुशोभना नाम की सात रानियाँ थीं, जिनसे अठारह लड़के उत्पन्न हुए थे। भागवत में इसे यदुवंशी और करंधर का पुत्र लिखा है।

मरुत्तक-संज्ञा पुं० [सं०] मरुआ नामक पौधा।

मरुत्पति-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

मरुत्पथ-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

मरुत्पल-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

मरुत्प्लव-संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। शेर।

मरुत्फल-संज्ञा पुं० [सं०] ओला।

मरुत्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म की पत्नी का नाम। यह प्रजापति की कन्या थी।

मरुत्वान्-संज्ञा पुं० [सं० मरुत्वत् का प्र० ए० रूप] (१) इंद्र। (२) महाभारत के अनुसार देवताओं के एक गण का नाम जो धर्म के पुत्र माने जाते हैं। (३) हनुमान।

मरुत्सख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) अग्नि।

मरुत्सहाय-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

मरुत्सुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हनुमान। (२) भीम।

मरुत्स्तोम-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का एकाह यज्ञ।

मरुथल-संज्ञा पुं० दे० "मरुस्थल"।

मरुदांदोल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धौंकनी। (२) प्राचीन काल की एक प्रकार की धौंकनी जो हरिन वा भैंस के चमड़े से बनती थी।

मरुदिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल। गूगुल।

मरुदेव-संज्ञा पुं० [सं०] ऋषभदेव के पिता का नाम।

मरुद्रथ-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा।

मरुद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विट्खदिर। (२) बबूल।

मरुद्वर्त्म-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

मरुद्दाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूआँ। (२) आग।

मरुद्द्विप-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

मरुद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] वह उपजाऊ और सजल हरा भरा स्थान जो मरुस्थल में हो। ओसिज।

मरुद्वृधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पंजाब की एक नदी का वैदिक नाम।

मरुद्वेग-संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य का नाम।

मरुधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० मरुधन्वत्] (१) मरुस्थल। निर्जल प्रदेश। (२) इंदीवर नामक विद्याधर के पुत्र का नाम।

मरुधर-संज्ञा पुं० [सं०] मारवाड़ देश। उ०—प्यासे दुपहर जेठ के थके सबै जल सोधि। मरुधर पाय मतीरहू मारू कहत पयोधि।—बिहारी।

मरुभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] बालू का निर्जल मैदान जहाँ कोई वृक्ष वा वनस्पति आदि न उगती हो। रेगिस्तान।

मरुभूरुह-संज्ञा पुं० [सं०] करील का पेड़।

मरुन्माला-संज्ञा पुं० [सं०] पृक्का नाम की लता। असबर्ग।

मरुर-संज्ञा पुं० [सं० मूर्वा] गोरचकरा।

मरुरना*-क्रि० अ० [हिं० मरोरना] 'मरोरना' का अकर्मक रूप। ऐंठना। बल खाना। उ०—(क) तीखी दीठ तूख सी पतूख सी अहरि अंग ऊख सी मरुरि मुख लागति महूख सी।—देव। (ख) मरुरत अंगन अमर रतरंग केश मरुरत नाथ देव जीतिकै जगत है।—देव।

मरुल-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बत्तक की एक जाति का नाम। कारंडव।

मरुव-संज्ञा पुं० [सं०] मरुआ।

मरुवक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक कँटीले पेड़ का नाम जिसे मैनी कहते हैं। (२) मरुआ। नागदौना। (३) तिल का पौधा। (४) व्याघ्र। बाघ। (५) राहु।

मरुवा-संज्ञा पुं० दे० "मरुआ"।

मरुसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की छोटी मूली।

मरुसंभवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महेंद्रवारुणी। (२) एक प्रकार का खैर जिसका पेड़ बहुत छोटा होता है। (३) छोटा धमासा। क्षुद्र जवासा। (४) एक प्रकार का कनैर।

मरुसा†-संज्ञा पुं० दे० "मरसा"।

मरुस्थल-संज्ञा पुं० [सं०] बालू का मैदान जिसमें निर्जल होने के कारण कोई वृक्ष वा वनस्पति न उगती हो। मरुभूमि। रेगिस्तान।

मरुस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा धमासा।

मरु*-वि० [सं० मेरु वा हिं० मरना] कठिन। दुरूह। उ०—कल्प समान रैन तेहि बाढ़ी। तिल तिल मरु जुग जुग पर गाढ़ी।—जायसी।

मुहा०—मरू करि के वा मरू करि* = कठिनाई से। ज्यों त्यों करके। बहुत मुश्किल से। उ०—(क) ता कहँ तौ अब लों

बहराइ कै राखी बसाइ मरू करि मैं है।—केशव। (ख) देह में नेकु सम्हार रह्यो नहिं ह्यों लगि भाजि मरू करि आई।—मतिराम। (ग) अँसुआ ठहरात गरौ घहरात मरू करि आधिक बात कही।—देव। (घ) द्यौस तो बीत्यो मरू करिके अब आई है राति सो कैसे धौं बीतिहै।

मरूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का मृग। (२) मयूर। मोर।

मरूद्भवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जवास। (२) कपास। (३) एक प्रकार का खैर।

मरूर-संज्ञा पुं० [सं०] गोरचकरा।

मरूरा*†-संज्ञा पुं० [हिं० मरोड़] ऐंठन। बल। मरोड़।

मुहा०—मरूरा देना = बल देना। मरोड़ना। उमेठना। उ०—मुख के पवन परस्पर सुखवत गहे पानि पिय जूरो। बूझति जानि मन्मथ चिनगी फिरि मानो दियो मरूरो।—सूर।

मरूल-संज्ञा पुं० [सं० मुर्व] गोरचकरा। मरूर।

मरेठी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मलना + ऐंठना] वह रस्सी जिससे हेंगा वा पटेला बाँधकर खेत में खींचा वा चलाया जाता है। बरहा। बेड़। गुरिया। बखर।

संज्ञा स्त्री० दे० "मुलेठी"।

मरोड़-संज्ञा पुं० [हिं० मरोड़ना] (१) मरोड़ने का भाव या क्रिया। उ० (क) मानत लाज लगाम नहिं नेकु न गहत मरोर। होत तोहि लखि बाल के दृग तुरंग मुँह जोर।—मतिराम। (ख) उतही ते मोरति दृगन आवत अलि जिहि ओर। सीखति है मुग्धा मनों भय मिसि भृकुटि मरोर।—लक्ष्मणसिंह।

मुहा०—मरोड़ खाना = चक्कर खाना। उ०—न्हाय बसन पहिरन लगी बस न चल्यो चित्त दोर। खाय मरोर खड़े गिर्‍यो गड़े कड़े कुच कोर।—रामसहाय। मन में मरोड़ करना = मन में दुराव वा कपट रखना। कपट करना। उ०—साधू आवत देखि के मन में करत मरोर। सो होवेगा चूहड़ा बसे गाँव की ओर।—कबीर। मरोड़ की बात = पेचदार बात। घुमाव फिराव की बात।

(२) मरोड़ने से पड़ा हुआ घुमाव। ऐंठन। बल। (३) उद्वेग आदि के कारण उत्पन्न पीड़ा। व्यथा। क्षोभ। उ०—(क) घिरि आये चहुँ ओर घन तेहि तकि मारेस सोर। मोर सोर सुनि होत री तन में अधिक मरोर।—रामसहाय। (ख) झिलत झकोर रहै जोबन को जोर रहै समद मरोर शोर रहै तब सो।—पद्माकर (ग) इक तो मार मरोर ते मरति भरति है साँसि। दूजे जारत मास री यह सुचि लौं सुचि माँस।—रामसहाय।

मुहा०—मरोड़ खाना = उलझन में पड़ना। उ०—गुलफनि लों ज्यों त्यों गयो करि करि साहस जोर। फिर न फिर्‍यो मुरवान चपि चित अति खात मरोर।—रामसहाय।

(४) पेट में ऐंठन और पीड़ा होना। पेट ऐंठना। (५) घमंड। गर्व। उ०—आये आप भली कही मेटन मान मरोर। दूर करौ यह देखिहै छला छिगुनिया छोर।—बिहारी। (६) क्रोध। गुस्सा।

मुहा०—मरोड़ गहना = क्रोध करना। उ०—रह्यो मोह मिलना रह्यो यों कहि गहैं मरोर। उत है सखिहि उराहनो इत चितई मों ओर।—बिहारी।

विशेष—कविता में प्रायः "मरोड़" के स्थान में "मरोर" ही पाया जाता है।

मरोड़ना-क्रि० स० [हिं० मोड़ना] (१) एक ओर से घुमाकर दूसरी ओर फेरना। बल डालना। ऐंठना। उ०—(क) बाँह मरोरें जात हौ मोहि सोवत लियो जगाय। कहै कबीर पुकारि कै यहि पैंड़े ह्वै कै जाय।—कबीर। (ख) गोड़ चाप लै जीभ मरोरी। दधि ढरकायो भाजन फोरी।—सूर। (ग) कोपि कूदि दोउ धरेसि बहोरी। महि पटकत भज भुजा मरोरी।—तुलसी। (घ) मोहि झकझोरि डारी कुंच को मरोर डारी तोरि डारी कसनि बिथोरि डारी बेनी त्यों।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—देना।—डालना।—पड़ना।

मुहा०—अंग मरोड़ना = अँगड़ाई लेना। उ०—सब अंग मरोरि मुरो मन मैं झरि पूरि रही रस मैं न भई।—गुमान। भौंह मरोड़ना या दृग (आदि) मरोड़ना = (१) भ्रूभंग करना। आँख से इशारा करना वा कनखी मारना। उ०—(क) अंतर में पति की सुरति गहि गहि गहकि गुनाह। दृग मरोरि मुख मारि तिय छुवन देत नहिं छाँह।—पद्माकर। (ख) पान दियो हँसि प्यार सों प्यारी बहू लखि त्यों हँसि भौंह मरोरी।—देव। (२) नाक भौंह चढ़ाना। भौंह सिकोड़ना। उ०—(क) हौं हूँ गही पदुमाकर दौरि सो भौंह मरोरत सेज लौं आई।—पद्माकर। (ख) सुनि सौतिन के गुन की चरचा द्विज जू तिय भौंह मरोरन लागी।—द्विजदेव।

(२) ऐंठकर नष्ट करना वा मार डालना। उ०—(क) महाबीर बाँकुरे बराकी बाँह पीर क्यों न लंकिनी ज्यों लात घात ही मरोर मारियो।—तुलसी। (ख) माँडि मार्‍यो कलह बियोग मार्‍यो बोरि कै मरोरि मार्‍यो अभिमान भर्‍यो भय मार्‍यो है।—केशव। (ग) कपि पुनि उपवन बारिहि तोरी। पंच सेनपति सेन मरोरी।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

(३) पीड़ा देना। दुःख देना। वेदना उत्पन्न करना। उ०—(क) बार बधू पिय पंथ लखि अँगरानी अंग मोरि। पौढ़ि रही परयंक मनु डारी मदन मरोरि।—मतिराम। (ख) एक

आली गई कहि कान में आइ परी जहाँ मैन मरोरी गई। —वेणी। (४) मलना। मींजना। मसलना।

मुहा०—हाथ मरोड़ना* = हाथ मलना। पछताना। उ०—(क) अब पछताव दरब जस जोरी। करहु स्वर्ग पर हाथ मरोरी।—जायसी। (ख) पुरुष पुरातन छाड़ि कर चली आन के साथ। लोभी संगत बीछुड़ी खड़ी मरोरइ हाथ। —दादू।

विशेष—कविता में "मरोड़ना" का रूप प्रायः "मरोरना" ही पाया जाता है।

मरोड़फली-संज्ञा स्त्री० [हिं० मरोड़ + फली] एक प्रकार की फली जो प्रायः पेट के मरोड़ के लिये गुणकारी होती है। मुर्रा। अवतरनी।

मरोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० मरोड़ना] (१) ऐंठन। मरोड़। उमेठ। बल। (२) पेट की वह पीड़ा जिसमें अन्दर की ओर कुछ ऐंठन सी जान पड़ती हो। यह एक रोग है जिसमें मलोत्सर्ग के समय पेट में ऐंठन सी होती है और प्रायः कोष्ठबद्ध रहता है। कभी कभी आँव के साथ भी मरोड़ होता है।

क्रि० प्र०—उठना।—पड़ना।

मरोड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मरोड़ना] (१) ऐंठन। घुमाव। बल।

मुहा०—मरोड़ी करना = खींचातानी करना। इधर उधर करना। उ०—नख सिख लों चित चोर सकल अँग चीन्हे पर कत करत मरोरी। एक सुनि सूर हर्‌यो मेरो सरबस अरु उलटी ढोलों सँग डोरी।—सूर।

(२) वह बत्ती जो आटे आदि में सने हुए हाथों से मलने पर छूटकर निकलती है। (३) गुत्थी। गाँठ।

मरोलि-संज्ञा पुं० [सं०] मकर की जाति का एक बड़ा सामुद्रिक जंतु।

मर्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देह। शरीर। (२) वायु। हवा। (३) शुक्राचार्य के एक पुत्र का नाम। (४) बंदर।

मर्कक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकड़ा। (२) हरगीला नामक पक्षी।

मर्कट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंदर। बानर। (२) मकड़ा। (३) हरगीला नामक पक्षी। (४) एक प्रकार का विष। (५) दोहे के एक भेद का नाम जिसमें सत्रह गुरु और चौदह लघु मात्राएँ होती हैं। उ०—व्रज में गोपन संग में राधा देखे श्याम। (६) छप्पय का आठवाँ भेद जिसमें ६३ गुरु, २६ लघु कुल ८९ वर्ण या १५२ मात्राएँ वा ६३ गुरु, २२ लघु कुल ८५ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं।

मर्कटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बानर। बंदर। (२) मकड़ी। (३) एक प्रकार की मछली। (४) मड़ुआ नामक अन्न। (५) मकरा नामक घास। (६) एक दैत्य का नाम।

मर्कटतिंदुक-संज्ञा पुं० [सं०] कुपीलु।

मर्कटपाल-संज्ञा पुं० [सं०] बंदरों का राजा, सुग्रीव।

मर्कटपिप्पली-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।

मर्कटप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] खिरनी का पेड़।

मर्कटवास-संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी का जाला।

मर्कटशीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] हिंगुल।

मर्कटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बानरी। बँदरी। (२) मकड़ी। (३) भूरी केवाँच। कौंछ। (४) अपामार्ग। (५) अजमोदा। (६) एक प्रकार का करंज। (७) छंद के ९ प्रत्ययों में से अंतिम प्रत्यय। इसके द्वारा मात्रा के प्रस्तार में छंद के लघु, गुरु कला और वर्णों की संख्या का परिज्ञान होता है।

मर्कटेंदु-संज्ञा पुं० [सं०] कुचिला।

मर्कत*-संज्ञा पुं० दे० "मरकत"।

मर्कर-संज्ञा पुं० [सं०] भृंगराज। भँगरा। भँगरैया।

मर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुरंग। (२) तहखाना। (३) भाँड़ा। बर्तन। (४) बाँझ स्त्री।

मर्ची-संज्ञा स्त्री० दे० "मिर्च"।

मर्जी-संज्ञा स्त्री० दे० "मरज़ी"।

मर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्य। (२) भूलोक।

मर्तबा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पद। पदवी। जैसे—आज कल वे अच्छे मरतबे पर हैं।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—देना।—जाना।—पाना।—बढ़ना। —मिलना।

(२) बार। बेर। दफा। जैसे—मैं आपके मकान पर कई मर्तबा गया था, पर आप नहीं मिले।

मर्तबान-संज्ञा पुं० [हिं० अमृतबान] रोगनी बर्तन जिसमें अचार, मुरब्बा, घी आदि रक्खा जाता है। अमृतबान।

मर्त्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्य। (२) भूलोक। (३) शरीर।

मर्त्यमुख-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० मर्त्यमुखी] किन्नर।

मर्त्यलोक-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी। मनुष्य-लोक।

मर्द-संज्ञा पुं० [फा०, मि० सं० मर्त्त और मर्त्य] (१) मनुष्य। पुरुष। आदमी। (२) साहसी पुरुष। पुरुषार्थी मनुष्य। उ०—मर्द शीश पर नवे मर्द बोली पहिचाने। मर्द खिलावे खाय मर्द चिंता नहिं आने। मर्द देय औ लेय मर्द को मर्द बचावे। गहिरे सँकरे काम मर्द के मर्दै आवे। पुनि मर्द उन्हीं को जानिये दुख सुख साथी कर्म के। बैताल कहै सुन विक्रम, तू ये लक्षण मर्द के।

मुहा०—मर्द आदमी = (१) भला आदमी। सभ्य पुरुष। (२) वीर। बहादुर।

(३) वीर पुरुष। योद्धा। जवान। उ०—चलेउ भूप गोनर्द वर्द बाहन समान बल। संग लिये बहु मर्द शखि होत अपरदल।—गिरधरदास। (४) पुरुष। नर। जैसे—मर्द और औरतें। (५) पति। भर्ता।

मर्दना*-क्रि० स० [सं० मर्दन] (१) अंग आदि पर जोर से हाथ फेरना। मालिश करना। मलना। उ०—तन मर्दति पिय के तिया, दरसावति झुठ रोष।—पद्माकर। (२) उबटन तेल आदि को अंगों पर चुपड़कर बलपूर्वक चुपड़े हुए स्थान पर बार बार हाथ फेरना जिससे अंग में उसका सार वा स्निग्ध अंश घुस जाय। मलना। (३) चूर्णित करना। तोड़ फोड़ डालना। (४) मसककर विकृत करना। नाश करना। कुचलना। रौंदना। उ०—(क) कबहुँ विटप भूधर उपारि पर सेन बरक्खे। कबहुँ बाजि सन बाजि मर्दि गजराज करक्खे।—तुलसी। (ख) खायेसि फल अरु विटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे।—तुलसी। (ग) जेहि शर मधु मद मर्दि महासुर मर्दन कीन्हो। मान्यो कर्कश नरक शंख हनि शंख सुलीन्हो।—केशव।

मर्दानगी-संज्ञा स्त्री० दे० "मरदानगी"।

मर्दाना-वि० [फ़ा०] (१) पुरुष संबंधी। (२) मनुष्योचित। (३) वीरोचित। (४) वीर। साहसी। (५) पुरुष का सा। पुरुषवत्।

मर्दित-वि० दे० "मर्द्दित"।

मर्दी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मरदानगी। वीरता। बहादुरी।

मर्दुम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] मनुष्य।

यौ०—मर्दुमशुमारी।

मर्दुमशुमारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) किसी देश में रहनेवाले मनुष्यों की गणना। मनुष्य-गणना।

विशेष—यद्यपि भारतवर्ष के मदरास और पंजाब प्रांतों में समय समय पर वहाँ के रहनेवालों की गिनती करने की प्रथा बहुत पूर्व से चली आती थी, पर पाश्चात्य देशों में नवीन प्रणाली की मनुष्य-गणना की प्रथा रोम से आरम्भ हुई है, जहाँ स्वतंत्र मनुष्यों के कुटुंब, संपत्ति, दास और मुखिया की परिस्थिति आदि का विवरण यथा समय लिखकर मनुष्यों की गणना की जाती थी। इंगलैंड में सबसे पहले मनुष्य गणना सन् १८०१ में प्रारम्भ हुई और १८११ में आयरलैंड में गणना की चेष्टा हुई। पर सन् १८५१ तक की मनुष्य-गणना परिपूर्ण नहीं कही जा सकती। सन् १८६१ में नियमित रूप से इंगलैंड, स्काटलैंड और आयरलैंड में मनुष्य गणना प्रारम्भ हुई, जिसमें प्रत्येक गाँव और नगर के मनुष्यों की आयु, वैवाहिक संबंध, पेशे, जन्मस्थान आदि का सविस्तर विवरण लिखा गया; और सन् १८७१ में व्यवस्थित रूप से राजकीय वा इंपीरियल मनुष्य-गणना हुई। ठीक इसी समय अर्थात् सन् १८६७ और १८७२ में भारतवर्ष में भी मनुष्य गणना प्रारम्भ हुई। पर उस समय काश्मीर, हैदराबाद, राजपूताने और मध्य भारत के देशी राज्यों में मनुष्य गणना नहीं हुई और गणना का प्रबंध भी समुचित नहीं था। भारतवर्ष की ठीक ठीक मनुष्य-गणना का आरम्भ १८८१ से माना जा सकता है। यह मनुष्य-गणना १७ फरवरी को हुई थी। तब से प्रति दसवें वर्ष प्रत्येक ग्राम और नगर में रहनेवालों का नाम, आयु, धर्म, जाति, शिक्षा, भाषा, व्यापार आदि का विवरण लिखा जाता है।

(२) किसी स्थान में रहनेवाले मनुष्यों की संख्या। जनसंख्या। आबादी।

मर्दुमी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) मरदानगी। पौरुष। वीरता। (२) पुंसत्व।

क्रि० प्र०—दिखलाना।—रखना।

मर्दूद-वि० दे० "मरदूद"।

मर्द्दक-वि० [सं०] (१) मर्दन करनेवाला। मर्दनकारक। (२) दबानेवाला। तिरोभावक।

मर्द्दन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० मर्द्दित] (१) कुचलना। रौंदना। उ०—(क) भगवान करे, इस दरबार में तुझे वही मिले जो महादेवजी के सिर पर है और तुझे वह शास्त्र पढ़ाया जाय जो काँटों को मर्द्दन करता है।—हरिश्चंद्र। (ख) तेरा नाम तभी है, जब तू इस रावण सरीखे शत्रु का मुकुट अपने चरण तल में मर्द्दन करे।—राधाकृष्ण। (२) दूसरे के अंगों पर अपने हाथों से बलपूर्वक रगड़ना। मलना। जैसे—तैल मर्द्दन करना। उ०—(क) तेल लगाइ कियो रुचि मर्द्दन वस्त्रादि रुचि रुचि धोये। तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै विषयनि के मुख जोये।—सूर। (ख) हरि मिलन सुदामा आयो। विधि करि अरघ पाँवड़े दीन्हे अंतर प्रेम बढ़ायो। आदर बहुत कियो यादवपति मर्द्दन करि अन्हवायो। चोवा चंदन और कुमकुमा परिमल अंग चढ़ायो।—सूर। (ग) पाद पद्म निति मर्द्दन करई। तन छाया सम निति अनुसरई।—शं० दि०। (३) तेल, उबटन आदि शरीर में लगाना। मलना। उ०-भाव दियो आवेंगे श्याम। अंग अंग आभूषण साजति राजति अपने धाम। रति रण जानि अनंग नृपति सों आप नृपति राजति बल जोरति। अति सुगंध मर्द्दन अँग अँग ठनि बनि बनि भूषन भेषति।—सूर। (४) द्वंद्व युद्ध में एक मल्ल का दूसरे मल्ल की गर्दन आदि पर हाथों से घस्सा लगाना। घस्सा। उ०—आकर्षण मर्द्दन भुज-बंधन। दाँव करत भेकर धरि कंधन।—गोपाल। (५) ध्वंस। नाश। उ०—जेहि शर मधु-मद मर्दि महासुर मर्द्दन कीन्हो। मान्यो कर्कश नरक शंख हनि शंख सुलीन्हो।—केशव। (६) रसेश्वर दर्शन के अनुसार अठारह प्रकार के रस-संस्कारों में दूसरा संस्कार। इसमें पारे आदि को ओषधियों के साथ खरल करते या घोंटते हैं। घोंटना। (७) पीसना। घोंटना। रगड़ना।

वि० [स्त्री० मर्द्दिनी] नाशक। विनाशक। संहारकर्ता। उ०—(क) कुंद इंदु सम देह उमारमण करुना अयन। जाहि दीन पर नेह करहु कृपा मर्द्दन मयन।—तुलसी। (ख) किन गजपति मर्द्दन प्रबल सिंह पींजरा दीन।—हरिश्चंद्र।

मर्द्दल-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का मृदंग की तरह का एक प्रकार का बाजा। इस बाजे का उल्लेख महाभारत में है और आजकल इसका प्रचार बंगाल में पाया जाता है, जहाँ यह विशेषकर मृतकों की अर्थी के साथ अथवा हरिकीर्त्तन आदि के समय बजाया जाता है।

मर्द्दित-वि० [सं०] (१) जो मर्द्दन किया गया हो। मला या मसला हुआ। (२) टुकड़े टुकड़े किया हुआ। (३) नष्ट किया हुआ।

मर्म-संज्ञा पुं० [सं० मर्म्मं] (१) स्वरूप। (२) रहस्य। तत्व। भेद।
क्रि० प्र०—देना।—पाना।—लेना।
यौ०—मर्मज्ञ।
(३) संधि स्थान। (४) प्राणियों के शरीर में वह स्थान जहाँ आघात पहुँचने से अधिक वेदना होती है। वैद्यक में मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि के सन्निपात स्थान को मर्म माना गया है और वहाँ प्राणों का निवास स्थान लिखा गया है। प्रकृति, स्थान और परिणाम भेद से मर्म पाँच प्रकार के होते हैं और कुल मर्मों की संख्या १०७ मानी गई है। प्रकृति के विचार से मर्मों की संख्या इस प्रकार है:—मांस मर्म ११, अस्थि मर्म ८, संधि मर्म २०, स्नायु मर्म २७, शिरा मर्म ४१। स्थान के विचार से मर्मों की संख्या इस प्रकार है:—सिकिथ वा पैरों में २२, भुजाओं में २२, उर और कुक्ष में १२, पृष्ट में १४, ग्रीवा और ऊर्ध्व भाग में ३७। परिणाम के विचार से मर्मों की संख्या इस प्रकार है: - सद्यः प्राणहर १९, कालांतर मारक ३३, वैकल्पकारक ४४, रुजाकारक ८, विशल्पघ्न ३।
यौ०—मर्मच्छेदन। मर्मप्रहार। मर्मभेदक। मर्मभेदी। मर्मवचन। मर्मस्पर्शी।

मर्मग-वि० [सं०] मर्मज्ञ।

मर्मचर-संज्ञा पुं० [सं०] हृदय।

मर्मच्छेदक-वि० [सं०] मर्मभेदक। मर्म भेदनेवाला।

मर्मच्छेदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राणघातन। जान लेना। (२) अधिक कष्ट देना। बहुत सताना।

मर्मज्ञ-वि० [सं०] जो किसी बात का मर्म या गूढ़ रहस्य जानता हो। तत्वज्ञ। (२) भेद की बात जाननेवाला। रहस्य जाननेवाला।

मर्मपीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मन को पहुँचनेवाला क्लेश। आंतरिक दुःख।

मर्मप्रहार-संज्ञा पुं० [सं०] वह आघात जो मर्म स्थान पर हो। मर्म स्थान की चोट। वैद्यक में इसे व्रण का एक भेद माना है। इसमें रोगी गिरता पड़ता, अटपट बकता, घबराता और मूर्च्छित होता है, उसके शरीर में गरमी छटकती है और इंद्रियाँ ढीली पड़ जाती हैं।

मर्मभिद्-वि० [सं०] मर्मच्छिद्। मर्मभेदी। उ०—दुष्ट रावण कुंभकरण पाकारि जित मर्मभिद कर्म परिपाकदाता।—तुलसी।

मर्मभेदक-वि० [सं०] (१) मर्म छेदनेवाला। (२) हृदयविदारक। बहुत अधिक हार्दिक कष्ट पहुँचानेवाला।

मर्मभेदी-वि० [सं० मर्मभेदिन्] हृदय पर आघात पहुँचानेवाला। आंतरिक कष्ट देनेवाला। जैसे—आपको इस प्रकार की मर्मभेदी बातें न कहनी चाहिएँ।

मर्ममय-वि० [सं०] रहस्यपूर्ण।

मर्मर-संज्ञा पुं० दे० "मरमर"।

मर्मवचन-संज्ञा पुं० [हिं० मर्म + वचन] वह बात जिससे सुननेवाले को आंतरिक कष्ट पहुँचे। मर्मभेदी बात। उ०—मर्मबचन सीता तब बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।—तुलसी।

मर्मवाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] रहस्य की बात। भेद की या गूढ़ बात।

मर्मविद्-वि० [सं०] मर्म या तत्व जाननेवाला। मर्म्मज्ञ।

मर्मविदारण-संज्ञा पुं० [सं०] मर्मच्छेदन। मर्मच्छेद।

मर्मवेदी-वि० [सं०] मर्मज्ञ।

मर्मस्थल-संज्ञा पुं० [सं०] मर्म स्थान। वि० दे० "मर्म"।

मर्मस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] मर्म स्थल। मर्म। वि० दे० "मर्म"।

मर्मस्पृश-वि० [सं०] हृदय को स्पर्श करनेवाला। हृदय पर प्रभाव डालनेवाला। मर्मस्पर्शी।

मर्मांतक-वि० [सं०] मन में चुभनेवाला। मर्मभेदक। हृदयस्पर्शी।

मर्मान्वेषण-संज्ञा पुं० [सं०] किसी बात का तत्व या गूढ़ रहस्य जानना। तत्वानुसंधान।

मर्माविद, मर्माविध-वि० [सं०] मर्म भेदनेवाला। मर्मभेदी।

मर्मिक-वि० [सं०] मर्मविद्। मर्मज्ञ।

मर्मी-वि० [हिं० मर्म] रहस्य जाननेवाला। तत्वज्ञ। मर्मज्ञ। उ०—(क) ममा मूल गहल मन माना। मर्मी होय सो मर्महिं जाना।—कबीर। (ख) मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान बिराग नयन उर भारी।—तुलसी।

मर्य-संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य।

मर्यादा-संज्ञा स्त्री० दे० "मर्य्यादा"।

मर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीमा।

मर्य्याद-संज्ञा स्त्री० [सं० मर्यादा] (१) दे० "मर्य्यादा"। उ०—भो मर्य्याद बहुत सुख लागा। यहि लेखे सब संशय

भागा।—कबीर। (२) रीति। रसम। प्रथा। (३) चाल। ढंग। (४) विवाह में वर पक्षवालों का वह भोज जो उन्हें विवाह के तीसरे दिन कन्या पक्ष की ओर से दिया जाता है। बढ़हार। बढ़ार।

मुहा०—मर्य्याद रहना = बरात का विवाह के तीसरे दिन ठहर-कर भोज में सम्मिलित होना।

मर्य्यादा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सीमा। हद। (२) कूल। नदी का किनारा। (३) दो वा दो से अधिक मनुष्यों के बीच की प्रतिज्ञा। मुआहिदा। करार। (४) नियम। (५) सदाचार। (६) मान। प्रतिष्ठा। गौरव।

क्रि० प्र०—रखना।

(७) धर्म्म।

मर्य्यादाबंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अधिकार की रक्षा। (२) नजरबंदी।

मर्य्यादी-वि० [सं० मर्य्यादिन्] सीमावान्। सीमायुक्त।

मर्री-संज्ञा स्त्री० [हिं० मरना] वह भूमि जो कर्ज लेनेवाले ने सूद के बदले में महाजन को दी हो।

मर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] क्षांति।

मर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षमा। माफी। (२) घर्षण। रगड़। वि० (१) नाशक। ध्वंसक। (२) दूर करनेवाला। रोकने या हटानेवाला।

मर्षणीय-वि० [सं०] क्षमा करने के योग्य। क्षम्य।

मलंग-संज्ञा पुं० [फ़ा० = आपे से बाहर] (१) एक प्रकार के मुसल्मान साधु। ये मदार शाह के अनुयायी होते हैं और सिर के बाल बढ़ाते और नंगे सिर और नंगे पैर अकेले भीख माँगते फिरते हैं। उ०—(क) कौड़ा आँसू बूँद, करि साँकर बरुनी सजल। कौने बदन न मूँद, दग मलंग डारे रहै।—बिहारी। (ख) किधौं मैन मलंग चढ्यौ थल तुंग अँजीर भरी न परै झटकी।—मुकुंदलाल। (२) एक प्रकार का बड़ा बगला जो स्वच्छ सफ़ेद रंग का होता है। यह भारत-वर्ष और बरमा में होता है; और प्रायः एकांत में और अकेला रहता है।

मलंगा-संज्ञा पुं० दे० "मलंग"।

मल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मैल। कीट। जैसे—धातुओं का मल। उ०—लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी।—तुलसी। (२) शरीर से निकलनेवाली मैल वा विकार। ये मल बारह प्रकार के माने गए हैं—(१) वसा, (२) शुक्र, (३) रक्त, (४) मज्जा, (५) मूत्र, (६) विष्ठा, (७) कर्णमल वा खूँट, (८) नख, (९) श्लेष्मा वा कफ, (१०) आँसू, (११) शरीर के ऊपर जमी हुई मैल और (१२) पसीना। (३) विष्ठा। पुरीष। (४) दूषण। विकार। (५) शुद्धतानाशक पदार्थ। (६) पाप। (७) दोष। बुराई। ऐब। (८) हीरे का एक दोष। (९) जैन शास्त्रानुसार आत्माश्रित दुष्ट भाव। यह पाँच प्रकार का माना गया है—मिथ्या ज्ञान, अधर्म, सक्ति, हेतु और च्युति। (१०) कपूर। (११) प्रकृति। दोष। जैसे,—वात, पित्त, कफ।

[देश०] फीलवानों का एक सांकेतिक शब्द जो हाथियों को उठाने के लिये कहा जाता है।

मलकना†-क्रि० अ० [हिं० मलकाना] (१) हिलना डोलना। (२) इतराना। इठलाना।

मलकरन-संज्ञा पुं० [देश०] बरतन पर नकाशी करनेवालों का एक औजार जिससे खोदने पर दोहरी लकीर बनती है।

मलकाछ-संज्ञा पुं० [हिं० मल्ल + काछ] ठाकुरों के शृंगार के लिये एक प्रकार की कछनी जिसमें तीन झब्बे लगे होते हैं।

मलकाना†-क्रि० स० [अनु०] (१) हिलाना। डोलाना। विच-लित करना। जैसे आँख मलकाना।

क्रि० अ० बना बनाकर बातें करना।

मलखंभ-संज्ञा पुं० दे० "मलखम"।

मलखम-संज्ञा पुं० [सं० मल्ल + हिं० खंभा] (१) लकड़ी का एक प्रकार का खंभा जिस पर कसरत करनेवाले फुरती से चढ़ और उतरकर कसरत करते हैं। मलखम तीन प्रकार के होते हैं—गड़ा मलखम, लटका मलखम और बेत का मलखम। गड़ा मलखम एक लंबा मोटा चार पाँच हाथ ऊँचा मुगदर के आकार का खंभा होता है जो भूमि में गड़ा रहता है। लटका हुआ वा लटकौआँ मलखम छत्त या किसी और धरन के सहारे ऊपर से अधोमुख लटका रहता है। जब इस खंभे की जगह धरन आदि में बेंत लटकाया जाता है, तब इसे बेंत का मलखम कहते हैं। इस पर कसरत करने-वाले बेंत को हाथ में पकड़कर उस पर अनेक मुद्राओं से कसरत करते हैं। इसे बाँस, लगी या मलखानी भी कहते हैं। मलखम की कसरत भारतवर्ष की एक प्राचीन मल्ल नामक क्षत्रिय जाति की निकाली हुई है। इसी मल्ल जाति की आविष्कार की हुई कुश्ती को मल्लयुद्ध भी कहते हैं। मलखम पर चढ़ने उतरने को 'पकड़' कहते हैं। इस कसरत से मनुष्य में फुरती आती है और पैर की रानें दृढ़ होती हैं। मालखंभ। (२) वह कसरत जो मलखम पर वा उसके सहारे से की जाय। (३) पत्थर वा लकड़ी के पुरानी चाल के कोल्हू में लकड़ी का एक खूँटा जो कातर वा पाट में कोल्हू से दूसरी छोर पर गाड़ा जाता है और जिसमें ढेंके की रस्सी बाँधी जाती है; अथवा जिसमें रस्सी लगाकर ढेंकी बाँधकर जाठ के ऊपर लगाते हैं। इसे मरखम भी कहते हैं।

मलखाना*†-वि० [हिं० मल + खाना] मल खानेवाला। उ०—

कोउ न जग में होत कुटिल मैले मलखाने। उसर बैठि मरजाद भ्रष्ट आचार न जाने।—गिरिधरदास।

संज्ञा पुं० [सं० मल्ल+सेन] (१) महोबे के राजा परमाल के भतीजे का नाम। यह पृथ्वीराज चौहान का समकालीन था। (२) पश्चिमी संयुक्त प्रांत में बसनेवाले एक प्रकार के राजपूत जो मुसलमान बना लिए गए थे। इन लोगों का आचार विचार अब तक प्रायः हिंदुओं का सा है।

मलखानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मलखम] एक ऊँचा और सीधा पतला खंभा जिस पर बेंत से मलखम की कसरत की जाती है। इसे बाँस और लग्गी भी कहते हैं। वि० दे० "मलखम"।

मलगजा*-वि० [हिं० मलना+गींजना] मला दला हुआ। गींजा हुआ। मरगजा।

संज्ञा पुं० बेसन में लपेटकर तेल या घी में छाने हुए बैंगन के पतले टुकड़े।

मलगिरी-संज्ञा पुं० [हिं० मलयगिरि] एक प्रकार का हलका कत्थई रंग। यह रंग रँगने के लिये कपड़ा पहले हड़ के हलके काढ़े में और फिर कसीस के पानी में डुबोते हैं; और फिर उसे एक रंग में जिसमें कत्था, चूना, मेंहदी की पत्ती और चंदन का चूरा पीसकर घोला रहता है और छैल छबीला, नागरमोथा, कपूर कचरी, नख, पाँजर, बिरमी, सुगंध बाला, सुगंध कोकल, बालछड़, जरांकुस, बुढ़ना, सुगंध मैत्री, लौंग, इलायची, केसर और कस्तूरी का चूर्ण मिला रहता है, डालकर पहर भर उबालते हैं और उतारने पर उसे दिन रात उसी में पड़ा रहने देते हैं। दूसरे दिन कपड़े को उसमें से निकालकर निचोड़ लेते हैं और बर्तन के रंग को छानकर उसमें हिना का इतर मिलाकर उसमें फिर उस कपड़े को डुबाकर सुखाते हैं। पर आज कल प्रायः रँगरेज मलगिरी रंग रँगने में कपड़े को कत्थे और चूने के रंग में रँगते हैं; फिर उसे कसीस के पानी में डुबा देते हैं। इसके बाद रँगे हुए कपड़े को आहार देकर निचोड़ते और सुखाते हैं और अंत में उसपर हिना का इतर मल देते हैं।

वि० मलगिरी रंग का।

मलघन-संज्ञा पुं० [सं० मलघ्न] एक प्रकार का कचनार, जो लता रूप में होता है और हिमालय की तराई, मध्य भारत और टेनासरम के जंगलों में पाया जाता है। इसकी छाल मलू कहलाती है जिस पर रंग अच्छा चढ़ता है और जो कूटने पर ऊन की तरह चमकदार हो जाती है। इसे ऊन में मिलाकर तागा काता जाता है जिससे ऊनी कपड़े बुने जाते हैं। यह छाल ऐसी साफ होती है कि ऊन में मिलाने पर इसकी मिलावट बहुत कम पहचानी जाती है।

मलघ्न-वि० [सं०] [स्त्री० मलघ्नी] मलनाशक।

संज्ञा पुं० (१) शाल्मली कंद। सेमल का मुसला। (२) कचनार का एक भेद। मलघन।

मलघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदौना।

मलज-संज्ञा पुं० [सं०] पीव।

मलज्वर-संज्ञा पुं० [सं० मल+ज्वर] अमृत सागर के अनुसार एक प्रकार का ज्वर जो मल के रुकने के कारण होता है। इससे रोगी के पेट में शूल और सिर में पीड़ा होती है, मुँह सूखा रहता है, जलन होती है, भ्रम होता है और कभी कभी मूर्च्छा भी आती है।

मलझन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बेल जो बागों में लगाई जाती है।

मलट-संज्ञा पुं० [अं० मैलेट] (१) लकड़ी का हथौड़ा जिससे खूँटे आदि गाड़े जाते हैं। (२) काठ का वह हथौड़ा जिससे छापने के पहले सीसे के अक्षर ठोंककर बैठाए और बराबर किए जाते हैं।

मलद-संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकीय रामायण के अनुसार एक प्रदेश का नाम। कहते हैं कि ताड़का यहीं रहती थी। इसे मल्लभूमि भी कहते थे।

मलदूषित-वि० [सं०] मलीन। मैला।

मलद्रावी-संज्ञा पुं० [सं० मलद्राविन्] जयपाल। जमालगोटा।

मलद्वार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर की वे इंद्रियाँ जिनसे मल निकलते हैं। (२) पाखाने का स्थान। गुदा।

मलधात्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धाय जो बच्चों का मल मूत्र धोने पर नियुक्त हो।

मलधारी-संज्ञा पुं० [सं० मलधारिन्] एक प्रकार के जैन साधु जो शरीर में मल लगाए रहते हैं ओर उसको धोते और शुद्ध नहीं करते।

मलन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मर्दन। मींजना। (२) पोतना। लेप करना। लगाना।

मलना-क्रि० स० [सं० मलन] (१) हाथ अथवा किसी और पदार्थ से किसी तल पर उसे साफ, मुलायम या अच्छा करने के लिए रगड़ना। हाथ या किसी और चीज से दबाते हुए घिसना। मर्दन। मींजना। मसलना। जैसे,—लोई मलना, घोड़ा मलना, बरतन मलना। उ०—(क) यहि सर घड़ा न बूड़ता मंगर मलि मलि न्हाय। देवल बूड़ा कलस लों पक्षि पियासा जाय।—कबीर। (ख) चलि सखि तेहि सरोवर जाहिं। जेहि सरोवर कमल कमला रवि बिना विकसाहिं। हंस उज्वल पंख निर्मल अंग मलि मलि न्हाहिं। मुक्ति मुक्ता अंबु के फल तिन्हैं चुनि चुनि खाहिं।—सूर।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—दलना मलना=(१) चूर्ण करना। पीस कर टुकड़े

टुकड़े करना। उ०—रन मत्त रावण सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमल।—तुलसी। (२) मसलना। हाथों से रगड़ना। घिसना। हाथ मलना = (१) पछताना। पश्चात्ताप करना। उ०—बार बार करतल कहँ मलि कै। निज कर पीठ रदन सों दलि कै।—गोपाल। (२) क्रोध प्रगट करना। उ०—चलो सुकर्मा बीर भलो अंबर तन धारे। मलो करहि भरि क्रोध हलोरन नद बहु वारे।—गोपाल।

(२) किसी तरल पदार्थ वा चूर्ण आदि को किसी तल पर रखकर हाथ से रगड़ना। मालिश करना। जैसे,—तेल मलना, सुरती मलना। उ०—(क) मधु सों गीले हाथ ह्वै ऍंचो धनुष न जाइ। ते पराग मलि कुसुम शर बेधत मोहिं बनाय।—गुमान। (ख) चलेउ भूप पुरुमित्र मित्रद्युति मगध मित्र मन। पट पवित्र मनि चित्र सहित मलि इत्र धरे तन।—गोपाल। (३) किसी पदार्थ को टुकड़े टुकड़े या चूर्ण करने के लिए हाथ से रगड़ना या दबाना। मसलना। मींजना। उ०—जो कहो तिहारो बल पायँ बाएँ हाथ नाथ। आँगुरी सों मेरु मलि डारों यह किन मैं।—हनुमन्नाटक। (४) मरोड़ना। ऐंठना। जैसे,—मुँह मलना, नाक मलना, कान मलना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

(५) हाथ से बार बार रगड़ना या दबाना। जैसे,—छाती मलना, गाल मलना।

मलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मलना] आठ दस अंगुल लंबा, दो अंगुल चौड़ा, सुडौल और चिकना कतजन के आकार का बाँस का एक टुकड़ा जिससे कुम्हार मलकर सुराहियाँ आदि चिकनी करते हैं।

मलपंकी—वि० [सं० मलपंकिन्] (१) मलीन। मैला। (२) कीचड़ में सना हुआ।

मलपू—संज्ञा पुं० [सं०] कठूमर।

मलबा—संज्ञा पुं० [हिं० मल ?] (१) कूड़ा कर्कट। कतवार। (२) टूटी या गिराई हुई इमारत की ईंटें, पत्थर और चूना आदि। (३) एक प्रकार की उगाही वा बेहरी जो गाँव में पट्टीदारों से दौरे के हाकिमों आदि के ख़र्च के लिये वसूल की जाती है।

मलभुज—संज्ञा पुं० [सं०] कौवा।

मलभेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

मलमल—संज्ञा स्त्री० [सं० मलमल्लक] एक प्रकार का पतला कपड़ा जो बहुत बारीक सूत से बुना जाता है। प्राचीन काल में यह कपड़ा भारतवर्ष में, विशेष कर बंगाल और बिहार में बुना जाता था और वहीं से भिन्न भिन्न देशों में जाता था। अब तक ढाके और मुर्शिदाबाद में अच्छी मलमल बनती है। उ०—(क) मलमल खासा पहनते खाते नागर पान। टेढ़ा होकर चालते करते बहुत गुमान।—कबीर। (ख) कमरी थोरे दाम की आवै बहुतै काम। खासा मलमल बाफता उनकर राखै मान।—गिरधरराय।

मलमला—संज्ञा पुं० [देश०] कुलफे का साग।

मलमलाना—क्रि० स० [हिं० मलना] (१) बार बार स्पर्श कराना। लगातार छुलाना। (२) बार बार खोलना और ढकना। जैसे पलक मलमलाना। (३) पुनः पुनः आलिंगन करना। उ०—नवल सुनि नवल पिया नयो नयो दरश विवि तन मलमले प्राणपति पीय को अधर धर्‍यो री। प्रीति की रीति प्राण चंचल करत निरखि नागरी नैन चिबुक सो मोरी। तब काम केलि कमनीय चंदप चकोर चातक स्वाति बूँद पर्‍यो री। सुनि सूरदास रस राशि रस बरसि कै चली जनु हरति ले कुहू सु गोरी।—सूर।

मलमल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] कोपीन।

मलमा†—संज्ञा पुं० [हिं० मलवा] टूटे फूटे मकानों के गिरे पड़े पत्थर, रोड़े आदि सामान। मलबा।

मलमास—संज्ञा पुं० [सं०] वह अमांत मास जिसमें संक्रांति न पड़ती हो। इसे अधिक मास भी कहते हैं।

विशेष—यों तो साधारण रीति से बारह महीने का वर्ष माना जाता है, पर कभी कभी तेरह महीने का भी वर्ष होता है। पर यह बात केवल चांद्र मास में ही होती है; और मास सदा वर्ष में बारह ही होते हैं। चांद्र मास की वृद्धि का हेतु यह है कि दिन रात्रि का मान, जिसे दिनमान कहते हैं, ६० दंड का माना जाता है। पर एक तिथि का मान ५८ दंड का माना जाता है। इसलिये ३० दिन में ३१ तिथियाँ पड़ती हैं। इस हिसाब से चांद्र वर्ष और सामान्य वर्ष में प्रति वर्ष बारह दिन का अंतर पड़ा करता है जो पाँच वर्ष में पूरे दो महीने का अंतर डाल देता है। ऐसे अधिक महीने को मलमास कहते हैं। वह चांद्र मास, जिसमें सूर्य्य की संक्रांति पड़ती है, शुद्ध मास कहलाता है। पर संक्रांति वर्जित मास तीन प्रकार के माने गए हैं जिन्हें भानुलंघित, क्षय और मलमास कहते हैं। भानुलंघित और मलमास वे मास कहलाते हैं जिनमें सूर्य्य संक्रांति न पड़े। पर यदि सूर्य्य संक्रांति शुक्र प्रतिप्रदा को पड़ी हो, तो उसे क्षयमास कहते हैं। बारह महीने दो अयनों में बाँटे गए हैं—एक वैशाख से कुआँर तक, दूसरा कातिक से चैत तक। यह मलमास प्रायः फागुन से अगहन तक दस ही महीनों में पड़ता है। शेष दो महीनों में से पूस में तो कभी मलमास पड़ता ही नहीं; और माघ में बहुत ही कम पड़ा करता है। इसका नियम यह है कि यदि दक्षिणायन और उत्तरायन दोनों अयनों में मलमास युक्त मास पड़ें, तो दक्षिणायन का मास भानुलंघित और उत्तरायण का

मास मलमास कहलावेगा। पर यदि एक ही अयन में दो मास मलमास लक्षणयुक्त हों, तो पहला मलमास और दूसरा भानुलंघित कहलावेगा। पर ऐसे दो मास उसी वर्ष में पड़ते हैं जिसमें क्षय मास भी पड़ता है। पर कार्तिक, अगहन और पूस के महीने में क्षय मास नहीं होता। विवाहादि शुभ कृत्य जिस प्रकार मलमास में वर्जित हैं, उसी प्रकार भानुलंघित और क्षय मास में भी वर्जित हैं।

पर्य्या०—अधिक मास। पुरुषोत्तम। मलिम्लुच। अधिमास। असंक्रांत मास। नपुंसक मास।

मलय-संज्ञा पुं० [सं० मलय = पर्वत] (१) एक पर्वत का नाम। यह पश्चिमी घाट का वह भाग है जो मैसूर राज्य के दक्षिण और ट्रावंकोर के पूर्व में है। यहाँ चंदन बहुत उत्पन्न होता है। पुराणों में इसे सात कुलपर्वतों में गिनाया गया है।

पर्य्या०—आषाढ़। दक्षिणाचल। चंदनादि। मलयाचल।

विशेष—मलय शब्द पवन, समीर, वायु आदि शब्दों के आदि में समस्त होकर (१) सुगंधित और (२) दक्षिणी वायु का अर्थ देता है।

(२) मलाबार देश। (३) मलाबार देश के रहनेवाले मनुष्य। (४) एक उपद्वीप का नाम। (५) सफेद चंदन। (६) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (७) नंदन वन। (८) छप्पय के एक भेद का नाम। इसमें २५ गुरु, १०२ लघु, कुल १२७ वर्ण या १५२ मात्राएँ वा २५ गुरु, ९८ लघु, कुल १२३ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं। (९) पहाड़ का एक प्रदेश। शैलांग। (१०) ऋषभदेव के एक पुत्र का नाम।

मलयगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलय नामक पर्वत जो दक्षिण में है। यहाँ चंदन अधिक और उत्तम उत्पन्न होता है। यह पश्चिमी घाट का वह भाग है जो मैसूर के दक्षिण और ट्रावंकोर के पूर्व में है। पुराणों में इसे कुल पर्वतों में गिनाया है। (२) मलयगिरि में उत्पन्न चंदन। उ०—बेधी जानि मलयगिरि बासा। सीस चढ़ी लोटहिं चहुँ पासा।—जायसी। (३) हिमालय पर्वत का वह देश जहाँ कामरूप और आसाम है। (४) दे० "मलयगिरी"।

मलयगिरी-संज्ञा पुं० [हिं० मलयगिरि] दारचीनी की जाति का एक प्रकार का बड़ा और बहुत ऊँचा वृक्ष जो कामरूप, आसाम और दारजिलिंग में उत्पन्न होता है। इसकी छाल दो अंगुल से चार पाँच अंगुल तक मोटी होती है और लकड़ी भारी, पीलापन लिये सफेद रंग की होती है। छाल और लकड़ी दोनों सुगंधित होती हैं। लकड़ी बहुत मजबूत होती है और साफ करने पर चमकदार निकलती है जिसमें दीमक आदि कीड़े नहीं लगते। इससे मेज, कुरसी, संदूक आदि बनते हैं और इमारत आदि में भी यह काम आती है। वसंत ऋतु में बीज बोने से यह वृक्ष उगता है।

मलयज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन। (२) राहु।

मलयद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन। (२) मदन। मैना वा मैनी नामक पेड़।

मलयभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय के एक प्रदेश का नाम।

मलयवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

मलया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) त्रिवृता। निसोथ। (२) सोमराजी। बाबची। बकुची।

मलयागिरि-संज्ञा पुं० दे० "मलयगिरि"।

मलयाचल-संज्ञा पुं० [सं०] मलयगिरि। मलय पर्वत।

मलयानिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलय पर्वत की ओर से आनेवाली वायु। दक्षिण की वायु। (२) सुगंधित वायु। (३) वसंत काल की वायु।

मलयालम-संज्ञा पुं० [ता० मलय = पर्वत + अलम = उपत्यका] दक्षिण के एक पहाड़ी देश का नाम जो पश्चिमी घाट के किनारे किनारे फैला हुआ है। इसे केरल भी कहते हैं। यहाँ की भाषा भी मलयालम कहलाती है। यहाँ नायर नामक हिंदुओं और मोपला नामक मुसलमान जाति की आबादी है।

मलयालि-संज्ञा पुं० [ता० मलयालम] मलयालम में बसनेवाली एक पहाड़ी जाति का नाम। इस जाति के लोग पशुपालन और खेती करते हैं और तामिल भाषा बोलते हैं।

मलयाली-वि० [ता० मलयालम] (१) मलाबार देश का। मलाबार देश संबंधी। (२) मलाबार देश में उत्पन्न।

संज्ञा स्त्री० मलाबार देश की भाषा।

मलयोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।

मलरुचि-वि० [सं०] दूषित रुचि का। पापी। उ०—सेइय सहित सनेह देह भरि कामदेव कलि कासी। समनि सोक संताप पाप रुज सकल सुमंगलरासी।......दंडपानि भैरव विषान मलरुचि खलगन भे दासी। लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन करनघंट घंटा सी।—तुलसी।

मलरोधक-वि० [सं०] जो मल को रोके। जिसके खाने से कोष्ठ बद्ध हो। कब्जियत करनेवाला। काबिज।

मलरोधन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्टंभ। कोष्ठबद्ध। कब्जियत।

मलवा-संज्ञा पुं० [बरमी] हावर की जाति का एक पेड़ जो बरमा में होता है। यह बहुत अधिक ऊँचा नहीं होता। इसकी लकड़ी चिकनी और नारंगी रंग की होती है और मेज, कुर्सी आदि बनाने के काम में आती है।

मलवाना-क्रि० स० [हिं० मलना] मलने का प्रेरणार्थक रूप। मलने के लिये प्रेरणा करना। मलने का काम दूसरे से कराना।

मलविनाशिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शंखपुष्पी। (२) क्षार।

मलवेग-संज्ञा पुं० [सं०] अतीसार।

मलसा-संज्ञा पुं० [सं० मल्लक] घी रखने का कुप्पा।

मलसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मलसा] मिट्टी का बर्तन जिसमें प्रायः मुसलमान खाना पकाते हैं।

मलसूत-संज्ञा पुं० [अ० मश्सूत] भारी बोझ उठाकर गाड़ी वा नाव आदि पर लादने का यंत्र। गीध। दमकला।

मलहंता-संज्ञा पुं० [सं० मलहंतृ] सेमल का मूसल।

मलहम-संज्ञा पुं० [अ० मरहम्] ओषधियों के योग से बना हुआ चिकना चपकीला लेप जो घाव, फोड़े आदि पर लगाया जाता है। मरहम।

मलहर-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा। जयपाल।

मलहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार राजा रौद्राश्व की कन्या का नाम।

मलहारक-संज्ञा पुं० [सं०] भंगी। मेहतर।

मला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमड़ा। (२) चमड़े से बना हुआ पदार्थ। (३) कसकुट। (४) भुइँ आँवला। (५) बिच्छू का डंक। (६) आँबा हलदी।

मलाई-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) दूध की साढ़ी। उ०—छाछ को ललात जैसे राम नाम के प्रसाद खात खून सात सौंधे दूध की मलाई है।—तुलसी।

विशेष—जब दूध हलकी आँच पर गरम किया जाता है, तब वह गाढ़ा होता जाता है और उसके ऊपर सार भाग की एक हलकी तह जमती जाती है। यही तह बार बार जमने से मोटी हो जाती है। इसी को मलाई कहते हैं। यह मुलायम और चिकनाई से भरी होती है। जमाए जाने पर इसी मलाई को मथकर मसका निकाला जाता है।

क्रि० प्र०—आना।—जमना।—पड़ना।

(२) सार तत्व। रस। उ०—भूरि दई विष भूरि भई प्रहलाद सुधाई सुधा की मलाई। (३) एक रंग का नाम जो बहुत हलका बादामी होता है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० मलना] (१) मलने की क्रिया वा भाव। (२) मलने की मजदूरी।

मलाकर्षी-संज्ञा पुं० [सं० मलाकर्षिन्] [स्त्री० मलाकर्षिणी] भंगी। मेहतर।

मलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कामिनी स्त्री। (२) वेश्या। (३) दूती। (४) हथिनी।

मलाट-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा घटिया कागज जो प्रायः खाकी रंग का होता है और कागजों के बंडल बाँधने या इसी प्रकार के और कामों में आता है।

मलान*-वि० दे० "म्लान"। उ०—(क) बरष चारि दस विपिन बसि करि पितु वचन प्रमान। आइ पायँ पुनि देखिहउँ मन जनि करसि मलान।—तुलसी। (ख) सुनि सजनी सुर भान है अति मलान मतिमंद। पूनो रजनी में जु गिलि देत उगिलि यह चंद।—शृं० स०।

मलानि*-संज्ञा स्त्री० दे० "म्लानि"। उ०—जानि जिय अनुमानहीं सिय सहस बिधि सनमानि। राम सदगुन धाम परमित भई कछुक मलानि।—तुलसी।

मलापह-वि० [सं०] [स्त्री० मलापहा] (१) मलनाशक। मल दूर करनेवाला। (२) पापनाशक।

मलाबार-संज्ञा पुं० [सं० मलय + वार = किनारा] भारत के दक्षिणी प्रांत का वह प्रदेश जो पश्चिमी समुद्र के किनारे पर है। यह प्रदेश पश्चिमी घाट के पच्छिमी समुद्र के तट पर है।

मलामत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लानत। फटकार। दुतकार। उ०—आया रोज क्यामत मलामत से पाक हुए, रहैगी सलामत सुदाई आप आपते।

यौ०—लानत मलामत।

(२) किसी पदार्थ में का निकृष्ट या खराब अंश। गंदगी।

क्रि० प्र०—निकलना।

मलामती-वि० [फ़ा०] (१) जो मलामत करने के योग्य हो। दुतकारने या फटकारने योग्य। (२) घृणित। जघन्य।

मलार-संज्ञा पुं० [सं० मल्लार] संगीत शास्त्रानुसार एक राग का नाम। कुछ आचार्य्य इसे छः प्रधान रागों के अंतर्भूत मानते हैं, पर दूसरे इसके बदले हिंडोल या मेघ राग को स्थान देते हैं। यह राग वर्षा ऋतु में गाया जाता है। बेलावली, पूरवी, कान्हड़ा, माधवी, कोड़ा और केदारिका ये छः इसकी रागिनियाँ हैं। यह संपूर्ण जाति का राग है और इसके गाने की ऋतु वर्षा और समय रात का दूसरा पहर है। संगीत-सारवाले ने इसे मेघ राग का छठा पुत्र माना है। इसका रंग श्याम, आकृति भयानक, गले में साँप की माला पहने, फूलों के आभूषण धारण किए सस्त्रीक बतलाया गया है। इसका स्थान विंध्याचल, वस्त्र केले का पत्ता और मुकुट केले की कलिका कही जाती है। इसका अस्त्र धनुष, कटारी और छुरा लिखा है। उ०—पूस मास सुनि सखिन पै साईं चलत सवार। गहि कर बिन परवीन तिय राग्यौ राग मलार।—बिहारी।

मुहा०—मलार गाना = बहुत प्रसन्न होकर कुछ कहना, विशेषतः गाना। जैसे—आप दिन भर घर पर बैठे मलार गाया करते हैं।

मलारि-संज्ञा पुं० [सं०] क्षार।

मलारी-संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लारी] वसंत राग की एक रागिनी का नाम।

मलाल-संज्ञा पुं० [अ०] (१) दुःख। रंज।

मुहा०—मलाल निकालना = मन में दबा हुआ दुःख कुछ बक झककर दूर करना।

(२) उदासीनता। उदासी।

मलावह-संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार पापों की एक कोटि

जिसमें कृमि-कीटों और पक्षियों की हत्या, मद्य के साथ एक पात्र में लाए हुए पदार्थों को खाना, फल, ईंधन और फूल की चोरी और अधैर्य्य सम्मिलित हैं।

मलाह*-संज्ञा पुं० दे० "मल्लाह"। उ०—रूप कहर दरियाव में तरिबो है न सलाह। नैनन समुझावत रहै निसि दिन ज्ञान मलाह।—रसनिधि।

मलिंग-संज्ञा पुं० [सं० मिलिंद] भौंरा। उ०—(क) मल्लिकान मंजुल मलिंद मतवारे मिले, मंद मंद मारुत सुहीम मनसा की है।—पद्माकर। (ख) नेह सरीखी रज्जु नहिं, कविवर करै विचार। वारिज बाँध्यो मलिंद लखि, दार विदारन-हार।—दीनदयाल। (ग) मंजुल मंजरी पै हो मलिंद विचारि कै भार सम्हारि कै दीजियो।—व्यंग्यार्थ।

मलिक-संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० मलिका] (१) राजा। (२) अधीश्वर। (३) मुसलमानों की एक जाति का नाम जो प्रायः कृषि कर्म करती है। ये लोग मध्यम श्रेणी के माने जाते हैं। (४) किन्नरों और कथकों के एक वर्ग की उपाधि।

मलिका-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) रानी। (२) अधीश्वरी।
संज्ञा स्त्री० दे "मल्लिका"।

मलिच्छ*-संज्ञा पुं० दे० "म्लेच्छ"। उ०—तबही विश्वामित्र तहँ विविध सुआयुध वाहि। व्याकुल कीन्ह मलिक्ष दल सब शक यवन बिदाहि।—पद्माकर।

मलिच्छ*-संज्ञा पुं० दे० "म्लेच्छ"।

मलित-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी कूँची जिससे सुनार नक्काशी के गहनों को साफ करते हैं।

मलिन-वि० [सं०] [स्त्री० मलिना, मलिनी] (१) मलयुक्त। मैला। गँदला। स्वच्छ का उलटा। उ०—चाहै न चंपकली की थली मलिनी नलिनी की दिशान सिधावै।—केशव। (२) दूषित। खराब। (३) जिसका रंग खराब हो गया हो। मटमैला। धूमिल। बदरंग। उ०—मलिन भये रस माल सरोवर मुनिजन मानस हंस।—सूर। (४) पापात्मा। पापी। (५) धीमा। फीका। जैसे, ज्योति मलिन होना। (६) म्लान। विषण्ण। उदासीन। जैसे मलिन मन, मलिन मुख।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार के साधु जो मैला कुचैला कपड़ा पहनते हैं। पाशुपत। (२) मट्ठा। (३) सोहागा। (४) काला अगर वा अगर चंदन। (५) गौ का ताजा दूध। (६) हंस। (७) दस्ता। मूठ। (८) पाप। दोष। (९) रत्नों की चमक और रंग का फीका और धुँधला होना। रत्नों के लिये यह एक दोष समझा जाता है।

मलिनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मलिन होने का भाव। मैलापन।

मलिनत्व-संज्ञा पुं० [सं०] मलिन होने का भाव। मलिनता। मालिन्य।

मलिनमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। आग। (२) बैल की पूँछ। (३) प्रेत।
वि० (१) जिसका मुँह उदास हो। उदासीन वदन। (२) क्रूर। (३) खल।

मलिनांबु-संज्ञा पुं० [सं०] मसी। स्याही।

मलिना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रजस्वला स्त्री। (२) लाल खाँड़। (३) छोटी भटकटैया।

मलिनाई*-संज्ञा स्त्री० [हिं० मलिन + आई (प्रत्य०)] मैलापन। मलिनता। उ०—(क) सुखी भए सुरसंत भूमिसुर खलगन मन मलिनाई। सबै सुमन विकसत रवि निकसत कुमुद विपिन बिलखाई।—तुलसी। (ख) होम हुताशन धूमनगर एकै मलिनाइय।—केशव।

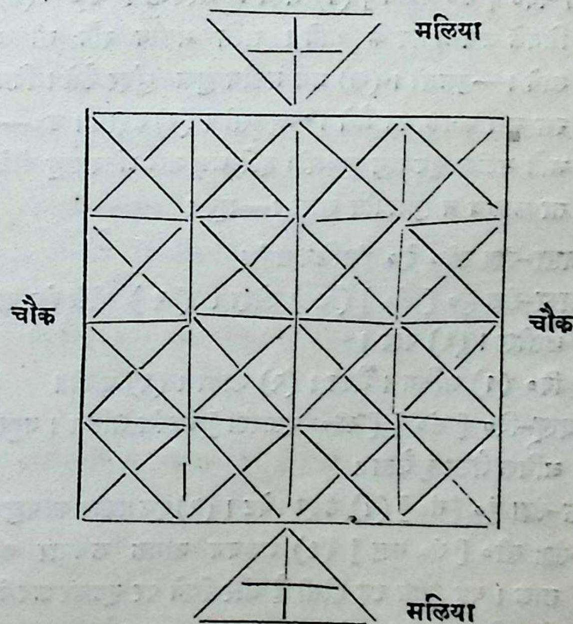
मलिनाना*-क्रि० अ० [हिं० मलिन] मैला होना। उ०—भरे नेह सौहैं खरे निपट रहे मलिनाय। शृं० स०।

मलिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रजस्वला स्त्री।

मलिनीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] पापों की एक कोटि का नाम। मलावह।

मलिम्लुच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मल मास। (२) अग्नि। (३) चोर। (४) वायु। (५) पंच यज्ञ न करनेवाला पुरुष।

मलिया†-संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लक वा मल्लिका, हिं० मरिया] (१) मिट्टी के एक बर्तन का नाम जिसका मुँह तंग होता है। इसमें घी, दूध, दही आदि पदार्थ रखे जाते हैं। (२) गोटी के खेल में वह त्रिकोण चक्र जो चौक के दोनों ओर बीच में बना रहता है। इस खेल को अठारह गोटी कहते हैं। यह



खेल दो आदमी खेलते हैं और प्रत्येक पक्ष में अठारह गोटियाँ होती हैं जिनमें से छः गोटियाँ मलिया में और शेष

बारह ढाई पंक्तियों में रखी जाती हैं। केवल बीच का विंदु खाली रहता है। गोटियों की चाल एक विंदु से दूसरे विंदु तक लकीरों के मार्ग से होती है। जब एक गोटी किसी दूसरी गोटी को उल्लंघन करती है, तब वह पहली गोटी मानों मर जाती है और खेल में से निकालकर अलग कर दी जाती है। दोनों ओर की सब गोटियाँ जब मलिया से चौक में निकल आती हैं, तब यदि किसी पक्षवाला 'मलिया मेट' शब्द कह दे तो दोनों ओर की मलिया मिटा दी जाती है और फिर गोटियाँ चौक में ही रहती हैं। पर यदि कोई मलिया-मेट न कहे तो गोटियाँ बराबर मलिया में आती जाती रहती हैं।

यौ०—मलियामेट

(३) घेरा। चक्कर।

मुहा०—मलियां बाँधना = रस्सी को मोड़कर बाँधना। (लश०)

मलियामेट-संज्ञा पुं० [हिं० मलिया + मिटाना] सत्तानाश। तहस नहस। जैसे—उसने सारा घर मलिया मेट कर दिया।

मलिष्ठ-वि० [सं०] अत्यंत मलिन। बहुत अधिक मैला कुचैला।

मलिस-संज्ञा स्त्री० [देश०] छेनी के आकार का सुनारों का एक औ-जार जिससे हँसुली की गिरह वा घुंडियाँ उभारी जाती हैं।

मलीदा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चूरमा। (२) एक प्रकार का ऊनी वस्त्र जो बहुत मुलायम और गरम होता है। यह बुने जाने के बाद मलकर गफ़ और मुलायम बनाया जाता है। यह प्रायः काश्मीर और पंजाब से आता है।

मलीन-वि० [सं० मलिन] (१) मैला। अस्वच्छ। उ०—(क) जिनके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे।—तुलसी। (ख) मन मलीन मुख सुंदर कैसे। विष रस भरा कनक घट जैसे।—तुलसी। (२) उदास। उ०—अति मलीन वृषभानु कुमारी। हरि श्रम जल अंतर तनु भींजे ता लालच न धुवावति सारी।—सूर।

मलीनता-संज्ञा स्त्री० दे० "मलिनता"।

मलीमस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोहा। (२) पीले रंग का कसीस। (३) पाप।

वि० (१) मलिन। मैला। (२) काला। (३) पापी।

मलीयस्-वि० [सं०] [स्त्री० मलीयसी] अत्यंत मलिन। बहुत अधिक मैला कुचैला।

मलुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उदर। पेट। (२) एक प्रकार का पशु।

मलू-संज्ञा स्त्री० [सं० माल़ु] (१) मलवन नामक कचनार की छाल। यह बहुत दृढ़ होती है और रँगने पर कूटकर ऊन में मिलाई जाती है। (२) मलवन नामक वृक्ष।

मलूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का कीड़ा। (२) एक प्रकार का पक्षी। उ०—मैना मलूक कोइल कपोत। बग-हंस और कलहंस गोत।—सूदन। (३) बौद्ध शास्त्रानुसार एक संख्यास्थान। (४) दे० "अमलूक"।

वि० [देश०] सुंदर। मनोहर। उ०—प्यारी प्यारी वे मलूक हरियाली कुंजें। शोभा छबि आनंद भरी सब सुख की पुंजें।—श्रीधर।

मलेच्छ-संज्ञा पुं० दे० "म्लेच्छ"।

मलेच्छ-संज्ञा पुं० दे० "म्लेच्छ"।

मलेरिया-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का ज्वर जो वर्षा ऋतु में फैलता है।

विशेष—पहले डाक्टरों का विश्वास था कि वस्तुओं के सड़ने वा किसी अन्य कारण से वायु में विष फैलता है जिससे सविराम, अर्थात् अँतरिया, तिजरा, चौथिया आदि ज्वर, जो मलेरिया के अंतर्गत हैं, फैलते हैं। पर अब उन्होंने यह निश्चय किया है कि मच्छड़ों के दंश से मलेरिया का विष मनुष्यों के रक्त में पहुँचता है जिससे सविराम ज्वर का रोग उत्पन्न होता है।

मलोला-संज्ञा पुं० [अ० मलूल वा वलवला] (१) मानसिक व्यथा। दुःख। रंज। उ०—राधे अहो हरि भावते कों भरिके भुज भेंटिये मेटि मलोलैं।—देव।

मुहा०—मलोला वा मलोले आना = दुःख होना। पछतावा होना। पश्चात्ताप होना। मलोले खाना = मानसिक व्यथा सहना। दुःख उठाना। उ०—उन्होंने मसोसे के मलोले खा के कहा।—इंशा अल्लाह। दिल के मलोले निकालना = भड़ास निकालना। कुछ बक झककर मन का दुःख दूर करना।

(२) वह इच्छा जो उमड़ उमड़कर मानसिक व्याकुलता उत्पन्न करे। अरमान। जैसे—मेरे मन का मलोला कब होगा। (गीत)

क्रि० प्र०—आना।—उठना।—निकालना।

मल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन जाति का नाम। इस जाति के लोग द्वंद्व युद्ध में बड़े निपुण होते थे; इसी लिये द्वंद्व युद्ध का नाम मल्लयुद्ध और कुश्ती लड़नेवाले का नाम मल्ल पड़ गया है। महाभारत में मल्ल जाति, उनके राजा और उनके देश का उल्लेख है। भारतवर्ष के अनेक स्थान जैसे मुलतान (मल्ल-स्थान) मालव, मालभूमि आदि में (मल्ल) शब्द विकृत रूप में मिलता है। त्रिपिटक से कुश-नगर में मल्लों के राज्य का होना पाया जाता है। मनुस्मृति में मल्लों को लिच्छिवी आदि के साथ संस्कारच्युत वा व्रात्य क्षत्रिय लिखा है। पर मल्ल आदि क्षत्रिय जातियाँ बौद्ध मतावलंबी हो गई थीं। इसका उल्लेख स्थान स्थान पर त्रिपिटक में मिलता है जिससे ब्राह्मणों के अधिकार से उनका निकल जाना और व्रात्य होना ठीक जान पड़ता है; और कदाचित् इसी लिये स्मृतियों में ये व्रात्य कहे गए

हैं। (२) द्वंद्व युद्ध करनेवाला। पहलवान। पट्टा। (३) मनुस्मृति के अनुसार एक व्रात्य क्षत्रिय जाति का नाम। (४) ब्रह्म वैवर्त्त के अनुसार लेट पिता और तीवरी माता से उत्पन्न एक वर्ण संकर जाति का नाम। (५) पराशर पद्धति के अनुसार कुंदकार पिता और तंतुवाय माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति। (६) पात्र। (७) कपोल। (८) एक प्रकार की मछली। (९) एक प्राचीन देश का नाम जो विराट देश के पास था। (१०) दीप। उ०—दग दगाति जो मल्ल सी अग्नि राशि की कांति। सोई मणि माणिक विषे, कांति रंग की भाँति।—रत्न परीक्षा।

मल्लक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत। (२) दीवट। चिरागदान। (३) दीप। दीया। (४) नारियल के छिलके का बना हुआ पात्र। (५) बर्त्तन। पात्र। (६) डब्बे वा संपुट का पल्ला।

मल्लक्रीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लयुद्ध। कुश्ती।

मल्लखंभ-संज्ञा पुं० दे० "मलखम"।

मल्लज-संज्ञा पुं० [सं०] काली मिर्च।

मल्लतरु-संज्ञा पुं० [सं०] पियाल या पियार का पेड़। चिरौंजी।

मल्लताल-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत शास्त्रानुसार एक ताल का नाम जिसमें पहले चार लघु और फिर दो द्रुत मात्राएँ होती हैं। यह ताल के आठ मुख्य भेदों में से एक माना जाता है।

मल्लनाग-संज्ञा पुं० [सं०] कामसूत्र के रचयिता वात्स्यायन का एक नाम।

मल्लभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मलद नामक देश। (२) कुश्ती लड़ने की जगह। अखाड़ा।

मल्लयुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] परस्पर द्वंद्व युद्ध जो बिना शस्त्र के केवल हाथों से किया जाय। बाहुयुद्ध। कुश्ती।

पर्य्या०—नियुद्ध। बाहु-युद्ध।

विशेषः—यह युद्ध प्राचीन मल्ल जाति के नाम से प्रख्यात है। ये लोग अखाड़ों में व्यायाम और युद्ध किया करते थे। महाभारत काल में इनकी युद्ध प्रणाली को राजा लोग इतना पसंद करते थे कि प्रायः सभी राजाओं के दरबार में मल्ल नियुक्त किए जाते थे और उन्हें अखाड़ों में लड़ाया जाता था। कितने लोग मल्लों को रखकर उनसे स्वयं शिक्षा प्राप्त करते थे और मल्ल युद्ध में निपुणता बड़े गौरव की बात मानी जाती थी। जरासंध और भीम मल्लयुद्ध के बड़े व्यसनी थे। जरासंध के यहाँ मल्लों की एक सेना भी थी।

मल्लविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुश्ती की विद्या। मल्लयुद्ध की विद्या।

मल्लशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लयुद्ध करने का स्थान। मल्लभूमि। अखाड़ा।

मल्ला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्री। (२) मल्लिका। चमेली। (३) एक लता का नाम। पत्रवल्ली।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) जुलाहों के हत्था नामक औजार का ऊपरी भाग जिसे पकड़कर वह चलाया जाता है। (२) एक प्रकार का लाल रंग जो कपड़े को लाल वा गुलाबी रंग के माठ में बचे हुए रंग में डुबाने से आता है।

मल्लार-संज्ञा पुं० [सं०] मलार नामक राग। वि० दे० "मलार"।

मल्लारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृष्ण। (२) शिव।

संज्ञा स्त्री० दे० "मल्लारी"।

मल्लारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वसंत राग की एक रागिनी का नाम। हलायुध ने इसे मेघ राग की रागिनी और ओड़व जाति की माना है और ध, नि, रि, ग, म, ध इसका स्वरग्राम बतलाया है।

मल्लाह-संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० मल्लाहिन] एक अन्त्यज जाति जो नाव चलाकर और मछलियाँ मारकर अपना निर्वाह करती है। केवट। धीवर। माझी।

मल्लाही-वि० [फा०] मल्लाह संबंधी। मल्लाह का।

मुहा०—मल्लाही काँटा = लोहे का एक काँटा जिसका सिर चिपटा करके मोड़ा वा घुमाया होता है। ऐसा काँटा नाव की पटरियों के जड़ने में काम आता है।

संज्ञा स्त्री० मल्लाह का काम या पद।

मल्लि-संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार चौबीस जिनों में उन्नीसवें जिन का नाम। इन्हें मल्लिनाथ कहते हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका।

मल्लिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का हंस जिसके पैर और चोंच काली होती है। (२) जोलाहों की ढरकी। (३) माघ का महीना।

संज्ञा पुं० दे० "मलिक"।

मल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का बेला जिसे मोतिया कहते हैं। वैद्यक में इसका स्वाद कड़वा और चरपरा, प्रकृति गरम और गुण हलका, वीर्य्यवर्द्धक, वात-पित्त-नाशक, अरुचि और विष में हितकर तथा व्रण और कोढ़ का नाशक लिखा है। इसका फूल सफेद और गोल तथा गंध मनोरम होती है। कुछ लोग भ्रमवश इसे चमेली समझते हैं। (२) आठ अक्षरों का एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में रगण, जगण और अंत में एक गुरु और एक लघु होता है। उ०—एक काल रामदेव। सोधु बंधु करत सेव। शोभिजै सबै सो और। मंत्रि मित्र ठौर ठौर। (३) सुमुखी वृत्ति का एक नाम।

मल्लिकाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का घोड़ा जिसकी आँख पर सफेद धब्बे होते हैं। (२) घोड़े की आँख पर के सफेद धब्बे। (३) एक प्रकार के हंस का नाम।

वि० सफेद आँखवाला। कंजा।

मल्लिकामोद-संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद का नाम जिसमें चार विराम होते हैं।

मल्लिकार्जुन-संज्ञा पुं० [सं०] एक शिव लिंग का नाम जो श्रीशैल पर है।

मल्लिगंधी-संज्ञा पुं० [सं०] अगर।

मल्लिनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के उन्नीसवें तीर्थंकर का नाम।

मल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मल्लिका। (२) सुंदरी वृत्ति का एक नाम।

मल्लू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भालू। (२) बंदर।

मल्हनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव जिसका अगला भाग अधिक चौड़ा होता है।

मल्हराना†-क्रि० स० [सं० मल्ह = गोस्तन] चुमकारना। पुचकारना। मल्हाना। उ०—रुचिर सेज लै गई मोहन को भुजा उछंग सुवावति है। सूरदास प्रभु सोई कन्हैया लहरावति मल्हरावति है।—सूर।

विशेष—गौओं को दुहते समय जब दुहनेवाला उनके स्तन से दूध निकालता है, तब नई गौएँ बहुत उछलती कूदती और लात चलाती हैं। इसके लिये दुहनेवाले उन्हें चुमकारते पुचकारते हैं जिससे वे शांत हों और दुहने दें। इसी लिये मल्ह शब्द से, जिसका अर्थ गोस्तन है, मल्हराना, मल्हाना, मल्हारना आदि क्रियाएँ चुमकारने के अर्थ में बनी हैं।

मल्हाना†-क्रि० स० [सं० मल्ह = गोस्तन] चुमकारना। पुचकारना। मल्हराना। उ०—(क) यशोदा हरि पालनहि झुलावै। हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै।—सूर। (ख) बछरू छबीले छौना छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई। सानुज हिय हुलसति तुलसी के प्रभु की ललित लरिकाई।—तुलसी। (ग) कहति मल्हाइ मल्हाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया। मोद कंद कुल कुमद चंद मेरे रामचंद्र रघुरैया।—तुलसी।

मल्हार-संज्ञा पुं० दे० "मलार"।

मल्हारना-क्रि० स० दे० "मल्हाना"।

मवक्किल-संज्ञा पुं० [अ० मुवक्किल] [स्त्री० मवक्किला (क्व०)] (१) अपनी ओर से वकील वा प्रतिनिधि नियत करनेवाला पुरुष। मुकदमे में अपनी ओर से कचहरी वा न्यायालय में काम करने के लिये अधिकारी प्रतिनिधि नियत करनेवाला पुरुष। (२) किसी को अपना काम सपुर्द करनेवाला। असामी।

मवर-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध मतानुसार एक बहुत बड़ी संख्या।

मवर्रिखा-वि० [अ०] लिखित।

मवाजिब-संज्ञा पुं० [अ०] नियमित मात्रा में नियमित समय पर मिलनेवाला पदार्थ। जैसे वेतन, महसूल आदि। उ०—फकीरों के मवाजिब बंद हो गए।—शिवप्रसाद।

मवाज़ी-वि० [अ०] अनुमान किया हुआ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग रुपए और गाँव के अंशों का द्योतन करने के लिये होता है। जैसे मवाजी दस आना, मवाजी पाँच बीघा छः बिस्वा।

मवाद-संज्ञा पुं० [अ०] (१) सामग्री। सामान। मसाला। (२) पीब।

मवास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्षा का स्थान। त्राणस्थल। आश्रय। शरण। उ०—(क) चलन न पावत निगम पथ जग उपजौ अति त्रास। कुच उतंग गिरिबर गह्यौ मीना मैन मवास।—बिहारी। (ख) दैन लगै मन मृगहि जब बिरह अहेरी त्रास। जाइ लेत है दौरि तब प्रीतम सुबन मवास।—रसनिधि।

मुहा०—मवास करना = बसेरा करना। निवास करना। उ०—कहै पद्माकर कालिंदी के कदंबन पै, मधुपन कीन्हों आइ महत मवासो है।—पद्माकर।

(२) किला। दुर्ग। गढ़। उ०—(क) हठी मरहठी ता में राख्यो ना मवास कोऊ छीने हथियार डोलैं बन बन जारे से।—भूषण। (ख) रहि न सकी सब जगत में सिसिर सीत के त्रास। गरमि भाज गढ़वै भई तिय कुच अचल मवास।—बिहारी। (ग) सिंधु तरे बड़े बीर दले खल जारे हैं लंक से बंक मवासे।—तुलसी। (३) वे पेड़ जो दुर्ग के प्राकार पर होते हैं। उ०—जहाँ तहाँ होरी जरै हरि होरी है। मनहुँ मवासे आगि अहो हरि होरी है।—सूर।

मवासी-संज्ञा स्त्री० [हिं० मवास] छोटा गढ़। गढ़ी। उ०—(क) जम ने जाइ पुकारिया डंडा दीया डारि। संत मवासी ह्वै रहा फाँसी नं परै हमारि।—कबीर। (ख) कोट किरीट कियें मतिराम करै चढ़ि मोर-पखानि मवासी।—मतिराम।

मुहा०—मवासी तोड़ना = (१) गढ़ तोड़ना। (२) विजय करना। संग्राम जीतना। उ०—कबदत्तैं मावासी तोरी। कब सुकदेव तोपची जोरी।—कबीर।

संज्ञा पुं० (१) गढ़पति। किलेदार। उ०—(क) आइ मिले सब विकट मवासी। चुक्यौ अमल ज्यों रैयत खासी।—लाल। (ख) हुते शत्रु जेते भये ते भिखारी। मवासे मवासीन की जोम झारी।—सूदन। (२) प्रधान। मुखिया। अधिनायक। उ०—गोरस चुराइ खाइ बदन दुराइ राखै मन न धरत वृंदावन को मवासी। सूर श्याम तोहि घर घर सब जानै इहाँ को है तिहारी दासी।—सूर।

मवेशी-संज्ञा पुं० [अ० मवाशी] पशु। ढोर। डंगर।

यौ०—मवेशीखाना।

मवेशीखाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह बाड़ा जिसमें मवेशी रखे जाते हैं।

विशेष—वर्तमान सरकारी राज्य में स्थान स्थान पर ऐसे मवेशीखाने हैं जिनमें ऐसे मवेशी बंद किए जाते हैं जिन्हें कृषक उनकी खेती को हानि पहुँचाने पर हाँककर ले जाते

हैं। वे मवेशी तब तक उस मवेशीखाने में बंद रहते हैं जब तक कि उनका मालिक प्रति मवेशी कुछ दंड और खूराक खर्च वहाँ के कर्मचारी को नहीं दे देता। मवेशीखाने का कर्मचारी मुहर्रिर मवेशी कहलाता है।

मश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रोध। (२) मच्छड़।

मशक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मच्छड़। (२) गार्ग्य गोत्र में उत्पन्न एक आचार्य्य का नाम। यह एक कल्पसूत्र के रचयिता थे। (३) महाभारत के अनुसार शक द्वीप में क्षत्रियों का एक निवास स्थान। (४) मसा नामक चर्म रोग।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चमड़े का बना हुआ थैला जिसमें पानी भरकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं।

मशककुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मच्छड़ हाँकने की चौरी।

मशकहरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मसहरी।

मशकावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

मशक्कत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मेहनत। श्रम। परिश्रम। (२) वह परिश्रम जो जेलखाने के कैदियों को करना पड़ता है। जैसे—चक्की पीसना, कोल्हू पेरना, मिट्टी खोदना, रस्सी बटना आदि।

मशगूल-वि० [अ०] काम में लगा हुआ। प्रवृत्त। लीन।

मशरू-संज्ञा पुं० [अ० मशरुअ] एक प्रकार का धारीदार कपड़ा जो रेशम और सूत से बुना जाता है। मुसलमान स्त्री पुरुष इसका पायजामा बनाकर पहनते हैं। यह अधिकतर बनारस में बनता है।

मशविरा-संज्ञा पुं० [अ०] सलाह। परामर्श।

यौ०—सलाह मशवरा = परामर्श। उ०—उन्होंने समझा कि सुदूर पूर्व में भी एक प्रबल शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और बड़े बड़े राजकीय मामलों में अब आगे उससे भी सलाह मशविरा करने की जरूरत पड़ा करेगी।—द्विवेदी।

मशहूर-वि० [अ०] प्रख्यात। प्रसिद्ध।

मशान-संज्ञा पुं० [सं० श्मशान] मरघट। उ०—बसे मशान भूत सँग लिये। रक्त फूल की माला दिये।—लल्लू।

मशाल-संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की मोटी बत्ती जिसके नीचे पकड़ने के लिये काठ का एक दस्ता लगा रहता है और जो हाथ में लेकर प्रकाश के लिये जलाई जाती है। यह कपड़े की बनाई जाती है और चार पाँच अंगुल के व्यास की तथा दो ढाई हाथ लंबी होती है। जलते रहने के लिये इसके मुँह पर बार बार तेल की धार डाली जाती है।

मुहा०—मशाल लेकर वा जलाकर ढूँढ़ना = अच्छी तरह ढूँढ़ना। बहुत ढूँढ़ना।

मशालची-संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० मशालचिन] मशाल दिखलानेवाला। मशाल जलाकर हाथ में लेकर दिखलानेवाला।

मशीखत-संज्ञा स्त्री० [अ०] शेखी। घमंड।

मुहा०—मशीखत बघारना = बढ़ बढ़कर बातें करना। शेखी बघारना।

मशीन-संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी प्रकार का यंत्र जिसकी सहायता से कोई चीज तैयार की जाय। कल।

मशीर-संज्ञा पुं० [अ०] मशवरा देनेवाला। सलाह देनेवाला। मंत्री।

मश्क-संज्ञा पुं० [अ०] किसी काम को अच्छी तरह करने का अभ्यास।

मश्शाक- वि० [अ०] जिसे कोई काम करने का खूब अभ्यास हो। अभ्यस्त।

मष-संज्ञा पुं० दे० "मख"।

मषि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काजल। (२) सुरमा। (२) स्याही।

मषिकूपी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दावात।

मषिघटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दावात।

मषिधान-संज्ञा पुं० [सं०] दावात।

मषिपण्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो लिखने का काम करता हो। लेखक।

मषिप्रसू-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दावात। (२) कलम।

मषिमणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] दावात।

मषी-संज्ञा स्त्री० दे० "मषि"।

मष्ट-वि० [सं० मष्ट, प्रा० मट्ट = मट्ठ] (१) संस्कार-शून्य। जो भूल गया हो। (२) उदासीन। मौन। उ०—सो अवगुन कित कीजिये जिव दीजै जेहि काज। अब कहनो है कछु नहीं मष्ट भलो पखिराज।—जायसी।

मुहा०—मष्ट करना = चुप रहना। मुँह न खोलना। उ०—(क) बोलत लखनहिं जनक डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं।—तुलसी। (ख) बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्टि करि रहहू।—तुलसी। (ग) ग्वालिनी श्याम तनु देख री आयु तन देखिये। भीत जब होइ तब चित्र अवरेखिये। कहाँ मेरो कान्ह की तनक सी आँगुरी बड़े बड़े नखनि के चिन्ह तेरे। मष्ट करु हँसै गरे लोगु अँकवार भुज कहाँ पाये तैं श्याम मेरे।—सूर। **मष्ट धारना** = मौन धारण करना। चुप्पी साधना। उ०—सुन्यो वसुदेव दोउ नंदसुअन आये। तिया सों कहत कछु सुनत है री नारि, रातिहू सपन कछु ऐसो पाये। गए अक्रूर तेहि नृपति माँगे बोलि, तुरत आए आनि कंस मारे। कहो पिय कहत सुनिहै बात पौरिया, जाय कहिहैं रहौ मष्ट धारे।—सूर। **मष्ट मारना** = मौन धारण करना। चुपचाप रहना। उ०—एक दिन वह रात्रि समय स्त्री के पास सेज पर तन छीन मन मलीन मष्ट मारे बैठा मन ही मन कुछ विचार करता था।—लल्लू।

मष्णार-संज्ञा पुं० [सं०] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार एक प्राचीन स्थान का नाम।

मस-*†संज्ञा स्त्री० [सं० मसि] स्याही । रोशनाई । उ०—सात स्वर्ग को कागद करई । धरती समुद दुहूँ मस भरई ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० [सं० मशक] मच्छड़ । मस ।

संज्ञा स्त्री० [सं० श्मश्रु] मोछ निकलने से पहले उसके स्थान पर की रोमावली । उ०—उनके भी उगती मसों से रस का टपका पड़ना और अपनी परछाईं से अकड़ना इत्यादि ।—शिवप्रसाद ।

मुहा०—मस भींजना-मूछों का निकलना आरंभ होना । मूछों की रेखा दिखाई पड़ने लगना । उ०—उठत बैस मस भींजत सलोने सुठि सोभा देखवैया विनु बित्त ही बिकैहैं ।

संज्ञा पुं० दे० "मसा" ।

मसक-संज्ञा पुं० [सं० मशक] मसा । मच्छड़ । डाँस । उ०—मसक समान रूप कपि धरी । लंकहि चलेउ सुमिरि मन हरी ।—तुलसी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "मशक" । उ०—छूछी मसक पवन पानी ज्यों तैसेई जन्म विकारी हो ।—सूर ।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] मसकने की क्रिया या भाव ।

मसकत*†-संज्ञा स्त्री० दे० "मशक्कत" । उ०—तुम कब मो सों पतित उधार्‍यो । काहे को प्रभु बिरह बुलावत बिन मसकत को तार्‍यो ।—सूर ।

मसकना-क्रि० स० [अनु०] (१) खिंचाव वा दबाव में डालकर कपड़े को इस प्रकार फाड़ना कि बुनावट के सब तंतु टूटकर अलग हो जायँ । (२) किसी चीज को इस प्रकार दबाना कि वह बीच में से फट जाय या उसमें दरार पड़ जाय । उ०—महाबली बालि को दबतु दलकत भूमि तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकतु हैं ।—तुलसी । (३) जोर से दबाना । जोर से मलना । उ०—सो सुख भाषि सकै अब को रिस कै कसकै मसकै छतियाँ छिये ।—पद्माकर ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

क्रि० अ० (१) किसी पदार्थ का दबाव या खिंचाव आदि के कारण बीच में से फट जाना । जैसे—कपड़ा मसक गया, दीवार मसक गई ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(२) (चित्त का) चिन्तित होना । दुःख के कारण धँसना । उ०—राजकुमार धीरे से उसी स्थान पर बैठ गए । पूर्वकालीन बातें स्मरण होने लगीं और कलेजा मसकने लगा ।—गदाधरसिंह ।

मसकरा-संज्ञा पुं० दे० "मसखरा" । उ०—जूझैंगे तब कहैंगे अब क्या कहैं बनाय । भीर परै मन मसकरा लड़ै किधौं भगि जाय ।—कबीर ।

मसक़ला-संज्ञा पुं० [अ०] (१) सिकलीगरों का एक औजार जो हँसिया के आकार का होता है और जिसमें काठ का एक दस्ता लगा रहता है । इससे रगड़ने से धातुओं पर चमक आ जाती है । प्रायः तलवारें आदि भी इसी से साफ़ की जाती हैं । उ०—(क) गुरु सिकलीगर कीजिये, ज्ञान मसकला देइ । मन की मैल छुड़ाइ कै, सुचि दर्पण कर लेइ ।—कबीर । (ख) शिष्य खाँड़ गुरु मसकला, चढ़ै शब्द ख़रसान । शब्द सहे सन्मुख रहे, निपजे शिष्य सुजान ।—कबीर । (२) सैक़ल वा सिकली करने की क्रिया ।

मसकली-संज्ञा स्त्री० दे० "मसक़ला" ।

मसका-संज्ञा पुं० [फा०] (१) नवनीत । मक्खन । नैनूँ । (२) ताज़ा निकला हुआ घी । (३) दही का पानी । (४) रासायनिक परिभाषा में, बँधा हुआ पारा । (५) चूने की बरी का वह चूर्ण जो उस पर पानी छिड़कने से हो जाता है । (६) कायस्थ । (सुनार)

मसकीन*†-वि० [अ० मिसकीन] (१) ग़रीब । दीन । बेचारा । उ०—है मसकीन कुलीन कहावौ तुम योगी संन्यासी । ज्ञानी गुणी शूर कवि दाता ई मति काहु न नासी ।—कबीर । (२) साधु । संत । उ०—क्या मूड़ी भूमिहि शिर नाये क्या जल देह नहाये । खून करै मसकीन कहावै गुण को रहै छिपाये ।—कबीर । (३) दरिद्र । कंगाल । (४) भोला । (५) सुशील ।

मसख़रा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बहुत हँसी मज़ाक करनेवाला । हँसोड़ । ठट्ठेबाज़ । उ०—कबिरा यह मन मसख़रा कहूँ तो माने रोस । जा मारग साहब मिलै तहाँ न चालै कोस ।—कबीर । (२) विदूषक । नक़्क़ाल ।

मसख़रापन-संज्ञा पुं० [अ० मसखरा + पन (प्रत्य०)] दिल्लगी । ठठोली । हँसी । ठट्ठा । उ०—मुझको तो आपके मुसाहबों में सिवाय मसखरापन के और कोई लियाक़त नहीं मालूम होती ।—श्रीनिवासदास ।

मसख़री-संज्ञा स्त्री० [फा० मसख़रा + ई (प्रत्य०)] दिल्लगी । हँसी । मजाक । उ०—जो कह झूठ मसखरी जाना । कलियुग सोइ गुनवंत बखाना ।—तुलसी ।

मसखवा†-संज्ञा पुं० [हिं० मांस + खाना] वह जो मांस खाता हो । मांसाहारी । उ०—बूड़हिं हस्ति घोर मानवा । चहुँ दिस आय जुरै मसखवा ।—जायसी ।

मसजिद-संज्ञा स्त्री० [फा० मस्जिद] सिजदा करने का स्थान । मुसलमानों के एकत्र होकर नमाज पढ़ने तथा ईश्वर-वंदना करने के लिये विशिष्ट रूप में बना हुआ स्थान ।

विशेष—मसजिद साधारणतः चौकोर बनाई जाती है और उसमें आगे की ओर कुछ खुला हुआ स्थान तथा हाथ मुँह धोने के लिये पानी का हौज होता है और पीछे की ओर नमाज़ पढ़ने के लिये दालान होता है जिसके ऊपर प्रायः एक से चार तक ऊँची मीनारें भी होती हैं जिनमेंसे किसी

एक पर चढ़कर अज़ान या नमाज के समय की सूचना दी जाती है।

मसड़ी-संज्ञा स्त्री० [अ० मिसरी] कंद। (डिं०)
संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

मसती-संज्ञा पुं० [हिं० मस्त] हाथी। (डिं०)

मसनंद-संज्ञा स्त्री० दे० "मसनद"।

मसन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का टकुआ जिसकी सहायता से ऊन के कई तागे एक साथ मिलाकर बटे जाते हैं।

मसनद-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बड़ा तकिया। गाव तकिया। (२) तकिया लगाने की जगह। (३) अमीरों के बैठने की गद्दी। उ०—क्या मसनद तकिये मुल्क मकाँ, क्या चौकी कुरसी तख़्त छतर।—नज़ीर।

मसनदनशीन-संज्ञा पुं० [अ० मसनद + फा० नशीन] मसनद पर बैठनेवाला। बड़ा आदमी। अमीर।

मसना†-क्रि० स० [हिं० मसलना] (१) मसलना। (२) गूँधना। उ०—नेत्रों के आस पास उर्द के मसे हुए आटे की एक अंगुल ऊँची दीवार सी बना दो।

मसमुंद*†-वि० [मस ? + मूँदना = बंद होना] कशमकश। ठेलमठेल। धक्कमधक्का। उ०—तबही सूरज के सुभट निकट मचायो दुंद। निकसि सकै नहिं एकहू कस्यो कटक मसमुंद।—सूदन।

मसयारा*†-संज्ञा पुं० [अ० मशअल] (१) मशाल। उ०—(क) जानहुँ नखत करहिं उजियारा। छिप गए दीपक औ मसयारा।—जायसी। (ख) बारह अभरन सोरह सिंगारा। तोहि सोहे पिय ससि मसयारा।—जायसी। (२) मशालची। मशाल दिखानेवाला। उ०—सूरु मुनेटा ससि मसयारा। पवन करै नित बार बोहारा।—जायसी।

मसरफ़-संज्ञा पुं० [अ०] व्यवहार में आना। काम में आना। उपयोग।
क्रि० प्र०—में आना।—में लाना।

मसरू-संज्ञा पुं० [अ० मशरूअ] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। वि० दे० "मशरू"।

मसरूक़ा- वि० [अ०] चोरी किया हुआ। चुराया हुआ। जैसे—माल मसरूका। (कच०)

मसरूफ़-वि० [अ०] काम में लगा हुआ। काम करता हुआ।

मसल-संज्ञा स्त्री० [अ०] कहावत। कहनूत। लोकोक्ति।

मसलन्-वि० [अ०] मिसाल के तौर पर। उदाहरण के रूप में। उदाहरणार्थ। जिस तरह। यथा। जैसे।

मसलना-क्रि० स० [हिं० मलना] (१) हाथ से दबाते हुए रगड़ना। मलना। उ०—(क) स्वास को चारु प्रकास बयारि मंद सुगंध हियो मसती है।—रघुनाथ। (ख) आजु पर्‌यो जानि जब आपने मैं सुने कान, वाको संबोधन मोसो कह्यौ ही मसतु है।—रघुनाथ। (२) जोर से दबाना।
संयो० क्रि०—डालना।—देना।
(३) आटा गूँधना।

मसलहत-संज्ञा स्त्री० [अ०] ऐसी गुप्त युक्ति अथवा छिपी हुई भलाई जो सहसा ऊपर से देखने से जानी न जा सके। अप्रकट शुभ हेतु। जैसे—(क) इसमें एक मसलहत है जो अभी तक आपकी समझ में नहीं आई। (ख) इस समय उसे यहाँ से उठा देने में एक मसलहत थी।

मसला-संज्ञा पुं० [अ०] कहावत। कहनूत। लोकोक्ति।

मसवई-संज्ञा स्त्री० [मसोवा द्वीप] एक प्रकार का बबूल का गोंद जो अदन से आता है। यह पहले मसोवा द्वीप से आता था, इसी से इसका यह नाम पड़ा।

मसवारा-संज्ञा पुं० [हिं० मास + वारा (प्रत्य०)] प्रसूता का वह स्नान जो प्रसव के उपरान्त एक मास समाप्त होने पर होता है।

मसवासी-संज्ञा पुं० [सं० मासवासी] (१) एक स्थान पर केवल एक मास तक निवास करनेवाला विरक्त। वह साधु आदि जो एक मास से अधिक किसी स्थान में न रहें। उ०—कोई सुरिखेसु कोइ सनियासी। कोइ सुरामजति कोइ मसवासी।—जायसी। (२) एक महीने से अधिक किसी पुरुष के पास न रहनेवाली स्त्री। गणिका। उ०—तिरिया जो न होइ हरिदासी। जौ दासी गणिका सम जानो दुष्ट राँड़ मसवासी।—रघुराज।

मसविदा-संज्ञा पुं० [अ० मुसव्विदा] (१) वह लेख जो पहली बार काट छाँट के लिये तैयार किया गया हो और अभी साफ करने को बाकी हो। खर्रा। मसौदा। (२) युक्ति। उपाय। तरकीब।
क्रि० प्र०—निकालना।
मुहा०—मसविदा बाँधना = युक्ति रचना। उपाय सोचना।

मसहरी-संज्ञा स्त्री० [सं० मशहरी] (१) पलंग के ऊपर और चारों ओर लटकाया जानेवाला वह जालीदार कपड़ा जिसका उपयोग मच्छड़ों आदि से बचने के लिये होता है। (२) ऐसा पलंग जिसके चारों पायों पर इस प्रकार का जालीदार कपड़ा लटकाने के लिये चार ऊँची लकड़ियाँ या छड़ लगे हों। (ऊपर की ओर भी ये चारों लकड़ियाँ या छड़ लकड़ी की चार पट्टियों या छड़ों से जोड़े रहते हैं।)

मसहार*-संज्ञा पुं० [सं० मांसाहारिन्] मांसाहारी। मांस खानेवाला। उ०—(क) घटे नहिं कोह भरे उर छोह। नटे मसहार धरे मन मोह।—सूदन। (ख) मसहार छाए नभ धरनि धाय स्यार।—सूदन।

मसहूर-वि० दे० "मशहूर"।

मसा-संज्ञा पुं० [सं० मांसकील] (१) शरीर पर कहीं कहीं काले रंग का उभरा हुआ मांस का छोटा दाना जो वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का चर्म रोग माना जाता है; और जो शरीर में अपने होने के स्थान के विचार से शुभ अथवा अशुभ माना जाता है। यह प्रायः सरसों अथवा मूँग के आकार से लेकर बेर तक के आकार का होता है। (२) बवासीर रोग में मांस के दाने जो गुदा के मुँह पर वा भीतर होते हैं। इनमें बहुत पीड़ा होती है और कभी कभी इनमें से खून भी बहता है।

संज्ञा पुं० [सं० मशक] मच्छड़।

मसान-संज्ञा पुं० [सं० श्मशान] (१) वह स्थान जहाँ मुरदे जलाए जाते हों। मरघट।

पर्या०—पितृवन। शतानक। रुद्राक्रीड़। दाहसर। अंतशय्या। पितृकानन।

मुहा०—मसान जगाना = तंत्र शास्त्र के अनुसार स्मशान पर बैठकर शव की सिद्धि करना। मुरदा सिद्ध करना। उ०—कपट सयानि न कहति कछु जानति मनहु मसान।—तुलसी। मसान पड़ना = सन्नाटा हो जाना।

(२) भूत, पिशाच आदि।

यौ०—मसान की बीमारी = बच्चों को होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें वे घुल घुलकर मर जाते हैं।

(३) रणभूमि। रणक्षेत्र। उ०—तुलसी महेश विधि लोकपाल देवगन देखत-विमान कौतुक मसान के।—तुलसी।

मसाना-संज्ञा पुं० [अ०] पेट में की वह थैली जिसमें पेशाब जमा रहता है। पेशाब की थैली। मूत्राशय। बस्ती।

*संज्ञा पुं० दे० "मसान"।

मसानी-संज्ञा स्त्री० [सं० श्मशानी] स्मशान में रहनेवाली पिशाचिनी, डाकिनी इत्यादि। उ०—माइ मसानी सेढ़ि सीतला भैरू भूत हनुमंत। साहब से न्यारा रहै जो इनको पूजंत।—कबीर।

मसार-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रनील मणि। नीलम।

मसाल-संज्ञा स्त्री० दे० "मशाल"। उ०—आनि इतै छन बारि दे छबि घनसार मसाल। कौन काज तहँ राज जहँ सुधनबदन दुतिजाल।—रामसहाय।

मसालची-संज्ञा पुं० दे० "मशालची"।

मसालदुम्मा-संज्ञा पुं० [हिं० मशाल + दुम] एक प्रकार का पक्षी जिसकी दुम बिलकुल काली रहती है, बाकी सारा शरीर चाहे जिस रंग का हो।

मसाला-संज्ञा पुं० [फा० मसालह] (१) किसी पदार्थ को प्रस्तुत करने के लिये आवश्यक सामग्री। वे चीजें जिनकी सहायता से कोई चीज तैयार होती हो। जैसे—(क) मकान बनाने के लिये सुर्खी, चूना, ईंटे आदि। (ख) रसोई बनाने के लिये हलदी, धनिया, मिर्च, जीरा, तेजपत्ता आदि। (ग) कपड़ों पर टाँकने के लिये गोटा, पट्ठा, किनारी आदि। (घ) ग्रंथ या लेख आदि लिखने के लिये दूसरे ग्रंथ आदि।

यौ०—गरम मसाला। मसालेदार। मसाले का तेल।

(२) ओषधियों अथवा रासायनिक द्रव्यों का योग या समूह। जैसे—पीतल साफ करने का मसाला, पान का मसाला, सिर मलने का मसाला, तेल में मिलाने का मसाला। (३) साधन। जैसे—अब तो आपको भी दिल्लगी का अच्छा मसाला मिल गया। (४) तेल। जैसे—रोशनी बुझ रही है; मसाला लेते आना। (५) आतिशबाजी। जैसे—उनकी बारात में अच्छे अच्छे मसाले छूटे थे। (६) नव-यौवना और सुंदरी स्त्री। (बाजारू)।

मसाली-संज्ञा स्त्री० [अ० मशाल ?] रस्सी। डोरी (लश०)

क्रि० प्र०—कसना।—बाँधना।

मसाले का तेल-संज्ञा पुं० [हिं० मसाला + तेल] एक प्रकार का सुगंधित तेल जो साधारण तिल के तेल में कपूरकचरी, बालछड़ आदि सुगंधित द्रव्य मिलाकर बनाया जाता है।

मसालेदार-वि० [अ० मसालह + फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें किसी प्रकार का मसाला लगा या मिला हो। (इसका प्रयोग प्रायः खाद्य पदार्थों के लिये ही होता है।)

मसिंदर-संज्ञा पुं० [अ० मेसेंजर] जहाज में का वह बहुत बड़ा रस्सा जो चरखी या दौड़ में लपेटा रहता है और जिसकी सहायता से जहाज का गिराया हुआ लंगर उठाया जाता है। (लश०)।

मसि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लिखने की स्याही। रोशनाई। उ०—तुम्हरे देश कागद मसि खूटो।—सूर। (ख) परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिखि लीन्ही।—तुलसी। (२) निर्गुंडी का फल। (३) काजल। (४) कालिख। उ०—जनु मुँह लाई गेरु मसि भए खरनि असवार।—तुलसी।

मसिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शेफालिका। निर्गुंडी।

मसिकूपी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दावात।

मसिजल-संज्ञा पुं० [सं०] लिखने की स्याही। रोशनाई।

मसिदानी-संज्ञा स्त्री० [सं० मसि + फा० दानी] दावात। मसिपात्र।

मसिधान-संज्ञा पुं० [सं०] दावात।

मसिपण्य-संज्ञा पुं० [सं०] लिखने का काम करनेवाला। लेखक।

मसिपथ-संज्ञा पुं० [सं०] कलम।

मसिपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] दावात।

मसिबुंदा-संज्ञा पुं० [सं० मसिबिंदु] मसिबिंदु। उ०—(क) मुनिमन हरत मंजु मसिबुंदा। ललित बदन बलि बालमुकुंदा।—

तुलसी। (ख) उर बघनहा कंठ कँठुला झँडूले बार। बेनी लटकन मसिबुंदा मुनिमनहार।—सूर।

मसिमणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] दावात।

मसिमुख-वि० [सं०] जिसके मुँह में स्याही लगी हो। काले मुँहवाला। दुष्कर्म करनेवाला। उ०—जो भागै सत छाँड़ि कै मसिमुख चढ़ै बरात।

मसियाना-क्रि० अ० [?] भली भाँति भर जाना। पूरा हो जाना। उ०—नेगी गेज मिले अरकाना। पँवरथ बाजे घर मसियाना।—जायसी।

मसिबिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] काजल का बुंदा जो नजर से बचने के लिये बच्चों को लगाया जाता है। दिठौना। उ०—(क) लोयन नील सरोज से भू पर मसिबिंदु बिराज।—तुलसी। (ख) ललित भाल मसिबिंदु बिराजैं। भृकुटी कुटिल श्रवण अति भ्राजैं।—विश्राम।

मसिल†-संज्ञा पुं० दे० "मैनसिल"।

मसी-संज्ञा स्त्री० दे० "मसि"।

मसीका-संज्ञा पुं० [हिं० माशा] (१) आठ रत्ती का मान। माशा। (२) चवन्नी। (दलाल)।

मसीत*†-संज्ञा स्त्री० [फा० मस्जिद] मुसलमानों का वंदना स्थान। मसजिद। उ०– कबिरा काजी स्वाद बस जीव हते तव दोय। चढ़ि मसीत एको कहै क्यों दरगह साँचा होय।—कबीर।

मसीद*†-संज्ञा स्त्री० [अ० मस्जिद] उ०—माँगि कै खैबो मसीद को सोइबो लेनो है एक न देनो है दोऊ।—तुलसी।

मसीह-संज्ञा पुं० [अ०] ईसाइयों के धर्मगुरु हजरत ईसा का एक नाम।

मसीही-वि० [अ० मसीह + फा० ई (प्रत्य०)] ईसा मसीह संबंधी। मसीह का।

संज्ञा पुं० मसीह का अनुयायी। ईसाई।

मसुर†-संज्ञा पुं० दे० "मसूर"।

मसुरी†-संज्ञा स्त्री० दे० "मसूर"।

मसू*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० मरू मि० पं० मसाँ = कठिनता से] कठिनाई। कठिनता। मुश्किल।

मुहा०—मसू करके = बहुत कठिनता से। बड़ी मुश्किल से। उ०—रसखानि तिहारी सौं एरी जसोमति भागि मसू करि छूटन पाई।—रसखान।

मसूड़ा-संज्ञा पुं० [सं० श्मश्रु] मुँह के अंदर दाँतों की पंक्ति के नीचे या उपर का मांस जिस पर दाँत जमे होते हैं।

मसूढ़ी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] धातु गलाने की भट्ठी।

मसूर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अन्न जो द्विदल और चिपटा होता है और जिसका रंग मटमैला होता है। प्रायः इसकी दाल बनती है जो गुलाबी रंग की और अरहर की दाल से कुछ छोटी और पतली होती है। पकाने पर इसका भी रंग अरहर की दाल का सा हो जाता है। यह दाल बहुत ही पुष्टिकारक समझी जाती है। इसे प्रायः नीची जमीनों में, जहाँ पानी ठहरता है, खाली खेतों में अथवा धान के खेतों में बोते हैं। इसकी कच्ची फलियाँ भी खाई जाती हैं और इसकी सूखी पत्तियाँ और डंठल चारे के काम में आते हैं। वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, संग्राहक, कफ और पित्त का नाशक तथा ज्वर को दूर करनेवाला माना है। द्विजों में कुछ लोग इसका खाना कदाचित् इसलिये अच्छा नहीं समझते कि इसके नाम का "मांस" शब्द के साथ कुछ मेल मिलता है। पुराणों में रविवार के दिन इसका खाना निषिद्ध कहा गया है और विधवाओं के लिये इसका खाना नितान्त वर्जित किया गया है। मसुरी।

पर्य्या०—मांगल्यक। व्रीहिकांचन। पृथुवीजक। शूर। कल्याण-वीज। मसूरिका।

यौ०—मसूर का सत्त = भूने मसूर का आटा जो मीठा वा नमक मिलाकर पानी में घोलकर खाया जाता है।

मसूरक-संज्ञा पुं० [सं०] गोल तकिया।

मसूरकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

मसूरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेश्या। रंडी। (२) मसूर की दाल। (३) मसूर की बनी हुई बरी। उ०—कीन्ह मसूरा धन सो रसोई। जो कछु सब माँसू सो होई।—जायसी।

संज्ञा पुं० दे० "मसड़ा"।

मसूरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शीतला। माता। चेचक। (२) छोटी माता जिसमें सारे शरीर में लाल लाल छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं। (३) कुटनी।

मसूरिकापिड़िका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की माता या चेचक जिसमें मसूर की दाल के बराबर छोटे छोटे दाने निकलते हैं।

मसूरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता। चेचक। (२) दे० "मसूर"।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो क़द में छोटा होता है और प्रति वर्ष शिशिर ऋतु में जिसके पत्ते झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी सफेद, बढ़िया और बहुत मजबूत होती है, जिससे संदूक तथा सजावट के अनेक प्रकार के सामान बनाए जाते हैं। शिमले, सिकम और भूटान आदि में यह वृक्ष अधिकता से होता है।

मसूल†-संज्ञा पुं० दे० "महसूल"।

मसूला-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की पतली लंबी नाव।

मसूस-संज्ञा स्त्री० [हिं० मसूसना] मन मसोसने का भाव। कुढ़न। कलपना। उ०—याही मसूस मरों का करों रिखिनाथ परोसिन मैं परों पैयाँ।—रिखिनाथ।

मसूसन-संज्ञा स्त्री० [हिं० मसूसना] मन मसूसने का भाव। आंतरिक व्यथा। कुढ़न। उ०—(क) कीजै कहा चाव अपनी

कत इहाँ मसूसन मरिए ।—सूर । (ख) सूरन के मिस ही मन मूसति होस मसूसनहीं फिरै कोठनि ।—देव ।

मसूसना-क्रि० अ० [हिं० मरोड़ना या फा० अफसोस पं० मसोस ?] (१) ऐंठना । मरोड़ना । बल देना । (२) निचोड़ना । (३) किसी मनोवेग को रोकना । जब्त करना । (४) मन ही मन रंज करना । कुढ़ना । कलपना । (इस अर्थ में यह शब्द बहुधा मन शब्द के साथ आता है ।) उ०—(क) डाँट दीजिये, हम मन ही मन मसूसकर रह जायँ ।—राधाकृष्ण-दास । (ख) सोवति सजोवति न दूसति न तूसति मसूसति रिसाति रस रूसति हँसति सी ।—देव ।

मसृण-वि० [सं०] जो रूखा या कड़ा न हो । चिकना और मुलायम ।

मसोढ़ा†-संज्ञा पुं० [देश०] सोना, चाँदी आदि गलाने की घरिया । (कुमाऊँ)

संज्ञा पुं० दे० "मसूड़ा" ।

मसोसना-क्रि० अ० दे० "मसूसना" ।

मसौदा-संज्ञा पुं० [अ० मसव्विदा] (१) काँट छाँट करने, दोह-राने और साफ करने के उद्देश्य से पहली बार लिखा हुआ लेख । खर्रा । मसविदा । (२) उपाय । युक्ति । तरकीब ।

मुहा०—मसौदा गाँठना या बाँधना = कोई काम करने की युक्ति या उपाय सोचना । तरकीब निकालना ।

यौ०—मसौदेबाज ।

मसौदेबाज-संज्ञा पुं० [अ० मसौदा + फा० बाज (प्रत्य०)] (१) वह जो अच्छा उपाय निकालता हो । अच्छी युक्ति सोचने-वाला । (२) धूर्त्त । चालाक ।

मस्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वंश । खानदान । (२) गति । (३) ज्ञान ।

मस्करा*-संज्ञा पुं० दे० "मसखरा" ।

मस्करी-संज्ञा पुं० [सं० मस्करिन्] (१) वह जो चौथे आश्रम में हो । संन्यासी । (२) भिक्षु । (३) चंद्रमा ।

संज्ञा स्त्री० दे० "मसखरी" ।

मस्का-संज्ञा पुं० [अ०] (१) मक्खन । नवनीत । (२) दे० "मसका" ।

मस्कुरा†-संज्ञा पुं० दे० "मसूड़ा" ।

मस्खरा-संज्ञा पुं० दे० "मसखरा" ।

मस्जिद-संज्ञा स्त्री० दे० "मसजिद" । उ०—क्या भो वजू व मज्जन कीन्हें क्या मस्जिद सिर नाये । हृदया कपट निमाज गुजारे कह भो मक्का जाये ।—कबीर ।

मस्त-वि० [फा०, मि० सं० मत्त] (१) जो नशे आदि के कारण मत्त हो । मतवाला । मदोन्मत्त । जैसे—वह दिन रात शराब में मस्त रहता है । (२) जिसे किसी बात का पता न लगता हो । जिसे किसी की चिन्ता या परवाह न होती हो । सदा प्रसन्न और निश्चिन्त रहनेवाला । (३) जो अपनी पूरी जवानी पर आने के कारण आपे से बाहर हो रहा हो । यौवन मद से भरा हुआ । जैसे—मस्त हाथी, मस्त औरत । (४) जिसमें मद हो । मदपूर्ण । जैसे—मस्त आँखें । (५) परम प्रसन्न । मग्न । आनंदित । जैसे—वह अपने बाल बच्चों में ही मस्त रहता है । (६) अभिमानी । घमंडी । जैसे—आज कल ये मज़दूर मस्त हो रहे हैं; इनसे काम लेना कुछ सहज नहीं है ।

मस्तक-संज्ञा पुं० [सं०] सिर । उ०—मस्तक टीका काँध जनेऊ । कवि बिआस पंडित सहदेऊ ।—जायसी ।

मस्तकी-संज्ञा स्त्री० दे० "मस्तगी" ।

मस्तगी-संज्ञा स्त्री० [अ० मस्तकी] एक प्रकार का बढ़िया पीला गोंद जो भूमध्यसागर के आस पास के प्रदेशों में होनेवाली एक प्रकार की सदाबहार झाड़ी के तनों को पाछकर निकाला जाता है; और जो अपने उत्पत्ति स्थान रूम के कारण प्रायः "रूमी मस्तगी" कहलाता है । यह गोंद वार्निश में मिलाया जाता है और ओषधि रूप में भी काम में आता है । दाँतों के अनेक रोगों में यह बहुत उपकारी होता है । इससे दाँतों का हिलना, पीड़ा, दुर्गंध आदि दूर होती है । और भी कई रोगों में इसका व्यवहार किया जाता है ।

मस्तरी-संज्ञा स्त्री० [सं० भस्त्रा] धातु गलाने की भट्ठी । (शाह-जहाँपुर) ।

मस्ताना-वि० [फा० मस्तानः] (१) मस्तों का सा । मस्तों की तरह का । जैसे—मस्ताना चाल । (२) मस्त । मत्त ।

क्रि० अ० [फा० मस्त + आना (प्रत्य०)] मस्ती पर आना । मस्त होना । मत्त होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

क्रि० स०—मस्ती पर लाना । मस्त करना । मत्त करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

मस्तिक-संज्ञा पुं० दे० "मस्तिष्क" ।

मस्तिकी-संज्ञा स्त्री० दे० "मस्तगी" ।

मस्तिष्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मस्तक के अंदर का गूदा । भेजा । मगज ।

विशेष—कहा जाता है कि भोजन का परिपाक होने पर जो रस बनता है, वह क्रमशः मस्तक में पहुँचकर स्निग्ध रूप धारण करता है और उसी के द्वारा स्मृति और बुद्धि काम करती है । उसी को "मस्तिष्क" कहते हैं ।

(२) बुद्धि के रहने का स्थान । दिमाग ।

मस्ती-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) मस्त होने की क्रिया या भाव । मत्तता । मतवालापन ।

क्रि० प्र०—आना ।—उतरना ।—चढ़ना ।—दिखाना ।

मुहा०—मस्ती झड़ना = मस्ती दूर होना । मस्ती झाड़ना = मस्ती दूर करना ।

(२) भोग की प्रबल कामना । प्रसंग की उत्कट इच्छा ।

क्रि० प्र०—आना ।—उठना ।—चढ़ना ।—झड़ना ।—में आना ।

मुहा०—मस्ती निकालना = प्रसंग करके वीर्यपात करना । संभोग करके वीर्य स्खलित करना ।

(३) वह स्राव जो कुछ विशिष्ट पशुओं के मस्तक, कान, आँख आदि के पास से कुछ विशिष्ट अवसरों पर, विशेषतः उनके मस्त होने के समय होता है । मद । जैसे—हाथी की मस्ती, ऊँट की मस्ती ।

क्रि० प्र०—टपकना ।—बहना ।

(४) वह स्राव जो कुछ विशिष्ट वृक्षों अथवा पत्थरों आदि में से कुछ विशेष अवसरों पर होता है । जैसे—नीम की मस्ती । पहाड़ की मस्ती ।

क्रि० प्र०—टपकना ।—बहना ।

मस्तु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दही का पानी । (२) छेने का पानी ।

मस्तुलुंग-संज्ञा पुं० [सं०] मस्तिष्क । मगज ।

मस्तूरी-संज्ञा स्त्री० [सं० मस्रा] धातु गलाने की भट्ठी । (फतहपुर)

मस्तूल-संज्ञा पुं० [पुर्त०] बड़ी नावों आदि के बीच में खड़ा गाड़ा जानेवाला वह बड़ा लट्ठा या शहतीर जिसमें पाल बाँधते हैं ।

मस्सा-संज्ञा पुं० दे० "मसा" ।

महँ*†-अव्य० [सं० मध्य] में ।

महँई*†-वि० [सं० महा] महान् । भारी । उ०—विदित पठानराज महँ रहई । रहे पठान प्रबल तहँ महँई ।

अव्य० दे० "महँ" ।

महँक-संज्ञा स्त्री० दे० "महक" ।

महँकना-क्रि० अ० दे० "महकना" ।

महँगा-वि० [सं० महार्घ] जिसका मूल्य साधारण या उचित की अपेक्षा अधिक हो । अधिक मूल्य पर बिकनेवाला । जैसे—आजकल कपड़ा और गल्ला दोनों महँगे हैं । उ०—कारण अगर रहत है संगा । कारज अगर बिकत सो महँगा ।—विश्राम ।

महँगाई†-संज्ञा स्त्री० दे० "महँगी" ।

महँगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० महँगा + ई (प्रत्य०)] (१) महँगे होने का भाव । महँगापन । (२) महँगे होने की अवस्था । (३) दुर्भिक्ष । अकाल । कहत ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

महँड़ा†-संज्ञा पुं० [देश०] भुने हुए चने (बिहार) ।

महंत-संज्ञा पुं० [सं० महत् = बड़ा] साधु मंडली या मठ का अधिष्ठाता । साधुओं का मुखिया ।

वि० बड़ा । श्रेष्ठ । प्रधान । मुखिया । उ०—सखा प्रवीन हमारे तुम हौ तुम नहीं महंत ।

महंताई†-संज्ञा स्त्री० दे० "महंती" ।

महंती-संज्ञा स्त्री० [हिं० महंत + ई (प्रत्य०)] (१) महंत का भाव । (२) महंत का पद ।

क्रि० प्र०—पाना ।—मिलना ।

महँदी-संज्ञा स्त्री० दे० "मेंहदी" ।

मह-अव्य० दे० "महँ" ।

वि० [सं० महत्] (१) महा । अति । बहुत । उ०—पिय बिन तिय मह दुखिया जान । तब यों गौरी क्रियो बखान ।—लल्लू । (२) महत् । श्रेष्ठ । बड़ा ।

महक-संज्ञा स्त्री० [हिं० गमक] गंध । बास । गमक । बू ।

यौ०—महकदार । महकीला ।

महकदार-वि० [हिं० महक + फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें महक हो । महकनेवाला । गंध देनेवाला ।

महकना-क्रि० अ० [हिं० महक + ना (प्रत्य०)] गंध देना । बास देना ।

महकमा-संज्ञा पुं० [अ०] किसी विशिष्ट कार्य्य के लिये अलग किया हुआ विभाग । सीगा । सरिश्ता । जैसे—चुंगी का महकमा, रजिस्टरी का महकमा ।

महकान*-संज्ञा पुं० दे० "महक" । उ०—कनक बरन जगमग तन में अस चंदन की महकान ।—देव स्वामी ।

महकाली-संज्ञा स्त्री० [सं० महाकाली] पार्वती । (डिं०)

महकीला-वि० [हिं० महक + ईला (प्रत्य०)] जिससे अच्छी महक आती हो । सुगंधित । महकदार । खुशबूदार ।

महचक्र-संज्ञा पुं० [डिं०] सूर्य ।

महज़-वि० [अ०] (१) शुद्ध । खालिस । जैसे—यह तो महज़ पानी है । (२) केवल । मात्र । सिर्फ । जैसे—महज़ आपकी खातिर से मैं यहाँ आ गया ।

महजरनामा-संज्ञा पुं० [अ० महजर = खून + फा० नामा] वह लेख जिसमें किसी की हत्या होने अथवा किसी के हत्या के अपराधी होने का प्रमाण हो । हत्या अथवा हत्यारे के संबंध का साक्षीपत्र । हिंसा विषयक साक्षीपत्र ।

महजित-संज्ञा स्त्री० दे० "मसजिद" ।

महण-संज्ञा पुं० [डिं०] समुद्र ।

महत्-वि० [सं०] (१) महान् । बृहत् । बड़ा । (२) सबसे बढ़कर । सर्वश्रेष्ठ ।

संज्ञा पुं० (१) प्रकृति का पहला विकार, महत्तत्व । (२) ब्रह्म । (३) राज्य । (४) जल ।

महत-संज्ञा पुं० दे० "महत्व" । उ०—कहै पद्माकर झकोर झिल्ली झोरन को मोरन को महत न कोऊ मन ल्यावतो ।—पद्माकर ।

महतवान-संज्ञा पुं० [देश०] करघे में पीछे की ओर लगी हुई वह खूँटी जिसमें ताने को पीछे की ओर कसकर खींचे रहने-

वाली डोरी लपेटकर बरतेले में बाँधी जाती है। पिंडा। मुन्नी। हथेला।

महता-संज्ञा पुं० [सं० महत्] (१) गाँव का मुखिया। सरदार। महतो। (२) लेखक। मुहर्रिर। मुंशी।

*संज्ञा स्त्री० [सं० महत्ता] अभिमान। घमंड। उ०—महता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीं सो द्वैता क्यों मानो।

महताब-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) चाँदनी। चंद्रिका। उ०—मोद मदमाती मन मोहन मिलै के काज साजि मणि मंदिर मनोज कैसी महताब।—पद्माकर। (२) एक प्रकार की आतिशबाजी। दे० "महताबी"। उ०—(क) जब चंद नखावली देखि चप्यो तब जोति किती महताब में है।—कमलापति। (ख) चाँदनी में कवि संभु मनो चहुँ ओर विराजि रही महताबैं।—शंभु। (३) जहाज पर रात के समय संकेत के लिये होनेवाली एक प्रकार की नीली रोशनी जो काठ की एक नली में कुछ मसाले भरकर जलाई जाती है। (लश०)

संज्ञा पुं० [फा०] (१) चाँद। चंद्रमा। शशि। उ०—आई बारवधू छवि छाई ऐसी गाँउँ बीच जाके मुख आगे दबै जोति महताब की।—रघुनाथ। (२) एक प्रकार का जंगली कौआ। मूतरी। महालत।

महताबी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) मोमबत्ती के आकार की बनी हुई एक प्रकार की आतिशबाजी जो मोटे कागज में बारूद, गंधक आदि मसाले लपेटकर बनाई जाती है और जिसके जलने से बहुत तेज प्रकाश होता है। इसकी रोशनी सफेद, लाल, नीली, पीली आदि कई प्रकार की होती है। (२) किसी बड़े प्रासाद के आगे अथवा बाग के बीच में बना हुआ गोल या चौकोर ऊँचा चबूतरा जिस पर लोग रात के समय बैठकर चाँदनी का आनन्द लेते हैं। (३) एक प्रकार का बड़ा नीबू। चकोतरा। (पूरब)

महतारी*†-संज्ञा स्त्री० [सं० माता] माँ। माता। जननी। उ०—(क) कौशल्या आदिक महतारी आरति करति बनाइ।—सूर। (ख) हरषित महतारी मुनि मनहारी अद्भुत रूप बिचारी।—तुलसी।

महती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नारद की वीणा का नाम। (२) बृहती। कँटाई। बनभंटा। (३) कुश द्वीप की एक नदी का नाम जो पारिपात्र पर्वत से निकली है। (४) महिमा। महत्व। बड़ाई। उ०—मातु पितु गुरु जाति जान्यो भली खोई महति।—सूर। (५) योनि का बहुत फैल जाना जो एक रोग माना जाता है। (६) वह हिचकी जिससे मर्मस्थान पीड़ित हों और देह में कंप हो। (७) वैश्यों की एक जाति।

महती द्वादशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की वह द्वादशी जो श्रवण नक्षत्र में पड़े। ऐसी द्वादशी को व्रत आदि करने का विधान है।

महतु*†-संज्ञा पुं० [सं० महत्व] महिमा। बड़ाई। महत्व। उ०—वृंदाबन व्रज को महतु का पै बरन्यो जाय।—सूर।

महतो-संज्ञा पुं० [हिं० महता] (१) कुछ गयावाल पंडों की एक उपाधि। (२) कहार। (पूरब) (३) जुलाहों का वह खूँटा जो भाँज के आगे गड़ा रहता है और जिसमें भाँज की डोरी फँसाई रहती है।

महत्कथ-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मीठी मीठी बातें करके बड़े आदमियों को प्रसन्न करता हो। खुशामदी।

महत्तत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सांख्य के अनुसार पचीस तत्वों में से तीसरा तत्व जो प्रकृति का पहला विकार है और जिससे अहंकार की उत्पत्ति होती है। प्रकृति का पहला कार्य्य या विकार। बुद्धितत्त्व। वि० दे० "तत्व" और "प्रकृति"। (२) कुछ तांत्रिकों के अनुसार संसार के सात तत्वों में से सबसे अधिक सूक्ष्म तत्व। (३) जीवात्मा।

महत्तम-वि० [सं०] सबसे अधिक बड़ा वा श्रेष्ठ।

महत्तर-वि० [सं०] दो पदार्थों में से बड़ा या श्रेष्ठ।

संज्ञा पुं० शूद्र।

महत्पुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषोत्तम।

महत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महत् का भाव। बड़प्पन। बड़ाई। गुरुता। (२) श्रेष्ठता। उत्तमता।

महदूद-वि० [अ०] जिसकी हद बँधी हो। घेरा हुआ। सीमाबद्ध। परिमित।

महदेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] मैसूर में होनेवाली बैलों की एक जाति। इस जाति के बैल बहुत हृष्ट पुष्ट और बलवान होते हैं।

महद्धिक-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक देवता का नाम।

महद्वारुणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] महेंद्रवारुणी नाम की लता।

महन*†-संज्ञा पुं० दे० "मथन"। उ०—मयन महन पुर दहन गहन जानि आनि कै सबै को सारु धनुष गढ़ायो है।—तुलसी।

महना*†-क्रि० स० [सं० मथन] दही या मठा आदि मथना। महना। बिलोना।

संज्ञा पुं० मथानी। रई।

महनिया†-संज्ञा पुं० [हिं० महना = मथना + इया (प्रत्य०)] वह जो मथता हो। मथनेवाला।

महनीय-वि० [सं०] पूजन करने योग्य। पूजनीय। मान्य।

महनु*-संज्ञा पुं० [सं० मथन] मथन करनेवाला। विनाशक। उ०—नाम बामदेव दाहिना सदा असंग रंग अर्द्ध अंग अंगना अनंग को महनु है।—तुलसी।

महफ़िल-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मनुष्यों के एकत्र होने का स्थान। मजलिस। सभा। समाज। जलसा। (२) नृत्य गीत होने का स्थान। नाच गाना होने का स्थान।

क्रि० प्र०—जमना।—भरना।—लगना।

महफ़ूज़-वि० [अ०] जिसकी हिफाजत की गई हो। सुरक्षित। बचाया हुआ। रक्षा किया हुआ।

महबूब-संज्ञा पुं० [अ०] वह जिससे प्रेम किया जाय। जिससे दिल लगाया जाय। उ०—रसनिधि आवत देखिकै मनमोहन महबूब। उमड़ी डिठ बरुनीन की दगन बधाई दूब।—रसनिधि।

महबूबा-संज्ञा स्त्री० [अ०] वह स्त्री जिससे प्रेम किया जाय। प्रेमिका। माशूका। उ०—आशिक हू पुनि आप तौ महबूबा पुनि आप। चाहनहारो आप त्यौं बेपरवाही आप।—रसनिधि।

महमंत*-वि० [सं० महा + मत्त] मस्त। उन्मत। मदमत्त। उ०—काया कजरी बन अहै मन कुंजर महमंत। अंकुश ज्ञान रतन है फेरैं साधू संत।—कबीर।

महमद*-संज्ञा पुं० दे० "मुहम्मद"।

महमदी*-वि० [अ० मुहम्मदी] मुहम्मद का मतानुयायी। मुसलमान।

मह मह-क्रि० वि० [हिं० महकना] सुगंधि के साथ। खुशबू के साथ। उ०—(क) मह मह मह मह महकत धरती रोम रोम जनु पुलकि उठी।—देवस्वामी। (ख) चारु चमेली बन रही मह मह महकि सुबास।—हरिश्चंद्र।

महमहण-संज्ञा पुं० [सं० महि + मथन] विष्णु। (डिं०)

महमहा-वि० [हिं० महमह] सुगंधित। खुशबूदार। उ०—(क) महमही मंद मंद मारुत मिलनि, तैसी गहगही खिलनि गुलाब के कलीन की।—रसखानि। (ख) महमहे लोक दस चारहू सुगंधन तें उमहे महेश अज आदि सुर ठठ हैं।

महमहाना-क्रि० अ० [हिं० महमह अथवा महकना] गमकना। सुगंधि देना। उ०—मल्ली द्रुम बलित, ललित पारिजात पुंज, मंजु बन बेलिन, चमेलिन महमहात।—रसकुसुमाकर।

महमा*†-संज्ञा स्त्री० दे० "महिमा"।

महमान-संज्ञा पुं० दे० "मेहमान"।

महमानी-संज्ञा स्त्री० दे० "मेहमानी"।

महमाय-संज्ञा स्त्री० [सं० महामाया] पार्वती। (डिं०)।

महमूदी-संज्ञा स्त्री० [फा० महमूद + ई (प्रत्य०)] सल्लम की तरह का एक प्रकार का मोटा देशी कपड़ा।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का पुराना छोटा सिक्का।

महमेज़-संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार की लोहे की नाल जो जूते में पीछे की ओर एँड़ी के पास लगाई जाती है और जिसकी सहायता से घोड़े के सवार उसे चलाने के लिये एड़ लगाते हैं।

महम्मद-संज्ञा पुं० दे० "मुहम्मद"।

महर-संज्ञा पुं० [सं० महत्] [स्त्री० महरि] (१) ब्रज में बोला जानेवाला एक आदरसूचक शब्द जिसका व्यवहार विशेषतः जमींदारों और वैश्यों आदि के संबंध में होता है। (कभी कभी इस शब्द का व्यवहार केवल श्रीकृष्ण के पालक और पिता नंद के लिये भी बिना उनका नाम लिए ही होता है।) उ०—(क) महर विनय दोऊ कर जोरे घृत मिष्टान पय बहुत मँगायो।—सूर। (ख) पूरि अभिलाषन को चाखन कै माखन लै दाखन मधुर भरे महर मँगाय रे।—दीन। (ग) ब्रज को विरह अरु संग महर को कुबरहि बरत न नेकु लजाने।—तुलसी। (२) एक प्रकार का पक्षी। उ०—सारो सुवा महर कोकिला। रहसत आइ पपिहा मिला।—जायसी। (३) दे० "महरा"। उ०—नाऊ बारी महर सब, धाऊ धाय समेत।—रघुराज।

वि० [फा० मेहर = दया] दयावान्। दयालु। (डिं०)।

संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों में वह सम्पत्ति या धन जो विवाह के समय वर की ओर से कन्या को देना निश्चित होता है।

मुहा०—महर बाँधना = महर के लिये धन या सम्पत्ति नियत करना।

वि० [हिं० महक] महमहा। सुगंधित। उ०—महर महर घर बाहर राउर देह। लहर लहर छबि तम जिमि, ज्वलन सनेह।—रहिमन।

महरवान-संज्ञा पुं० दे० "मेहरवान"।

महरम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) मुसलमानों में किसी कन्या या स्त्री के लिये उसका कोई ऐसा बहुत पास का संबंधी जिसके साथ उसका विवाह न हो सकता हो। जैसे—पिता, चाचा, नाना, भाई, मामा आदि। (मुसलमानी धर्म्म के अनुसार स्त्रियों को केवल ऐसे ही पुरुषों के सामने बिना परदे या घूँघट के जाना चाहिए।) (२) भेद का जाननेवाला। रहस्य से परिचित। उ०—दिल का महरम कोई न मिलिया जो मिलिया सो गरजी। कह कबीर असमानै फाटा क्योंकर सीवै दरज़ी।—कबीर।

संज्ञा स्त्री० (१) अँगिया का मुलकट। अँगिया की कटोरी। (२) अँगिया। उ०—गए जदपि मुनि सुर तन पत्थर घनै चलाय। छापै तन जे फूल वे महरम घाले आय।—रसनिधि।

महरा-संज्ञा पुं० [हिं० महता] [स्त्री० महरी] (१) कहार। (२) श्वसुर के लिये आदरसूचक शब्द। (चमार)

वि० प्रधान। श्रेष्ठ। बड़ा।

महराई*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० महर + आई (प्रत्य०)] प्रधानता। श्रेष्ठता। उ०—कुंडल श्रवनन देउँ गलाई। महरा की सौंपौं महराई।—जायसी।

महराज-संज्ञा पुं० दे० "महाराज"। उ०—चलेउ मद्र महराज सुभट सिरताज साज सजि।—गोपाल।

महराजा*†-संज्ञा पुं० दे० "महाराज"।

महराण-संज्ञा पुं० [डिं०] समुद्र।

महराना-संज्ञा पुं० [हिं० महर + आना (प्रत्य०)] महरों के रहने का स्थान। महरों के रहने की जगह, महल्ला या गाँव। उ०—(क) तुमको लाज होत की हमको बात परै जो कहुँ महराने।—सूर। (ख) गोकुल में आनंद होत है मंगल ध्वनि महराने ढोल।—सूर।

संज्ञा पुं० दे० "महाराणा"।

महराब-संज्ञा स्त्री० दे० "मेहराब"। उ०—बाट बाट बहु द्वार बिराजत चामीकर महरावैं।—रघुराज।

महरि-संज्ञा स्त्री० [हिं० महर] (१) एक प्रकार का आदरसूचक शब्द जिसका व्यवहार व्रज में प्रतिष्ठित स्त्रियों के संबंध में होता है।

विशेष—कभी कभी इस शब्द का व्यवहार केवल यशोदा के लिये भी बिना उनका नाम लिए ही होता है।

(२) गृहस्वामिनी। मालकिन। घरवाली। उ०—बाल बोलि डहकि बिरावत चरित लखि गोपीगन महरि मुदित पुलकित गात।—तुलसी। (३) ग्वालिन नामक पक्षी। दहिंगल। उ०—दही दही कर महरि पुकारा। हारिल बिनवइ आपु निहारा।—जायसी।

महरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] ग्वालिन नामक पक्षी। दहिंगल।

महरुआ†-संज्ञा पुं० [देश०] जस्ता। (सुनार)

महरू-संज्ञा पुं० [देश०] (१) चंडू पीने की नली। (२) एक प्रकार का वृक्ष।

महरूम-वि० [अ०] जिसे प्राप्त न हो। जिसे न मिले। वंचित।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—रहना।

महरेटा-संज्ञा पुं० [हिं० महर + एटा (प्रत्य०)] (१) महर का बेटा। महर का लड़का। (२) श्रीकृष्ण।

महरेटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० महरेटा] वृषभानु महर की लड़की, श्रीराधिका। उ०-(क) नूपुर की धुनि सुनि रीझत है महरेटी खोलति न याते जब जब आपु गसि जात।—रघुनाथ। (ख) लाली महरेटी के अधर सरसान लागे अधरन बान लागे बतिया रसाल की।—रघुनाथ।

महर्घता-संज्ञा स्त्री० [सं०] महँगे होने का भाव। महँगी।

महर्लोक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भू, भुव आदि चौदह लोकों में से एक। उ०—सत्यलोक जनलोक तप और महर निजलोक।—सूर।

विशेष—१४ लोकों में से ७ ऊर्ध्वलोक और ७ अधोलोक हैं। महर्लोक इन ऊर्ध्वलोकों में से चौथा है।

महर्षभी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कौंछ। केवाँच।

महर्षि-संज्ञा पुं० [सं० महा + ऋषि] (१) बहुत बड़ा और श्रेष्ठ ऋषि। ऋषीश्वर। जैसे—वेदव्यास, नारद, अंगिरा इत्यादि। (२) एक राग जो भैरव के आठ पुत्रों में से एक माना जाता है। उ०—पंचम ललित महर्षि बिलावल। अरु वैशाख सुमाधव पिंगल। सहित समृद्धि आठ संताना। भैरव के जानहु नर त्राना।—गोपाल।

महर्षिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद कंटकारी। भटकटैया।

महल-संज्ञा पुं० [अ०] (१) राजा या रईस आदि के रहने का बहुत बड़ा और बढ़िया मकान। प्रासाद। (२) राजप्रासाद का वह विभाग जिसमें रानियाँ आदि रहती हों। रनिवास। अंतःपुर। उ०—कुंज कुंज नवपुंज महल में सुबस बसो यह गाँव री।—स्वा० हरिदास। (३) बड़ा कमरा। (४) अवसर। मौका। वक्त। (५) पहाड़ी मधुमक्खी। सारंग। डंगर।

महलसरा-संज्ञा स्त्री० [अ० महल + फा० सरा] महल का वह भाग जिसमें रानियाँ या बेगमें आदि रहती हैं। अंतःपुर। रनिवास।

महलाठ-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी दुम लंबी, ठोर काली, छाती खैरी, पीठ खाकी रंग की और पैर काले होते हैं।

महली पटैला-संज्ञा पुं० [हिं० महल + पटैला] एक प्रकार की बड़ी नाव जिस पर केवल लकड़ी वा पत्थर आदि लादा जाता है।

महल्ला-संज्ञा पुं० [अ०] शहर का कोई विभाग या टुकड़ा जिसमें बहुत से मकान आदि हों।

यौ०—महल्लेदार = महल्ले का चौधरी या प्रधान।

महसिल-संज्ञा पुं० [अ० मुहस्सिल] तहसील वसूल करनेवाला। महसूल आदि वसूल करनेवाला। उगाहनेवाला। उ०—मीत नैन महसिल नये बैठत नहिं हुइ सील। तन बीघा पै करत हैं ये मन की तहसील।—रसनिधि।

महसीर-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली। वि० दे० "महासीर"।

महसूल-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह धन जो राजा या कोई अधिकारी किसी विशिष्ट कार्य्य के लिये ले। कर। (२) भाड़ा। किराया। जैसे—आज कल रेल का महसूल कुछ बढ़ गया है। (३) मालगुजारी। लगान।

महाँ*-अव्य० दे० "महँ"। उ०—प्रभु सत्य करी प्रह्लाद गिरा प्रगटे नर केहरि खंभ महाँ।—तुलसी।

वि० दे० "महा"।

महा-वि० [सं०] (१) अत्यंत। बहुत अधिक। उ०—महा

पदक और पुरस्कार

सभा को कुछ सज्जनों ने कुछ ऐसी रकमें दी हैं जिनके व्याज से प्रति वर्ष सभा हिंदी की अच्छी अच्छी पुस्तकों के लेखकों को २००) नगद पुरस्कार और साथ ही एक पदक देती है। इन पुरस्कारों का विवरण नीचे दिया जाता है:—

(१) डाकृर छन्नूलाल पुरस्कार—इस वर्ष इस पुरस्कार के लिये १ माघ १६७७ से ३१ पौष १६८० तक की प्रकाशित विज्ञान विषयक पुस्तकों पर विचार किया गया और डाकृर त्रिलोकीनाथ को "हमारे शरीर की रचना" नामक ग्रंथ के लिये २००) रु० का यह पुरस्कार दिया गया। इसके साथ ही रेडिचे रौप्य पदक भी दिया गया। अगली बार यह पुरस्कार तथा पदक संवत् १६८३ में उस ग्रंथकार को दिया जायगा, जिसका विज्ञान विषयक ग्रंथ १ माघ १६८० से ३१ पौष १६८३ तक के प्रकाशित ग्रंथों में सर्वोत्तम समझा जायगा।

(२) रत्नाकर पुरस्कार—पूर्व सूचना के अनुसर यह पुरस्कार संवत् १६८१ में उस सज्जन को दिया जायगा जिसकी कविता १ माघ १६७= से ३१ पौष १६८१ तक को प्रकाशित व्रज भाषा को कविताओं में सर्वोत्तम समझी जायगी।

(३) बटुक प्रसाद पुरस्कार—यह १ माघ १६७६ से ३१ पूस १६८२ तक प्रकाशित होनेवाले सर्वोत्तम शिक्षाप्रद मौलिक नाटक या उपन्यास के ग्रंथकार को संवत् १६८२ में दिया जायगा।

(४) मेहता जोधसिंह पुरस्कार—यह संवत् १६८० से संवत् १६८२ तक प्रकाशित होनेवाले इतिहास विषयक सर्वोत्तम ग्रंथ के ग्रंथकर्ता को दिया जायगा।

इनमें से प्रत्येक पुरस्कार २००) रुपए का है और प्रत्येक के साथ एक रौप्य पदक भी दिया जायगा।

आशा है, हिन्दी के सुयोग्य लेखक भिन्न भिन्न विषयों की अपनी रची उत्तमोत्तम पुस्तकें अवधि के अंदर सभा में भेजने की कृपा करेंगे। इन पुरस्कारों के लिये पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ ।

मंत्री,

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

तुलसी ग्रंथावली

इस ग्रंथावली के पहले खंड में रामचरित मानस; दूसरे खंड में शेष ११ ग्रंथ अर्थात् दोहावली, गीतावली, विनयपत्रिका, कवित्त रामायण, रामाज्ञा, रामलला नहछू, बरवै रामायण, जानकी मंगल, वैराग्य संदीपनी, पार्वती मंगल और कृष्णावली; तथा तीसरे खंड में गो० तुलसीदास जी के संबंध के लेख और आलोचनाएँ हैं। पहले खंड में उनका चित्र भी है। अलग अलग खंडों का मूल्य प्रतिखंड २॥) रु० है। जो लोग तीनों खंड एक साथ लेते हैं, उनसे इनका मूल्य ६) रु० लिया जाता है।

नवीन पुस्तकें

मुद्राशास्त्र—लेखक श्रीयुत प्राणनाथ विद्यालंकार। सूर्य्यकुमारी पुस्तकमाला की छठी पुस्तक। मुद्रा क्या है, उसके मूल्य के घटने-बढ़ने और विनिमय आदि के क्या नियम हैं, व्यापार आदि से उसका क्या संबन्ध है, इत्यादि बातों का इसमें बहुत ही उत्तमतापूर्वक विवेचन किया गया है। मूल्य ... ... २॥)

प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण—प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की खोज में अब तक जितने कवियों और ग्रंथों का पता चला है, उन सबका संक्षिप्त विवरण। साहित्य-प्रेमियों के बहुत काम की चीज़ है ... ... ३)

सुजान-चरित्र—इधर बहुत दिनों से कवि सूदन कृत यह वीर-रस प्रधान काव्य अप्राप्य था। अब इसका दूसरा संस्करण छपकर तैयार हो गया है। ... ... २)

पद्मावत—कविवर जायसी कृत। बहुत ही परिश्रमपूर्वक इसका पाठ परम शुद्ध किया गया है; और प्रति पृष्ठ में कठिन कठिन शब्दों के अर्थ तथा बहुमूल्य टिप्पणियाँ दी गई हैं। ९६-९६ पृष्ठों के अंकों में निकल रहा है। तीन अंक तैयार हैं। प्रत्येक अंक का मूल्य ... ... ।=)

कर्त्तव्य—स्माइल्स कृत प्रसिद्ध ग्रंथ Duty के आधार पर लिखित। बहुत ही शिक्षाप्रद और सुपाठ्य है। विशेषतः नवयुवकों के लिये बहुत ही उपयोगी है। मूल्य ... ... १)

बुद्धदेव—(मनोरंजन पुस्तकमाला) दूसरा संस्करण ... ... १)

सूरसुधा—भक्त-शिरोमणि सूरदास जी के बहुत ही उच्च कोटि के भजनों तथा पदों आदि का संग्रह। मू० १)

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला

अशोक की धर्म्मलिपियाँ—पहला भाग। सुप्रसिद्ध भारत-सम्राट् अशोक के शिलालेखों का संग्रह। इसमें भिन्न भिन्न स्थानों के शिलालेखों के बिलकुल शुद्ध पाठ दिए गए हैं। साथ ही हिन्दी अनुवाद भी है। मूल्य ३)

गुलबदन बेगम का हुमायूँनामा—हुमायूँ बादशाह का गुलबदन बेगम लिखित जीवन-चरित। मूल्य १॥)

प्राचीन मुद्रा—श्रीयुक्त राखालदास बंद्योपाध्याय की बँगला पुस्तक का अनुवाद। इसमें भारत के प्राचीन काल से लेकर मध्य युग तक के प्रचलित सिक्कों का पूरा इतिहास तथा विवरण दिया गया है। अन्त में बीस चित्र भी हैं जिनमें सैंकड़ों सिक्कों की प्रतिकृतियाँ दी गई हैं। इतिहास-प्रेमियों के बड़े काम की चीज है। मूल्य ... ... ३)

अन्यान्य पुस्तकें

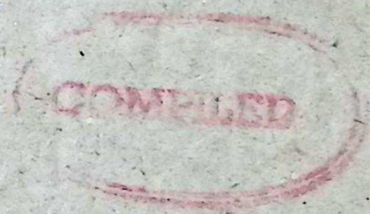
गोस्वामी तुलसीदास जी—जीवनी और आलोचना। मूल्य ... ... १॥)

स्वामी विवेकानन्द का ज्ञान-योग—दूसरा भाग। मूल्य ... ... २॥)

मंत्री,

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।


STOCK VERIFY
2020
G.K.V. Library


COMPILED